श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुर्विजयतेतराम् ॥

# ॥ सुख चरित्र ॥

( रचयिता )

मुनिवर्य श्रीमान् वीर पुत्र

आनंदसागरजी महाराज साहेब.

# SUKH CHARITRA.

BY

MUNIVARYA SHREEMAN VEER PUTRA

ANANDSAGARJEE MAHARAJ

( प्रसिद्ध कर्त्ता )

कोठारी पूनमचन्द आनंदमल्ल.

बीकानेर–राजपूताना

वीर सम्वत २४४३ ] वि सं १९७४ [ सन १९१७

प्रथम संस्करण 1000 } सर्व हक स्वाधीन { न्योछावर तत्वग्रहण

अहमदावादके

कालुपुर टंकशालमें–धी युनियन प्रीन्टिंग प्रेस कंपनी लीमीटेडमें

मोतीलाल सामज्दासने छापा

॥ ॐ ॥

॥ श्री जिनेश्वरभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमद् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

## ॥ प्रस्तावना ॥

क्या कोइ ऐसा पुरुष है कि जो अपने धुरंधर आचार्यादि महान् पुरुषोंके चरित्र सुनना न चाहे ? उन्होंने किस २ समयमें क्या २ महत्वके कार्य किये कि जिससे जन समुदाय एक अलौकिक हालतमें आ गया ? उत्तरमें कहना होगा कि अज्ञान प्रेमियोंको छोड प्रत्येक मनुष्य इस बातकों जानने व सुनने की इच्छा करेगा

इस जैन शासनमें परम परमात्मा चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके पश्चात् अनेकानेक महान् विद्वान् उद्यमशील परोपकार परायणादि विशिष्ट गुण विभूषित ऐसे २ आचार्य होगये है कि जिनका चरित्र पढकर या सुनकर हरेक भव्य जिज्ञासु अपने आचरणको सुधार जैन शासनको उन्नत दशामें लानेके लिये प्रयत्नशील हो सकता है

आधुनिक समयमें भी पाश्चात्य विद्वानोको पुरातन चरित्र (ANCIENT HISTORIES) पढने व लिखनेका अत्यन्त शोख है इतना ही नहीं वरनवे अपना सर्व समय ग्रंथ व लेखादिके खोजमें व्यतीत कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं तात्पर्य की महान् पुरुषोंका चरित्र ,मनुष्यकों निर्मल बुध्धिधारक बना देता है

यद्यपि जैन वर्गमें सेकडों आचार्य प्रखर बुध्धिको धारण करनेवाले होगये तदपि आसन्नोपकारियोंके चरित्र हमें जियादे लाभप्रद हो सकते हैं

बस इस ही बातको विचार कर इस ग्रंथमें एक महान विद्वान तपस्वी, यशस्वी, परोपकार परायणका चरित्र लिखनेका प्रयत्न किया गया है जैनके महान् उद्यमशील आचार्योंमें आप भी एक अद्वितीय मुनिराज हो गये हैं

आपका पवित्र नाम **"सुखसागरजी महाराज"** था आप असाधारण विद्वान् महा महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महाराजके पञ्चम पट्टपर हुवे हैं. आपकी विद्यमानी वीर सं. २३४५ विक्रम सं. १८७६ से वीर सं. २४१२ विक्रम संवत १९४२ तक रही.

सच्चा चरित्र वही है कि जो जीवनीके साथका साथ कइयक सिद्धान्तिक रहस्यसें भरा हुवा हो तात्पर्यकी इस चरित्रके अंदर ग्रंथ कर्त्ता महानुभावने अपनी विशाल बुध्दिसे योग्य २ स्थानो पर प्रसंगानुक्रमसे बड़े ही रहस्यकी बातें उल्लेखं कर जैन समुदाय पर महदुपकार किया है.

इस ग्रंथके निर्माता पूज्यपाद गणाधीश्वर शान्त मूर्त्ति मुनि महाराज **श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज**के स्वयं वैरागी, आबाल ब्रह्मचारी, बुध्दि विचक्षण, सुविनीत शिष्य **श्रीमान् वीरपुत्र आनंद सागरजी महाराज**ने अपने अमूल्य समयको सार्थक कर गुरु भक्तिके वश व परोपकारार्थ इस ग्रंथकी रचना कर अपनी निर्मल बुध्दिका परिचय दिया है.

आपने इसमें हमारे चरित्र नायकके अनुपम चरित्रको वर्णन करते हुवे प्रथम ग्रहस्थाश्रमके विषयको खुलासा तौर पर उध्दृत किया है.

आपने इसमें मुख्य २ चौवीस विषयोंको बड़े ही योग्यताके साथ दर्शाये हैं. खासकर ज्ञान, दर्शन और चारित्रका आपने हेतु युक्ति करके नये ढंगपर इस प्रकार उल्लेख किया है कि प्रत्येक साधारण बुध्दिवाला भी उसके गूढ रहस्यको सहज ही समज सके.

आगे चल कर आपने दान, शील, तप और भावनाको इस प्रकार खुलासा बताये हैं कि लोगोमें जो आजकल इन चारों विषयों पर वादानुवाद चलते हैं वे तो मानो पलायन ही कर गये.

ऐसे अलौकिक ग्रंथको देख हमारी इच्छा हुई कि यदि यह ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो जाय तो जैन व जैनेतर सर्वको बड़ा उपयोगी हो.

हमने हमारे अभिप्राय उक्त ग्रंथ रचयिता मुनिराजके सन्मुख निवेदन किये आपने महत् कृपाकर हमको यथेष्ठ करनेकी आज्ञा बक्षीस की

हमारे लघु भ्राता आणंदमल्लके स्वर्गीय पुत्र "हीरचन्द" के परभव जाते समय ज्ञानादि वृद्धिके लिये कितनाक द्रव्य संस्थापन कर रक्खा है इस अवस्थामें हमने यह कार्य उत्तम समझ उसहीके तर्फसे यह ग्रंथ छपाकर विना मूल्य वितीर्ण किया है.

इस ग्रंथके अंतमें हमारे चरित्र नायकके गुण गर्भित अष्टक और कितनीक गहूलियें भी रक्खी गई हैं

अन्तमें हम ग्रंथकर्त्ता महानुभावको कोटिशः धन्यवाद देकर पाठक वर्गोंसे सविनय निवेदन करते हैं कि इस ग्रंथको पढकर उसका अनुकरण करनेका महान लाभ उठावें

यद्यपि इसके मुफादि शोधनेका कार्य ध्यान पूर्वक किया गया है तदपि यदि दृष्टि दोषसे वा छापेवालेकी असावधानतासे कोई त्रुटि रह गई हो तो सज्जन जन सुधारकर पढनेकी कृपा करें

॥ शुभं भूयात् ॥

आपके कृपाकांक्षी
पूनमचन्द्र आनंदमल्ल कोठारी.
बीकानेर–राजपूताना

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

## ॥ विषयाऽनुक्रमणिका ॥

॥ शुभम् ॥

V. A. S.



॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

## ॥ समर्पण पत्रिका ॥

शान्त, दान्त, महन्त, दुर्नय त्यागी, सकल गुणरागी, अशरण शरण, तरण, तारण, कृपावन्त, दयावन्त, गुणवन्त, धर्म धुरंधर, धर्मावतार, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वज्ञादि समस्त गुण वरिष्ट जैन गगन मार्तण्ड विशाल ज्ञानी गणाऽधीश्वर विख्याते स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब की भव्य निर्मल सेवामें

हे पूज्येश्वर ! आपने घोर तपस्यादि अनेक सदाचारों द्वारा दुर्निवार कर्म बंधनोंको शिथिल कर दिये, इतनाही नहीं किन्तु अनेक प्रकृतियोंको प्रध्वंस कर निर्मूल कर दीं

हे अद्वैत विज्ञातः ! आपने अपने दिव्य ज्ञानकी प्रौढ शक्ति द्वारा जैन धर्मका विशाल प्रभाव चारों ओर विस्तीर्ण किया अर्थात् दमकती हुई दिव्य ज्ञान कान्तिसे भूमण्डलको प्रकाशित कर दिया

हे करुणारस भण्डार ! आप श्रीने अपने पवित्र हृदयसे उमडते हुवे वचनामृतों द्वारा अनेक देह धरियोंका अनुपम उपकार कर उनके जीवनको सार्थक किये

हे स्वामिन् ! हम सकल समाज आपके नित्य स्मरणीय परमोपकारको जीवन पर्यन्त स्मृति पथसें तनिक भी वियोगावस्था प्रतिपन्न नहीं कर सकते

हे प्राणाधार! उपरोक्त दिव्य गुणोंका मुहुर्मुहुःचिन्तन कर आपके भव्य जीवन स्मरणीय यह लघु ग्रन्थ "सुख चरित्र" आपकी पवित्र सेवामें सादर समर्पण कर सविनय प्रार्थना करता हूं कि मेरे क्षुद्र जीवनको कृतार्थ कीजिये.

॥ शिवं भवतु ॥

भवदीय चरणोपासकः—

**आनंदसागर.**

मु० बीकानेर–राजपूताना.



( ग्रंथरचयिता के गुरुवर्य । )

## प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्री श्री श्री १००८ श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब ।

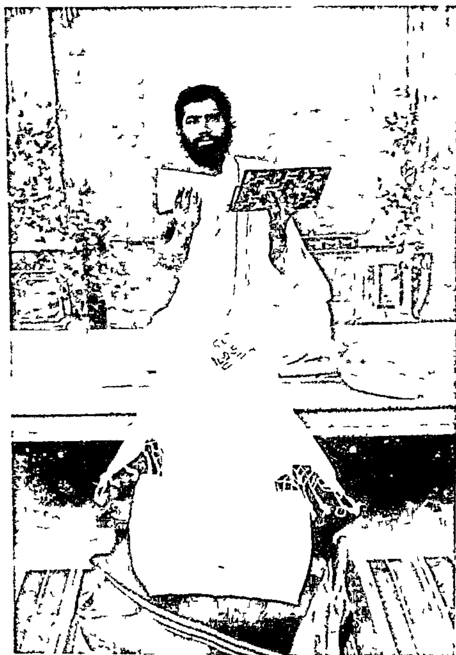


जन्म वीरात् २३९१ ] [ दीक्षा वीरात् २४२२

चित्रशाला प्रेस, पूना ।

( ग्रंथरचयिता )

## विभाते स्मरणीय पूज्यपाद मुनिवर्य श्रीवीर-पुत्र श्रीमान् आनंदसागरजी महाराज।



जन्म वीरात् २४१८ ]　　　[ दीक्षा वीरात् २४३७

चित्रशाला प्रेस, पूना।

॥ ॐ ॥

॥ श्रीवीतरागेभ्यो नम ॥

॥ श्रीमद् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

# ॥ सुखचारित्र ॥

## ( मङ्गलाचरणम् )

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता, सिद्धाश्चसिद्धि स्थिता ।
आचार्या जिनशासनो न्नतिकराः पूज्याउपाध्यायकाः ॥
श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैतेपरमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तुवो मङ्गलम् ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रथमही प्रथम अखिल दूषणत्यागी, सकल गुण गणालंकृत, परमोपकारीश्री अर्हन्त भगवानकों नमस्कारता हूं ( कथभूता अर्हन्तः ) कैसे हें वे अर्हन्त प्रभु ( इन्द्रमहिताः ) इन्द्रवर्गसे पूजित है

तत्पश्चात निरञ्जन, निराकार, अक्षय, अविनाशी, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायकसमकितादि गुणोंको धारण करनेवाले सिद्ध परमात्माकों नमस्कार करता हूँ ( कथंभूताः सिद्ध देवा ) कैसे है वे सिद्ध प्रभु ( सिद्धिस्थिताः ) सिद्ध स्थानके अन्दर स्थित है

तत्पश्चात परमपूज्य धीरवीर, गम्भीर, धर्म्मधुरंधर, धर्म्मावतार, श्रीमदाचार्य्य महाराजकों नमस्कार करता हू ( कथम्भूताः आचार्य्याः ) कैसे है वे आचार्य महाराज ( जिनशासनोन्नतिकराः ) जिनशासनके उन्नति करनेवाले है

तत्पश्चात ज्ञानदाता, परमोपकारी उपाध्याय महाराजकों नमस्कार करता

हूं ( कथम्भूताः उपाध्यायकाः ) कैसे हैं वे उपाध्याय महाराज ( श्रीसिद्धान्त सुपाठकाः ) ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्गादि सिद्धान्तोंको पढानेमें परिपूर्ण निपुण हैं.

तत्पश्चात् परमपवित्र, शान्त मुद्राधारी, निर्मल चारित्रधारी, दिव्य ज्ञान गुणोपेत श्रीमन्मुनि महाराजाउकों नमस्कार करता हूं ( कथम्भूता मुनिवराः ) कैसे हैं वे पवित्र मुनिमहाराज ( रत्नत्रयाराधकाः ) ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीन रत्नोंकी आराधना करनेवाले हैं.

यह अनन्त गुण गणालंकृत पञ्चपरमेष्ठि प्रतिदिन मङ्गलकारी होवें यही प्रार्थना है.

अब मैं अपने परमोपकारी, शान्त, दान्त, महन्त, धीरवीर, गम्भीर, तेजस्वी, यशस्वी, त्यागी, वैरागी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार, विशालज्ञानी, निर्मलदर्शनधारी, मोक्षाभिलाषी, उत्कृष्टसंयमधारी, बहुभागी, सुभागी, अबालब्रह्मचारी, अतुलप्रतापी, शशिसमान सौम्य, सायरसम गंभीर, पृथ्विसम सहनशील, भारण्डवत् अप्रमत्त, सकल गुणरागी, अज्ञानतिमिरभास्कर, कृपावतार, दयासागर, आत्मध्यानी, योगीश्वर, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वज्ञाद्यनेक गुणगुणालंकृत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्यश्री श्री श्री १००८ श्री श्री खरतरगच्छ गगनाम्बरमणि श्रीमज्जैनाचार्य गणाऽधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहबका " संक्षिप्त जीवनचरित्र " लिख दिखनेका प्रयत्न करता हूं.

सज्जनो! यद्यपि मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं हैं, कि उन महान् पुरुषका सच्चरित्र वर्णन कर सकुं तदपि उनहीके महा प्रभावकी अतुल कृपाका अवलम्बनकर अपने विषय ( Subject )—में प्रवृत्त होताहूं.

## ॥ गृहस्थाश्रमका विवेचन ॥

अतीव मनोहर मरु स्थल देशमें बीकानेरके निकट सरसा नामक एक ग्राम हैं, वहांपर खीची नामक क्षत्रीय वंशसे उत्पन्न हुवे डगरू गोत्रको धारण करनेंवाले जैन बृहत् औंस वंशके अन्दर सुशोभित जैन धर्मानुरागी, मनसु-

खलालजी नामक श्रावक निवास करते थे, उनके पतिव्रतको धारण करनेवाली जेतीबाई नामकी भार्या थी इनके चतुर्बुद्धिको धारण करनेवाला सुखलाल नामक एक सुपुत्र था, ये लोग न्याय द्रव्यापार्जन करके अपनी आजीवका करते थे तथा धर्मकी आराधनाभी उत्तम प्रकारसें करते थे इस प्रकार सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करते थे

इस सुपुत्रका जन्म वीर संवत् (२३४५) विक्रम संवत् १८७६ में हुवा द्वितीया के शशि समान दिनबदिन चढती कलाको प्राप्त होने लगा इस प्रकार सुखपूर्वक बाल्यावस्था व्यतीत की, इसही अवस्थामें आपके मातपिता परलोक प्रस्थान कर गए कितनेक समयके पश्चात् अपनी भगिनीके कथनसें जयपुर नामक शहरमें प्राप्त हुवे, वहांपर गोलेछा माणिक्यचंदजी, लक्ष्मीचंदजीकी सहायतासें पुरुकरीक वस्तुओं (किरयाणे) (Spices) का व्यापार करते थे

कितनेक काल पर्यंत तो इस प्रकार न्यायमे द्रव्योपार्जन किया तत्पश्चात् उपरोक्त सहायक श्रेष्ठीके यहांपर मुनीमपदको धारण किया और शान्ततापूर्वक अपना निर्वाह करते रहे, अपने स्वामीका कार्य सच्चे दिलसें नेकनामिपूर्वक करते थे इस प्रकार अति तृष्णा ( Greed ) शाकिनीसें पृथक् होकर संतोषपूर्वक कालको निर्गमन करते रहे

आप अखण्ड शियलव्रत ( Chastity ) को धारण करते हुवे तपश्चर्या (Devotion) के अंदर निपुण थे तथा व्रत, प्रत्याख्यानादि योग्यतापूर्वक उत्तम प्रकारसें करते तथा प्रतिक्रमण, सामायिक और जिनेश्वरकी पूजनादि करनेमें पूर्णतः कटिबद्ध थे पञ्चप्रतिक्रमण और कितनेक प्रस्तावोंसे परिचित एवं देव, गुरु और धर्मकी सेवामें श्रद्धायुक्त तल्लीन थे

अनुचित भोगोपभोगको परित्याग कर योग्य पदार्थोंको सेवन करते थे पिताजीके अत्यन्त आग्रह होनेपर भी बेडि ( Fetters ) रूपस्त्रीको अङ्गिकार नहीं की, आप समझते थे कि कीचके अंदर प्रवेश हो जानेके पश्चात् धर्मकी निर्मल आराधना नहीं कर सकेंगे इस दुःसमकालके अंदर स्त्रीजातिपर विश्वास करना गोयाधोका खाना है, देखिये नीतिकारने कहा है:—

## ( श्लोक )

नदीनांचनखीनांच । शृंङ्गिणामृशस्त्रपाणानाम् ॥
विश्वासोनैव कर्तव्यः स्त्रीपुराज कुलेषुच ॥ १ ॥

भावार्थः—निम्न लिखितका विश्वास नहीं करना चाहिये.—नदियोंका कारण कि किसी समय डुबाकर रसातलमें पहुंचा देगी.

नखधारी व शृंगधारी जानवरोंकाः—कारणकि अवशरको पाकर शरीरको छेदन कर देंगे.

हस्तगत शस्त्रधारियोंकाः—कारणकि क्रोध वश होने पर मस्तकादि छेदन कर देंगे.

स्त्रियोंकाः—कारणकि डपमकालकी स्त्रियोंका चरित्र विचित्र हैं; देखिये कहा हैः—

## ( पद )

स्त्रीचरित्र जाने नहीं कोय ॥
पति मारकर सति होय ॥ १ ॥

राजाओंकाः—कारणकि कहा है कि डराचार राजाओंके कान होते हैं मगर ज्ञान (Sense) नहीं होती.

आपको उपरोक्त नीतिवाक्यसें भली व प्रकार विदित हो गया होगाकि स्त्री संसर्गसें किस प्रकार हानि होती है.

बुध्दिवान्पुरुष अपने आभ्यन्तर विचारोंको स्त्रीके सन्मुख प्रगट नहीं करते कारणकि स्त्रीजातिका हृदय गम्भीर नहीं होताः देखिये मैं प्रसङ्ग दृष्टान्त लिख बताता हुँ.—

स्त्री अपने पडोसी (गृह निकटवर्ति) के सन्मुख यह जाहिर करती है

कि आज अमुक भोजन बनाया था, अमुक शाक कीयी, अमुक ब्राह्मण आया था, अमुक वस्तु लाई गई है, अमुक वस्तु भेजी है, अमुक प्रकारका कलह हुवा, अमुक आनन्द प्राप्त हुवा इत्यादि अनेकशः वार्तालाप करती है

सज्जनो! खानपानकी भी बात जब हृदयमें नहीं ठहर सकती तो दीर्घ विचारका ठहरना कैसें संभव हो सकता है किसी व्यक्तिपर विचार करनेकि आवश्यकता नहीं है बल्कि स्त्रीके जाति स्वभावमेंही अनेकशः दूषण मौजूद हैं; उनमेंसें कितनेक यहापर उध्धुत करता हूं:—

## ( श्लोक )

अनृतंसाहसंमाया । मूर्खत्वमति लोभता ॥
अशौचत्वं निर्दयत्वं । स्त्रीणांदोषाः स्वभावजाः ॥१॥

अर्थः—झूठ बोलना, साहसिकपन करना, कपट क्रियाकों सेवन करना, जड़ मति होना, अति लोभ दशाको धारन करना, दुर्गंठनीय दशामें रहना, निर्दय हृदय होना इत्यादि स्त्रीजातिमें स्वभाविक दोष होते हैं

पाठकवरों! जब स्वभावहीके अन्दर इतने दुर्गुण रहे हुवे हैं तो बाहरी दूषणोंकी गिनती कैसे हो सक्ती हैं; अर्थात् दुष्ट स्त्रियें अगण्य दूषणोंसे दूषित हैं ऐसे दीर्घ विचारका अवलम्बन करके वेमीरूप स्त्रीको अङ्गीकार नहीं किया गरजकी समारमें रक्त न होते हुवे परम वैराग्य दशामें रमण करते थे

## ॥ वैराग्यकी सुदृढ़ता ॥

ऐसे सुअवसरमें परमपूज्य श्रीमान् राजसागरजी महाराज और ऋद्धिसागरजी महाराजने अपने चरण रेणुकासें उम जयपुर नगरको पवित्र किया, अर्थात् आप महानुभावोंका शुभाग मन हुवा

श्रावक श्राविकाओंके अत्याग्रहमें चातुर्मासकी विनति स्वीकार कर वहीं पर सुखपूर्वक निवास करते रहैं, आप महानुभाव भव्यात्माओंपर अतिही उपकार किया करते थे, धर्मदेशनाके अंदर प्रायः वैराग्य रसको विशेष रूपसें

प्रदर्शित करते थे. आपके अमृतमय देशनाके पान करनेमें स्वयं वैरागी सुखलालके भाव दृढीभूत हुवे.

एक दिन सुखलालने आकर श्रीमान् राजसागरजी महासागरकों दोनो करजोड़ सविनय प्रार्थना कीः—

हे गुरुवर्य्य ! मैं मरु स्थल देशमे सरसा नामक ग्राममें रहता हूं मेरे पिताके अत्यंत आग्रह होनेपर भी सर्पणीरुप स्त्रीजालको अङ्गीकार नहीं की और अपनी वहीनके आग्रहसें यहांपर आया हूं.

हे स्वामिन् ? मैं बचपनसेंही वैराग्य दशामें निमग्न हूं, इसही लिये अधिक काल तपश्चर्यामें व्यतीत किया और सांसारिक जंजालसें पृथक् रहा.

हे नाथ ! यहांपर आनेसें मुझे ऐसा अपूर्व लाभ हुवा है कि जिसका मैं वर्णन करनेको असमर्थ हूंः किन्तु इतनी तो अवश्यही प्रार्थना करूंगा कि जैसें लोहेको पारस लगजानेसें सुवर्ण हो जाता है वैसें ही आप भी अपनी उदार वृत्तिद्वारा मुझ अधमको पावन करो.

धन्य है ! ऐसे धर्मात्मा पुरुषोंकोकि जो सत्सङ्गतीकी वांछा करते हैं. सत्य है ! सत् सङ्गतीका उत्तमही फल हुवा करता है. कहा हैः—

## ( श्लोक )

काचः काञ्चन संसर्गा । द्धत्ते मारकतीं द्युतिं ॥
तथा सत् सन्निधानेन । मूर्खोयाति प्रवीणताम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुवर्णके संसर्गसें काच मरकतमणि ( Emerald ) के प्रभाकों धारण करता है; तैसेही सत्सङ्गतिसें मूर्ख प्राणी प्रवीणताकों प्राप्त हो जाता है.

पुनः—वह गुरु महाराजको प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ? मुझे इस असार संसारसें बहुतही ग्लानी आती है वास्ते अनुग्रहपूर्वक दीक्षा ( Jncantation ) प्रदान कर चरणशरण कीजियेगा.

हे महानुभाव! आप खुदही जानते हैं कि "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" इसलिये कृपाकर शीघ्रही संयमरूपी नौकामें स्थान दीजियेगा

गृहस्थाश्रमसें भयभीत जानकर तथा वैराग्य ( Asceticism ) वचनोंको श्रवण कर करुणालय मुनि महाराज श्रीराजसागरजीने फरमाया "एवमस्तु"

प्रथमही प्रथम तो यह खयाल हुवा कि चातुर्मासमें दीक्षा देना शास्त्रोंमें मना फरमाया है और यह वैरागी अतिही आतुरता करता है अब क्या करना चाहिये? विचारज्ञानमें शीघ्रही यह विज्ञात हुवा कि जैन सिध्दान्तोंका एकान्त पक्ष नहीं है किन्तु सामान्य और विशेष दोनोंही नियम हुवा करते हैं, शास्त्रकारोंका यह भी हुकुम है कि किसी प्राणिको यदि उग्र वैराग्य प्राप्त हो गया हो और संसारसें भयभीत होकर चरणशरण आया हो आदि विशेष कारणोंसें चातुर्मासमें भी दीक्षा हो सकती है

ऐसे शुभअवसरमें उस सुखलाल नामक श्रावकके विद्यमान संबन्धियोंसें आज्ञा लेकर दीक्षाका कार्य उपरोक्त श्रेष्ठिवर्य्यमाणिक्यचन्दजी, लक्ष्मीचन्दजी गोलेछा (गढ़ौड़)की तर्फसे प्रारंभ हुवा

## ॥ दीक्षाकी धामधूम ॥

शुभ मुहूर्त्तके अन्दर उत्थ माङ्गलिककी विधिकों करते हुवे नियमानुसार दीक्षाका कार्य प्रारम्भ किया

यह वैरागी हमेशा प्रातःकालमें अपने नित्यनियमसे निवृत्त होकर अपने शारीरिक व्यथाकों अलग कर स्नान मज्जन करनेके पश्चात् प्रभुभक्तिमें लवलीन हो जाता था; तत्पश्चात् नाना प्रकारकी मनोहर पोषाक पहनकर अनेक आभूषणोंसें अलङ्कृत होता हुवा परोपकारी गुरुवर्यके दर्शनार्थ जाता था, तत्पश्चात् अपने सज्जनोंसें मिलाप करता हुवा श्रावक लोगोंकी इच्छा परिपूर्ण करनेके निमित्त बनोला ( भोजनार्थ )के वास्ते प्रस्थान करता था

## ( बनोलेका स्वरुप )

वैरागीके आगे नाना प्रकारके वाजित्र बजे रहेथे, चोतर्फमें ग्रामों लोग

शोभाको प्राप्त हो रहेथे, सबसें आगे बहुतसे लोग जैनशासनकी जय बोलते हुवे प्रस्थान कर रहेथे एवं सबसें पीछे बहुतसी सौभागिनी स्त्रियें माङ्गलिक गायन कर रहीथीं; इस प्रकार प्रत्येक दिन अति उत्सवपूर्वक बनोला किया जाताथा.

कइ एक महानुभाव यहांपर शङ्का करते हैं की वैरागीका एसी पोष कें, इतना जेवर, ऐसा खानपान और इतनी उपभोगीय पदार्थ क्यों सेवन करवाई जाती है यह तो वैरागी ( Ascetic ) काल क्षण नहीं है किन्तु साक्षात् सरागीका स्वरुप है.

भोप्रश्न कर्त्ता साहब ! आपका प्रश्न करना यथार्थ हैं; किन्तु यदि आपने सूक्ष्म दृष्टिसें विचार किया होता तो यह आक्षेपीय मौका प्राप्त नहीं होता, देखिये थोडेसेमे ही आपके इस प्रश्नको हल् ( वारण ) करनेका प्रयत्न करता हूँः—

वैरागीकी मनोवृत्ति स्थिरीभूत है या भोगोपभोगमे रक्त है इस बातकी परीक्षाके वास्ते उपरोक्त व्यवहार किया जाता है, अन्य कारण यह भी है कि उसके अपूर्व स्वरुपको देखकर जगतनिवासी भव्यात्मा उस पवित्र वैराग्यकी अनुमोदना करके अनन्त पुण्याईके भागी हो तथा जैन शासनका उद्योत हो.

बनोलेके पश्चात् मध्यान्ह कालमे व्यावहारिक और धार्मिक कार्यमे अपना काल निर्गमन करता था; एवम् सायङ्कालके भोजनके पश्चात् अपने प्रतिक्रमण कार्यमें प्रवृत्त हो जाताथा.

प्रतिक्रमण कर्मके पश्चाव रात्रीके अन्दर सज्जनोसें मिलाप करता हुवा पहर रात्री पर्यन्त धर्मगोष्ठी किया करताथा बाद इसके शयनावस्थामें हो जाता था इस प्रकार अपने नियमित टाइमपर प्रत्येक कार्य कुशलतापूर्वक ( Proficiently ) किया करताथा.

## ( दीक्षा दिवसका शुभागमन )

देखते ही देखते दीक्षाका निजदिन शुभमिति भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी वीर

सम्वत् ( १३७५ ) विक्रम सम्वत् १९०६ का सुवर्णमय सूर्य अपने दिव्य स्वरूपको प्रकाशित करता हुवा उदय स्थानपर आन पहुँचा

चारों ओरसे लोक मनोहर वस्त्राभूषण पहीन धर्मशालामें एकत्रित होने लगे, थोड़ेही समयमें क्या देखते है कि निर्मलावस्थाको धारण करनेवाला वैरागी वनड़ा उक्त स्थानपर आन पहुँचा; आतेही बराबर गुरु महाराजको विनयपूर्वक नमस्कार करके योग्य स्थानपर बैठ गया

थोड़ेही समयके बाद खड़ा होकर दोनो करजोड़ गुरु महाराजसे तथा विद्यमान सम्बन्धियोंसें एवं समस्त चतुर्विध संघसे क्षमाका प्रार्थि हुवा

सर्व सज्जनोंने अनुग्रहपूर्वक क्षमा बक्षीसकी; ततपश्चात् गुरुवर्यके तथा समस्तके समक्ष इस अनुपम गाथाका उच्चारण कियाः—

## ( गाथा )

खामेमि सव्वजीवे । सव्वेजीवा खमंतुमे ॥
मित्तिमे सव्व भूएसु । वेरंमज्झंन केणई ॥१॥

भावार्थः—मै सर्व जीवोंसें क्षमाका प्रार्थि होता हूं सर्व जीव मुझे क्षमा करें; समस्त जीवोंसे मुझे मैत्रीय भाव है किसीसें वैरभाव नही है

इस महा माङ्गलिक गाथेका सविस्तार विवेचन करनेके पश्चात् गुरु महाराजसें वन्दना कर वरघोड़ेमें प्रवृत्त हुवा

## ( वरघोड़ेका दृश्य )

सर्वसें आगे नगारे ( Drums ) पर विजयका डंका धनाधनसें पड़ रहा था, निशान ( Emblem ) अपनी शोभाको प्रकट कर रहा था, बेण्ड बाजोकी ध्वनिचारों ओर गुञ्ज रही थी, शोभनीक कुञ्जर, कोतलके अश्व, शीबिकायें, ( पालखीयें ) बग्गियें और सिगराम ( सेजगाड़ियें ) अपनी शोभाकों पृथक् पृथक् बतला रही थीं; सवार और सिपाहियोंकी

पलटनसें अधिक शोभा हो रही थी, समस्त वरघोड़ेके बीचोबीच वैरागीका हस्ति अपनी घूमत चालसें शनैः शनैः कदम उठा रहा था वैरागीके मस्तक पर चवरादि ढुल रहे थे इसही अवस्थामें वार्षिक दान देता हुवा कृतार्थ होता था चारों तर्फ श्रावकोंके मुखद्वारा जैनधर्मकी जयध्वनि उठ रही थी. सर्वसें पीछे सधवा स्त्रियें धवलमङ्गल गा रहीं थीं, वैरागीके मस्तकपर रहे हुवे तुर्रे और किलङ्गी अपनी अजीब शोभाकों बतला रहे थे, इसका दिव्य स्वरूप सर्व लोगोंको मनोरञ्जन कर रहा था; यहां तक कवि अपने गौरव लक्षणसें प्रकाशित करता है कि यह वरघोड़ा ( Procession ) साक्षात् चक्रवर्त्तिके वरघोड़ेके सदृश दिव्य शोभाकों प्राप्त हुवा था.

अनुक्रमसें वरघोड़ा दीक्षाके स्थान पर जा पहुंचा; ज्योंही वैरागी वनड़ा हस्तिसे नीचे उत्तरा कि सब लोगोंने जैनशासनकी जयध्वनिका उच्चारण किया. वैरागी वनड़ेने प्रथम पूज्यपाद गुरुमहाराजको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानपर विश्रामित हुवा.

इसही अवसरमें कई एक लोगोंने अतर फुलेलद्वारा वैरागीका सन्मान किया ( received ) और कितनेहोने न्योछावर करके भिक्षुक तथा गरीबोंको बक्षीसकिया.

## ॥ श्रमणपदालङ्कृत ॥

तत्पश्चात् दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर गुरुमहाराजने क्रियामें प्रवृत्त होनेके वास्ते सूचना की "आज्ञा प्रमाण" ऐसा कहकर क्रियामें प्रवृत्त हुवा, कुछ क्रिया कर लेनेके पश्चात् श्रमणलिङ्ग ( साधुवेश ) (monk-dress) धारण करानेकों अन्य स्थानपर ले गये, गृहस्थके सर्व वस्त्र परित्याग कर श्रमण वस्त्रोंमें अलङ्कृत किया, ज्योंहीं उस स्थानसें रवाना हुवे की समस्त लोगोंने वीरशासनकी जयध्वनी की और धन्य धन्य इन शब्दोंसे वधाया.

यह महानुभाव पुनरपि अपनी क्रियामें प्रवृत्त हुवे, थोड़ीही टाइमके बाद शुभ मुहूर्त्तमें सर्व सामायक उच्चराई गई; पश्चात् विधिपूर्वक नाम स्थापन किया;

नाम "सुखसागरजी" रक्खा गया और शिष्य ( Desciple ) श्रीमान रिद्धिसागरजी महाराजके किये गये

इस अवसरमें सर्व लोगोंने पूज्यपाद राजसागरजी महाराज ऋद्धिसागरजी महाराज और सुखसागरजी महाराजके नामकी जयध्वनी की.

तत्पश्चात् धर्मदेशना प्रारम्भ की; इस देशनामें संसारकी अनित्यता और साधु कर्त्तव्य विशेष रूपसे बतलाया गया उस विषयकी यत्किञ्चित् व्याख्या लिख दिखाते हैः—

## ॥ धर्मोपदेश ॥

## ( श्लोक )

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदी वेगोपमं यौवनम् ।
मानुष्यजल बिन्दु लोलचपलंफेनोपम जीवनम् ॥
धर्म्मंयो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम् ।
पश्चात्ताप हतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ॥१॥

भावार्थः—लक्ष्मी पेरके रजके मुआफिक है, जैसे पेरपर रज लगकर अति शीघ्र अलग हो जाती है तैसेही लक्ष्मी ( Wealth ) चलायमान होती है यौवनावस्था पर्वतकी नदीके वेगके मुआफिक होती है, जैसें नदीका वेग शीघ्र उतर जाता है जिसमें भी ढालु पर्वतकी नदीका वेग अतिही शीघ्र उतर जाता है वैसेही चार दिनकी माहुणी यौवनावस्था प्रस्थान कर जाती है सच हैं ! "चार दिनकी चादनी फिर अंधेरी रात" मनुष्योंका जीवन कल्लोलित जलके चपल बिन्दु तथा जलके झाग सदृश होता है, जैसें चपल बिन्दु तत्क्षणमें नष्ट हो जाता है तैसेंही जीवनका कुछ ठिकाना नहीं जो स्थिर बुद्धिवाला स्वर्गके अर्गला ( भागल )को दूर हटानेवाले धर्मका आचरण नहीं करता है वह वृद्धावस्थाके अन्दर पश्चात्तापसे हतप्रहत् किया जाता है ठीक कहा है "अब पस्ताए क्या बने जब चिड़िया चुग गई खेत" और

शोकरूपी अग्निसें जलाया जाता है जैसें अग्नि हरएक पौद्गलिक स्थूल पदार्थको जला देती है तैसेंही शोकातुर प्राणीकी आँत जल जाती हैं. इस शोकके सदृश जगतमें अन्य कोई दुःखदाई पदार्थ नहीं दिख पड़ती.

सामायक चारित्र ऐसा उत्तम पदार्थ है जोकि यथा ख्यात चारित्रको प्राप्त करा देता है, जैसेंकि श्रुतज्ञान (knowledge of scripture) केवल ज्ञानके दिलानेमें एक प्रधान निमित्त है.

यह चारित्र त्रिविध ३ (मन, वचन और कायाके साथ करना, कराना और अनुमोदना) अङ्गीकार किया जाता है; इसमें मुनिराज सावद्य व्यापारका सर्वथा त्यागी होता है अर्थात् साधुके सर्व कर्त्तव्य करनेको स्वीकारता है महत्त कारणको पृथक् रखकर कोइ प्रकारका आगार (छुट्टी) नहीं रहती हैं.

वर्तमान समयमें सद्पात्र महानुभाव मुनिवरोंको छोड़कर कइ एक आडम्बरीय, प्रमादी, और मदोनमत्त साधु, साध्वी अपने क्रियासें भ्रष्ट होकर तीर्थङ्करोंकी आज्ञाका खून करते हुवे दुर्गतिका प्रयत्न करते हैं. मगर धन्य हो उन मुनिवरोंको जोकि भवतारक चारित्रको निर्मल तया पालन करके अपने मनुष्यभवकी साफल्यता करते हैं.

जिस वख्त वैरागीको उत्कृष्ट वैराग्य प्राप्त होता है उस वख्त वह जीव सप्तमगुणस्थानपर वर्तता है, दीक्षा लेनेके पश्चात् षष्ठमगुणस्थानपर आ जाता है कारणकि उसकी स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त्तकीही होती है, द्वितीय यहभी कारण है कि नैगमनयके विचारवाला दीक्षा लेके शीघ्र पतित हो जाता है हां अलबत्ता! सूक्ष्मऋजु सूत्रवाला कुछ दृढ भाववाला होता है; परन्तु आद्योपान्त दृढ परिणामोंको रखनेवाला स्थूल ऋजुसूत्र धारक होता है और यह उत्कृष्ट चारित्रधारी कहलाता है. देखियेः—

## दीक्षा चार प्रकारकी होती है तद्यथाः—

१ सिंहके मुताविक लेना और सिंहके मुताविक पालन करना
२ शियालके मुताविक लेना और सिंहके मुताविक पालन करना

३ सिंहके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

४ शियालके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

प्रथम पदवाला उत्कृष्ट, द्वितीय पदवाला मध्यम, तृतीय पदवाला जघन्य और चतुर्थ पदवाला कनिष्ट कहलाता है

जिस वख्त दीक्षा अङ्गीकार की जाती है उस वख्त यही विचार रहता है कि सर्व प्रपञ्चो ( enxities ) कों परित्याग कर दाक्षिण्यता ( flattery ) सें विमुख होकर अप्रतिबन्ध आचरण करूंगा तथा पुद्गलको अरसविरस आहारपानी देकर जीर्ण वस्त्रोंको सेवन करता हुवा उत्कृष्ट चारित्र प्रतिपालन करूगा एव शास्त्र सिद्धान्तोंका वेत्ता होकर अनेक भव्य जीवोका उपगार करूगा और खासकर योगाभ्यास करता हुवा शुभ ध्यान एव आत्म निन्दाद्वारा कर्मोका क्षयकर परमपद लेनेका प्रयत्न करूगां

इत्यादि नाना प्रकारसे विचार करता है लेकिन दीक्षा लेनेके पश्चात् महानुभावोंके शिवाय पामर प्राणि अपनी समस्त प्रतिज्ञाकों परित्यागकर विपरीत वर्ताव करने लग जाता है जैसें:—

गृहस्थोंके वशीभूत होकर दूषित भोगोपभोग पदार्थोंको सेवन करता हुवा आचारसे पतित होकर निर्मल चारित्रको कलङ्कित करता है इत्यादि अनेकशः अवगुणोसे अलङ्कृत होकर दुर्गतिका भागी होता है

हम उनही महामुनिवरोंको धन्य समझते है कि जो सिंहके मुताबिक शूरवीर होकर निर्मल चारित्रको अङ्गीकार करते है तथा यावत् उम्र वैसाही निभाते हैं, सज्जन पुरुष दुर्गति दातार गृहस्थाश्रमको छोडकर पवित्र चारित्रको ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करते है, यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जितनी उत्कृष्ट करणी चारित्रधारी कर सकते हैं उतनी अन्यको करना दुष्पार है

चारित्रधारीमें सबसे बड़ा गुण यह होना चाहिये कि दृढ श्रद्धायुक्त* गुरु * भक्तिमें तल्लीन रहे तथा उनकी आज्ञासें अणुमात्र भी विपरीत न

चले. आप जली प्रकार जानते हैं कि गुरु सेवासें बढकर जगत्रयमें कोई पदार्थ नहीं है देखिये किसी दीर्घेच्छु महानुजावने श्री सम्मेत शिखरके स्तवनमे ठीक कहा है:—

## ॥ गुरुपदका महात्म्य ॥

## ( गाथा )

गुरु चरणोंमें प्रीत बनी रहै।
इसको खूब निजाना मोरे राजिन्दा ॥
ज्ञानतत्व अरु सकल पदारथ।
इससें सब मिल जाना ॥ मोरे राजिन्दा सम्मे ॥१॥

सच है ! गुरुचरणोंकी सेवाका यही फल होता है, गुरु कृपा एक ऐसी उत्तम चीज़ है कि दुःसाध्य जी साध्य हो जाता है.

कई एक बुद्धि विलक्षण यह कह देते हैं कि सेवासें कुछ जी फल नहीं होता किन्तु पढ लिखकर होशियार होना चाहिये जिसमे अपनी यशकीर्त्ति ( fame ) तथा शासनका उद्योत हो.

यद्यपि उनका कथन यथार्थ है मगरताहम जी निर्मल ज्ञान तबही प्राप्त हो सकता है कि जब गुरु महाराजकी कृपाका अवलम्बन हो, देखिये इस पर मुझे एक दृष्टान्त स्मरण होता है. वह लिख दिखाता हूँ:—

किसी एक अनुपम शहरके अंदर अनेक साधुओंकी समुदायसें सुशोजित एक आचार्य महाराज विराजते थे. उनके कइ एक शिष्य व्याख्यानदाता, कइ एक विद्यार्थि और कइ एक वैयावच्ची थे उनमेंसे एक विद्यार्थी और एक गुरु जक्तकी सफलताका नमूना पेश करता हूं.

---

* गुरुका अर्थ यहांपर यही समझना चाहिये कि जो चारित्रको निर्मल पालन करनेवाले हों अर्थात् चारित्रसें पतित और क्रियासें भ्रष्ट गुरुको गुरु नहीं समझना.

पढनेवाले शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य बतलाते थे तब वह यही उत्तर देता था की अजी हम पढते है दोनो काम नही कर सकते "चाहे पढा लो चाहे घास कटालो" जब कभी जोर देकर गुरु महाराज कोइ कार्य करनेको कहते तो वह लौकिक लज्जासें व मुश्किल करता सो भी उसमें ऐसा प्रयोग करता कि दूसरी वख्त कोइ कार्य न बतलावें यथाः— पानी लेनेको जाता तो मटकी फौड़ देता और गौचरीको कभी जाता तो पात्रे तौड़ देता इत्यादि कार्य इसही प्रकार करता था मगर वे महानुभाव गुरु महाराज यह खूब समझते थे कि यह गुरु कृपाके वगैरही ज्ञानकी संफलताको चाहनेवाला अविनीत मूर्ख शिरोमणी है

इधर भक्ति गुणोंको धारण करनेवाले सुविनीत शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य फरमाते थे तब वह महानुभाव "तहत्त वचन" (प्रमाणवचन) ऐसा महान सुविनय वचनका प्रयोग करता हुवा अन्य सर्व कार्यको परित्याग कर गुरु महाराजके अनुग्रहपूर्वक बतलाए हुए कार्यको करता था; कहनेका तात्पर्य यह है कि वह भक्तिवान् शिष्य सबसें अधिक टाइम अपने गुरु भक्तिमें लगाता था, जिस वखत गुरुकी सेवा किया करता था उस वखत उसें कई एक उत्तमोत्तम वस्तुओंकी प्राप्ति होती थी गुरु महाराज उसपर अतिही प्रसन्न थे सच है! विनय गुणके अन्दर ऐसीही अपूर्व शक्ती है कि हरएकको प्रसन्न कर सकता है

एक दिनका जिक्र है कि एक महत् सभा (Gathoring) इकठी हुई थी उसमे अनेक विद्वान् लोक एकत्रित थे प्रत्येक धर्मका विचार किया जा रहा था उसके अन्दर यह आचार्य महाराज भी मय अपने शिष्य समुदायके उपस्थित थे इस सुअवसरमें जैनधर्मके ताल्लुक षट् द्रव्य संबन्धि प्रश्न किये गये।

आचार्य महाराजने पहिलेही पहिल पढनेवाले शिष्यको आज्ञा दी की इन प्रश्नोके तुम यथार्थ उत्तर दो वह गुरुभक्तिसे विहीन केवल पढाईका मौल रखनेवाला अविनीत शिष्य झामामौल करने लग गया.

इतनेहीमें गुरु महाराजने उस वैयावच्चीय सुविनीत शिष्यको आज्ञा दी

कि तुम उन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दो, इस वचनको सुनतेही "आज्ञाप्रमाण" इस पवित्र शब्दका उच्चारण कर उन प्रश्नोंके युक्तियुक्त प्रमाणसें ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि जिससें सर्व सभासद् लोग प्रसन्न हो गये उसही समय सर्व सभाके समक्ष गुरु महाराजने यह प्रकट किया कि गुरुभक्तिका प्रत्यक्ष फल इस प्रकार मिलता है और अविनीतोंकी अवगणना इस प्रकार होती है.

यह सुन वह भक्ति विहीन शिष्य लज्जित हुवा और गुरु महाराजसें यह प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! मैं महामूर्ख हूं कि आपकी सेवा बिलकुल न की केवल पढनेहीके स्वार्थमे लीन रहा इसही लिये मुझे सद्ज्ञान प्राप्त न हुआ और इस प्रकार दुर्दशासें दूषित हुवा, अब अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समस्त अपराधोंको क्षमा कीजियेगा आजसें मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आपकी सेवामे प्रतिदिन संलग्न रहूंगा.

अहाहा! गुरु महाराजकी कृपाका ऐसाही महात्म्य है, जो गुरु महाराजकी सेवा कर ज्ञान संपादन करता है वही निर्मल ज्ञानका भागी हो सकता है, पुस्तकके पढैये दिव्य ज्ञानी (men of deep thoughts) नहीं हो सकते क्योंकि गुरु गम्यताका जो उत्तम ज्ञान होता है वह पुस्तकोंमे प्रायः नहीं रहा करता है; देखिये किसी एक विशाल ज्ञानीने ठीक कहा है:—

## ( श्लोक )

**पुस्तक प्रत्ययाधीतं । नाधीतं गुरु सन्निधाः ॥**
**सभा मध्ये न शोभन्ते । जार गर्भाइव स्त्रियः ॥१॥**

भावार्थः—जो प्राणी गुरुके पास पढनेसें विमुख रहा और केवल पुस्तकके प्रतीतसें पढा हुवा है वह व्यभिचारिणी ( Adulteress ) गर्भवती स्त्रीके मुआफिक सभामें शोभाको प्राप्त नहीं होता है; अर्थात् लज्जित होता है. कहनेका तात्पर्य यह है कि गुरुगम्यताकी विद्याके सदृश अन्य कोई विद्या नहीं है.

गुरु महाराज यदि प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान बक्षीस करें तो एक शब्द सहस्र शब्द इतना फल करता है यह प्रत्यक्ष उपरोक्त दृष्टान्तसें तथा अनुभवसें सिद्ध है.

गुरु महाराज उत्तम भाजन देखकर ज्ञान प्रदान करते हैं क्योंकि मध्यम भाजनके अन्दर प्रदान करनेसें विषरूप हो जाता है कहा है:—"**पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धयेत्**" अर्थात् सर्पको दुग्ध पिलानेमें सिर्फ जहर बढ़ता है, मध्यम भाजनका यही लक्षण है

महानुभावा ! यदि कोइ यहांपर यह प्रश्न करे कि गुरु महाराज ही यदि शुद्धाशुद्धका विचारकर अशुद्धको ज्ञान प्रदान न करेंगे तो अधम लोग कैसे पावन हो सकते हैं ? उत्तरमें विदित होकि अधमको पावन करनेका लक्षण इस प्रकार होता है:—

जैसे अशुद्धक्षेत्र हलादि प्रयोगसे शुद्ध हो जाता है तद्वत् अशुद्ध भाजन भी शुद्ध हो जाता है; अर्थात् उस अशुद्ध भाजन के साथमें ऐसा प्रयोग करना चाहिये कि जिससे शुद्ध मार्गमें प्रवृत्त हो जाय इस अवस्था तक सामान्य ज्ञानका परिचय होना उत्तम है तत्पश्चात् शुद्धावस्थामें गुरु गम्यताका उत्तम ज्ञान प्रक्षेपण करना समुचित है यही परम्पराका प्रचलित नियम है

वर्त्तमानमें कइ एक भक्ति करानेके स्वार्थि गुरु वगेरे परीक्षा किये हुवे ही गुलाम्यानी भक्त जनोंको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान कर देते है किन्तु आखीरमें उसका बहुत ही बुरा परिणाम होता है; देखिये गृहस्थ लोग एक दमडीकी हंडी खरीद करते है उस समय यह फूटी है या अच्छी है इस बातको जाननेके वास्ते तीन टङ्कारोंसे बजाकर ग्रहण करते है; तो क्यों साहिब ? शिष्यवर्गकी या विद्यार्थिकी वगेरे परीक्षा किये हुवे उत्तम ज्ञान प्रदान करना कैसे समुचित हो सकता है ? अर्थात् अवश्य परीक्षा करना चाहिये

इधर वर्त्तमान जमानेमें कइ एक धूर्त्त विद्यार्थि लोग स्वार्थ लोभमें मग्न होकर बाह्य भक्ति लक्षणको दिखलाते हुवे उत्तम ज्ञान ग्रहण करनेकी कोशीस करते हैं और हृदयमें यह दूषित विचार करते है कि ज्ञान सम्पादन होनेके पश्चात् इससें परिचय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है नहीं ! नहीं !! इतना ही नहीं !!! बल्के ज्ञान संपादन करनेके पश्चात् यह चेष्टा किया करते हैं कि जब तक यह गुरु महाराज मौजुद हैं तब तक मेरी प्रतिष्टा नहीं हो स-

रहेगी इसलिये कोइ प्रयत्न करूं कि यह संसारसें प्रस्थान कर जाँय यह वही मसलहै कि जिस तरह सिंहके दुष्ट शिशुने अपनी उपगारिणी बिल्लीको मारनेका प्रयत्न किया था; इसही लौकिक दृष्टान्तको किञ्चित् रूपमें प्रकाशित करते हैं:—

## ( कृतघ्नता पर उदाहरण. )

एक किसी भयानक अटवीके अन्दर बहुत से जानवर रहते थे, वे एक दूसरेसें संयोग कर अपना योग्य कार्य किया करते थे.

व्यावहारिक यह कहावत है कि बिल्ली सिंहकी मासी होती है. एक दिनका जिक्र है कि एक सिंहके बच्चेने जाकर मार्जारको प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझे पञ्जे मारने वगैराकी कला सिखलानेकी कृपा कीजिये; सुनतेही बिल्लीने दिलमें यह विचाराकि इस नूतन भानजेको एकदमसे सर्व कलाएँ नहीं सिखलाना चाहिये न मालूम विनीत है या अविनी है ऐसा समझ उसने यह उत्तर दिया कि कलसें तूं कला सीखनेको आना.

द्वितीय दिन प्रातःकाल होते ही वह सिंहका बच्चा अपनी मासी बिल्लीके आश्रम पर आन पहुँचा और प्रार्थना की कि मैं आपकी आज्ञानुसार हाजिर हुवा हूँ, अब कृपा फरमाकर अपनी कलाकौशल सिखलाइयेगा; उस बिल्लीने दया लाकर पञ्जा मारना आदि कला कौशलमे निपुण किया.

सिंहके बच्चेने एक दिन दिलमें विचार किया कि जब तक मासी मौजूद रहेगी तब तक अपनी प्रतिष्ठा ( Respect ) होना दुष्वार है क्योंकि पाठक गुरुकी विद्यमानीमें विद्यार्थिकी पूर्णतः प्रतिष्ठा नहीं होती इसलिये इस मासीको इसभवसें विदा कर देना चाहिये; ऐसा विचार विकराल रूपको धारण कर ज्योंहीं बिल्लीको मारनेको पञ्जा उठाया त्योंहीं बिल्ली तत्काल दरख्त पर चढ गई.

यह अवस्था देख सिंहके बच्चेने बिल्लीसें प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझ-

को यह कला तुझने क्यों न सिखलाई; बिल्लीने उत्तर दिया रे दुष्ट! अधम!! कृतघ्न!!! यदि तेरेको यह कला सिखलाती तो आज मेरा जीवन रहना दुश्वार था सच है! कृतघ्नों ( Ungreatful ) का यही लक्षण है और इस ही लिये सिंह पन्जे वगेराकी कला जानता है मगर दरख्तपर नहीं चढ सकता है

इस दृष्टान्तसें तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल्लीने अयोग्य सिंहके बचेको संपूर्ण कला नहीं सिखलाई उस ही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष योग्यायोग्यकी परीक्षा किये वगेर अयोग्यको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान नहीं करते है मगर यदि व अपनी अतुल कृपाद्वारा किञ्चित् भी गुरुगम्यताका ज्ञान बक्षीस कर दे तो भवका निस्तारा होना अति सहज है; गुरु महाराज ही तरणतारण है; देखिये एक सुविनीत विद्वान्का कथन है:—

## ( श्लोक )

विदलयति कुवोधं वोधयत्यागमार्थं ।
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ॥
अवगमयति कृत्याकृत्य भेदं गुरु र्यो ।
भवजल निधि पोतस्तं विना नास्तिकश्चित ॥१॥

श्री सोमप्रभाचार्य ॥

भावार्थः—हे स्वामिन्! आप अज्ञानको विनाश करनेवाले है तथा आगमके रहस्यार्ऽथको वतलानेवाले है; एवम् पुण्य पापरूप सद् और असद्गतीका प्रकट कथन करनेवाले है तथा हे गुरुवर्य? कृत्याकृत्य भेदोंको आप वतलानेवाले है इस ही लिये हे नाथ? इस भवरूपी संसारसें तिरानेमें आपके शिवाय कोइ अन्य नौका नहीं है; अर्थात् आप ही समर्थ और आधारभूत है

गरजकी जगत्रयमे गुरु महाराजके समान कोइ उपगारी नहीं हो सकता इस ही लिये उनकी आज्ञामें कटिबद्ध ( engage ) होना यह शिष्य वर्गका मुख्य धर्म है और इस ही सें चारित्रकी निर्मल आराधना कर अपनी आत्माका भला कर सकता है

## ॥ वृहद्दीक्षा ॥

इन महानुभावकी वृहद्दीक्षा इस ही सालके मार्गशीर्षमे बडे ही समारोहसें हुई इस वृहद्दीक्षाका किञ्चित स्वरुप लिख दिखानेका प्रयत्न करता हूं:—

सज्जनो ! इस वृहद्दीक्षाका नाम छेदोपस्थापनीय है. यानी छोटी दीक्षामे प्रमाद वश लगे हुए प्रायश्चित्तोंकों छेदनकर निर्मल पञ्च महाव्रत (give great oaths ) उच्चराए जाते हैं. इस अवस्थाके पूर्व तक केवल सर्व सामायकका ही अधिकारी रहता है. इस प्रकार उत्तम चारित्रका प्राप्त होना बडा ही दुर्लभ है; देखिये श्री उत्तराध्ययनके तृतीय अध्ययनके प्रथम गाथामें इस प्रकार फरमाया है:—

## ॥ धर्मदेशना ॥

### ( गाथा )

चत्तारिपरमङ्गाणि । दुल्लहाणीह जन्तुणो ॥
माणुसत्तं सुईसद्धा । संजमम्मीय वीरियम् ॥१॥

अर्थः—प्राणियोंको मनुष्यपन, सूत्रपर श्रद्धा, संयम और वीर्य इन चार उत्कृष्ट अङ्गोका प्राप्त होना अति दुर्लभ है. इन चारों अङ्गोका किञ्चित् विशेष स्वरूप लिख दिखाता हूं:—

यह चेतन अनादि कालसें निगोदके अन्दर रहा हुवा अनन्त दुःखोंसे दग्ध हो रहा है. नरक ( Hell ) के जीवोंको जितना दुःख है उतना अन्य गतिवालेको नहीं मगर विचारे निगोदके जीवोंकों उससे भी अनन्त गुणा दुःख ज्ञानियोंने फरमाया है. देखिये मनुष्य जिस वख्त जन्म लेता है उस समय इतनी वेदना होती है कि जैसे कोई बलवान् पुरुष साढेतीन क्रोड सूइयें गरम करके अपनी शक्तिपूर्वक किसी मनुष्यके सर्व रोमराइमे प्रवेश कर दे इसमें जितनी वेदना है उससे भी अनन्त गुणी होती है. कहा है:—

## ( गाथा )

ऊंठकोमी सूई ताती करी रे । समकाले चेवे कोई राय जो ॥
तेथी अनंतगुणी तोहा कहीरे । डुःख सहत विचार तव थायजो
तूंने संसारी ॥१॥

निरोगी पुरुष एक स्वासोस्वास लेता है इतनेमे निगोदिये जीव कुछ जाजेरू (अधिक) सत्तरा नव कर लेते हैं यानी इतनी टाइममे सतरा वरत जन्म और सतरा वरन मरणको माप्त होते हैं आत्मार्थि महानुभावों ! विचारिये कि जब एक वखत जन्म लेनेसें इतना डुःख होता है कि जिसको सुनने मात्रसें नव्यात्माकी देह कम्पायमान हो जाती है, अश्रुपातसें नदियें बहने लग जाती हैं, करणमें शूलसा मालूम होता है, भुजाका बल नष्टताको माप्त हो जाता है, बुद्धि विह्वल दशाको माप्त हो जाती है, मन शोकसागरमें गोता लगाने लग जाता है, मगज शून्य दशाको माप्त हो जाता है, चिन्ता महारानी शरीरके मत्येक अवयवमे मवेश कर जाती है कहाँ तक कहा जाय वज्रके घावसें भी अधिक डुःखकों माप्त होता है शिवाय डुःखके कुछ भी नहीं सूझता जब सुननेसे ही ये हाल है तो भला भोगती वखतका तो कहनाही क्या है

'धर्मानुरागियों ! एकवार जन्मका इस मकार डुःख होता है तो विचारे निगोदिये जीव जोकि निरोगी पुरुषके एक श्वासोश्वासके अन्दर १७ वखत जो जन्म मरण करते हैं उनके डुःखोंको केवली महाराज या उनकी आत्मा ही जान सकती है

ऐसे महान् कष्टके स्थानमें यह चेतन अकाम निर्जरा कर व्यवहार राशिमें माप्त होता है इसमें भी यदि अपर्याप्तावस्थाको माप्त हुवा तो कोइ भी कार्य करनेको समर्थ नहीं हो सकता कदाच पुण्ययोगमें पर्याप्तावस्था पालिया और एकेन्द्रियें उत्पन्न हुवा तो भी नाना मकारकी वेदना सहन करना पड़ती है; देखिये पृथ्वी, अप् तेउ, वाउ और वनस्पतिकाय मनोज्ञानके कारण कुछ भी उचित कार्य करनेको समर्थ नहीं हो सकती हैं

अकाम निर्जरा करता हुवा अनन्त पुण्याईके वश बेइन्द्रिको प्राप्त करता है तद्वत् क्रमशः तेन्द्रि चौरिन्द्रि तक पहुंचता है मगरताहम भी ज्ञानादि तथा मनोऽभावसें यथार्थ धर्म प्रतिपालन नहीं कर सकता है.

## ( चतुर्गतिका दृश्य )

इस स्थलसें उठकर असन्नि पञ्चेन्द्रिको प्राप्त करता है मगर यहांपर भी नव प्राण होनेसें धर्मका यथावत् आचरण नहीं कर सकता है. पश्चात् जीव सन्नी पञ्चेन्द्रिको धारण करता है; इस अवस्थामें भी चारों गतियें मौजूद हैं. यदि जीव नरक गतिमें प्राप्त हो जावे तो नाना प्रकारकी वेदनाको सहन करना पड़ता है वहांपर रहे हुवे परमाधामी किस २ प्रकार वेदना देते हैं; देखिये:—नेरैयेकी टंगडि पकड़कर चारसो पांचसो योजन ऊंचे उछालते हैं बीचमें कई वाजकवे आदि चूंट२ कर खाते हैं, नीचे कुंभीपाक नरकमें गिरते हैं, कभी खड्गसे शिर काटते हैं, कभी हात, कभी पेग, कभी नाक, कभी कान काटते हैं; कभी भाला शिखासें डालकर नीचे निकाल देते हैं, कभी अधोसें ऊर्ध्व भागमें निकलाते हैं. कभी नेत्रोमें पिरोते हैं, कभी कर्णोमें और कभी मुखमें प्रवेश करते हैं, कभी कटारीसें हृदय विदीर्ण करते हैं, कभी लोहुकी नदीमें टंगडी पकड़ फेंक देते हैं, कभी गरम २ स्तम्भ आलिङ्गन करवाते हैं, कभी भयानक रूप वनाकर डराते हैं इत्यादि अनेकशः घोरातिघोर कष्ट देते हैं. जिसका पूर्ण स्वरूप हमारी लेखनीसे वाहर है.

यदि जीव पुण्य योगसें तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हो जावे तो वहां पर भी देखिये कितने २ कष्ट सहन करना पड़ते हैं; जैसे विचारें वेलोंको सार्थवाह रथोमें, गाड़ियोंमें जोतकर मनोबंध वोझा खिचवाते हैं; किसान कुवेमेंसे जल खिचवाते हैं; नेत्रोंको वंद कर तैलीघानीमें घूमाते हैं; व्योपारी पीठपर पोठी रखकर कंकर पत्थरमें गमन करवाते हैं. भिस्ती पानीकी पखाल लादकर डुलाते जाते हैं; किसान खेतोंमें हलमें जोतकर जमीन विदारण करवाते हैं. विचारे घोड़े फिट्न (वग्गी) तांगे. इक्के वगेरामें जुडकर कितने ही मनुष्योंका व माल असबावका बोझा खीचते हैं; घासपानी और दाना भी

वखतपर नहीं मिलता है; चाबुकोंके प्रहार सहन करते हुवे अपने कालको व्यतीत करते है इस प्रकार हस्ति, ऊठ और खरादि जानवरोंको भी अनेकशः कष्ट सहन करना पड़ता है जोकि हम प्रत्यक्ष दृष्टिसे देख सकते है.

यदि जीव पुण्य कृत्यसे देवगतिमें उत्पन्न हो जावे तो व्रत पच्चखाण ग्रहण नहीं करनेसे यथेष्ट धर्मका पालन नहीं कर सकता है विचारे देवता प्रार्थना करते है कि हे प्रभो ! दो घड़ीकी सामायक यदिहमें भी उदय आ जाय तो हमारा जन्म सफल हो जाय; यद्यपि वह कितने ही सुखी है तदपि उस गतिमें मोक्ष हरगिज नहीं हो सकता यही प्रबल पुण्यहीनताका लक्षण है

भोभव्यात्मा ! उपरोक्त तीनो ही गतियोंको परित्याग करके जो प्राणि मनुष्य गतिको प्राप्त करता है वह अनन्त पुण्याईको धारण करनेवाला अपने यथार्थ धर्मको प्रतिपालन करनेको समर्थ हो सकता है इस प्रकार कठिनता पूर्वक मनुष्य भव प्राप्त होता है मगर इस गतिमे भी कितनी ही आफतें होने सें यथार्थ धर्मको पाना कुछ सहल नही है किन्तु अतिही कठिन है देखिये:—

यदि अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न हो गया तो धर्मकी प्राप्ति नही हो सकती है, कदाचित पुण्य योगसें आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुवा और नीच जातिमें प्राप्त हो गया तो भी यथार्थ धर्म नही पा सकता, यदि उत्तम जातिमें प्राप्त हुवा और दरिद्र कुलमे जन्म लिया तो भी श्रेष्ट धर्मकी प्राप्ति नही हो सकती, यदि उत्तम कुलमें प्राप्त हुवा और शरीरसें लाचार रहा तो भी धर्मकरणी नहीं कर सकता, यदि शरीर निरोग रहा और दुर्व्यसनोमें मग्न रहा तो भी धर्मकृत्य नही कर सकता यदि दुर्व्यसनोसे अलग रहा और देव गुरु धर्मकी योगवाई न मिली तो भी इष्ट सिद्धि नहीं होती, अगर पुण्ययोगसें उस क्षेत्रमें इन तीनों रत्नोंकी योगवाई हो और उनसें सयोग न होतो भी पुण्यहीनता समझना चाहिये, कदाचित् संसर्ग हुवा और धर्म श्रवण न किया तो भी यथार्थ प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि श्रवण किया और उसको दिलमे धारण न किया तो भी कुछ फल नहीं हो सकता, कदाचित धारण किया और उस जिन वाणीपर श्रद्धा न हुई तो भी उत्तम फल प्राप्त नहीं हो सकता, यदि किञ्चित् श्रद्धा हुई और उसके मुताबिक प्रवृत्ति

न की तो जी संपूर्ण यथेष्टता प्राप्त नहीं हो सकती. इस प्रकार जिनागमपर श्रद्धा होना वड़ी डुर्लज है

महानुजावों! उत्तम श्रद्धा हो जानेके वाद जी निर्मल चारित्रको ग्रहण करना अत्यन्त डुर्लज है, गृहस्थाश्रममें हजारो डुःख मौजूद हैं यथाः—सवसें वड़ा चिन्तारूपी डुःख आकर व्याप्त हो जाता है. जैसेः—

लक्ष्मी न होनेकी हालतमें उसे प्राप्त करनेका अधिकाधिक फिकर रहता है, अरे मैं क्या करूं? व्यापार करूं या डाका डालूं या देश लूंटुं या निलाम करूं या अन्य द्यूत व्यापार करूं? आदि अनेक विकल्प वने रहते हैं तथा लक्ष्मी होनेपर उसके रक्षा की अधिकतः चिन्ता होती है यथाः—

अरे कोई चोर न ले जाय, कहीं राज न ले ले। कहीं डाकान पड़ जाय, कहीं अग्निमें न जल जाय, कहीं देवता अपहार न कर लें और कहीं जमीन निगल न जाय आदि अनेकशः डुःख होते हैं. एवम्ः—

कुटुम्ब परिवारके जी वहुतसें डुःख हैं यथा कोई कु स्त्रीसे संयोग हो जाय तो वह अनेकशः डुःख देती है जैसें विचारा पुरुष डुकानसें या नोकरीसें जोजनकी वख्त घरपर आता है उस तप्ताऽवस्थामें वह स्त्री कहती है आजनाज नहीं है, कजी कहती घृत नहीं है, कजी कहती गुड़ नहीं है, कजी कहती शकर नही है, कजी कहती दाल नहीं है, कजी कहती आज लकड़ियें नहीं हैं क्या तुमारे हाथपेर जलाके रोटियें वनाऊँ? इस प्रकार विचारे उस पुरुषको जोजनके समय डुःख देती है, और जी सुनियेः—

जिस वख्त की शयनगृहमे पहुंचता है उस वख्त जी नाना प्रकारसें वड़वड़ाहट्ट किया करती है, कजी कहती मुझे उत्तमोत्तम वस्त्र वना दो, कजी कहती अछे २ जेवर वना दो, कजी कहती मुझे उत्तममोत्तम खानपान कराउ; अन्यथा मैं तुमे स्त्रीकार न करूंगी, न तुमारे घरमें रहूंगी आदि अनक प्रकारको धमकी वतलाकर विचारे उस पुरुषको डुःखि कर देती है.

इस ही प्रकार वहीन और लड़की यही कहा करती हैं कि मुझे कुछ जी

नहीं दिया चाहे उन्हे हजारों रुपैयेका माल देदिया जाय तोभी संतोष को प्राप्त नही होती है पिता, माता, भाई, पुत्र इत्यादि सर्व अपने स्वार्थमे रमण करते है यह डुनियाइ रिस्तावही तक फलदायक है जहा तककी अपना शरीर निरोगावस्थाको धारण किया हुवा है तथा लक्ष्मीने जब तक निवास किया है

देखिये स्वार्थि रिस्तहदार बाहरसें इतना प्रेम दिखलातें हैं कि जैसें निर्गुणी रोहिडेके पुष्प अपने मनोहर रूपको बतलाते हैं; सच है! डुर्जनोका यही स्वरूप है लेकिन सज्जन पुरुष वेही है कि जो डुःखमे भी सहाय्य करते है सुखमे तो हजारों मित्र बन जाते है कहा हैः—

## ( दोहरा. )

सुखमे सज्जन बहुत हैं । डुःखमें लीने ठीन ॥
सोना सज्जन कसनको । विपति कसोटी कोन ॥१॥

इस प्रकार स्वार्थि सम्बन्धियोंकि डुःखके अन्दर परीक्षा हो जाती है कि उनका सच्चा प्रेम है या झूठा इसपर मुझे एक अनुपम दृष्टान्त स्मरण होता है उसे यहा उध्दृत कर लिख दिखाता हूंः–

## ( संसारकी अनित्यताका अनुभव. )

जम्बुद्वीपके इसही भरतक्षेत्रके अन्दर मालव देशमें अवन्तिकापुरी नामक एक अनुपम शहर है वहापर विक्रमादित्य राजा अनेक गुणशाली राजाओंसे शोभायमान होता हुवा सुखपूर्वक राज्य करता था उसमें बडे २ विशाल जैन मन्दिर अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट कर रहेथे और ध्वजा पताका तोरणादि अलौकिक शोभासें सुशोभित थे

वहापर देवगुरु भक्त, धर्म कार्यरक्त, विनयवन्त अनेक भव्य श्रावक श्राविका निवास करते थे; उन्हमें मणिचन्द और सुवर्णचन्द नामक दो प्रतिष्टित सेठ निवास किया करते थे उनके सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता दो स्त्रियें

थीं, उनके–सूर्ययश और चन्द्रयश नामके दो विनयवान् पुत्र थे–इन दोनोके–चन्द्रमति और तारामति नामकी दो स्त्रियें थीं.

इन दोनो श्रावक बंधुओंके आपुसमें गाढ प्रीति थी इनमेंसे सूर्ययश कुमार विशाल बुद्धिको धारण करनेवाला जिनेश्वरके आगमोंके रहस्यका वेत्ताथा सांसारिक विषय-सुखोंको भोगता हुवा भी अनित्य भावनामें निमग्न था. इधर चन्द्रयश कुमार बिचारा भोलेपनको धारण किया हुवा गहरे विचारोंसें विमुख था.

एक दिनका जिक्र है कि यह दोनो मित्र आपुसमें वार्त्तालाप कर रहे थे उसही अवसरमें विद्वर्य सूर्ययश कुमारनें संसारकी अनित्यता प्रकट कीकि हे मित्र ! पिता, माता, भाइ, बहीन, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि समस्त परिवार स्वार्थके साथी हैं कोई किसीका नहीं सब झूठा है ऐसा जिनेश्वरका वचन है इसलिये किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिये. सदा सावधानीसें ही रहना यह उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है.

यह व्यवस्था सुन चन्द्रयश बोला कि मित्र तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं; देखिये मेरे मातपितादि मुझपर अधिकाधिक स्नेह रखते हुवे लालना पालना उत्तम प्रकारसें करते हैं मेरे विरह ( Separation ) को बिलकुल सहन नहीं कर सकते, आधिव्याधिमें इतना दग्धपना हो जाता है कि जो मेरे कथनसें बाहर है, इधर स्त्री ऐसी पतिव्रता है कि जो मेरे दर्शन किये वगेर अन्नजल ग्रहण नहीं करती है तथा आज्ञासें एक अणुमात्र भी विपरीत नहीं करती, मेरी विरहाऽवस्थाको समयमात्र भी सहन नहीं कर सकती, आधिव्याधिमें मृत्युवत् दुःखको प्राप्त हो जाती है, यहाँ तक उसका उत्तम व्यवहार है कि जहांपर मेरा स्वेद (पसीना) गिरता है वहांपर रुधिर भालनेकों तैयार है अर्थात् विनय भक्तिमें इतनी लीन है कि जो हमारे वक्तव्यसें बहार है, इसही प्रकार अन्य कुटुम्ब परिवार भी वैसा ही स्नेहकारी है; इसलिये हे मित्र ! तुमारा कहना तद्दन मिथ्या है.

यह सुन सूर्ययश बोला कि हे भोले भाई! तेरा यह कहना ठीक नहीं

वे सन्ध्याके रङ्गके मुआफिक पलटते देर नहीं करते हैं गजसुकुमालजीने अपनी मातासें ठीक कहा हैः—

## ( गाथा )

पलटे रङ्ग पतङ्ग कसूंबाको जिसो
ते ऊपर विश्वास जामण करवो किसो ॥१॥

हे मित्र! यदि तेरी इच्छा हो तो तेरे स्नेही कुटुम्बकी प्रत्यक्ष परीक्षा करके बतलाऊँ कि दुःखमें किस प्रकार साथी है इस बातको सुनकर चन्द्रयशाने सहर्ष स्वीकार किया

सूर्ययशने उसको कहाकि हे मित्र! तुम मकानपर जाकर "उदरमें शूलरोग हो गया" ऐसा बहाना ( *Pretence* ) करना और अपने नेत्रों वगैरेको ऐसे विकृति रूपमे करनाकी जिससे सब लोगोंको मृत्यु अवस्था प्रतीत होने लग जाय

सुनतेही इन शब्दोंके वह शीघ्रही अपने घरपर पहुंचा और भोजन करके एकदमसें कल्पित शूलरोगसें दग्ध होता हुवा विलापात करने लगा.

इस अवस्थाको देखकर मातपिताओंने कइ एक वैद्य, हकीम और मास्टरोंको बुलाये मगर किसीकी भी औषधी फायदेमन्द न हुई सर्व कुटुम्बके लोग निराश होकर इस भयानक दुःखसे दुःखित होने लगे

इसही अवसरमें वह सूर्ययश कुमार वैद्य स्वरूपको धारणकर औषधीका पोंक लेकर चन्द्रयशके मकानपर जा पहुंचा पहुंचतेही नोकरसे कहाकि शेठ साहबमें जाकर कहोकि एक विदेशी वैद्य द्वारपर खडा है, वह प्रत्येक बीमारीकी उत्तमोत्तम औषधी जानता है यह सुन नोकरने शीघ्रही शेठमें जाकर प्रार्थना की सुनतेही शेठने अतीव हर्षके साथ बुलानेकी आज्ञा बक्षीसकी, उसही वख्त नोकरने उस वैद्यको भीतर प्रवेश करा दिया, वैद्यने अपने योग्य

स्थानपर बैठकर उस ग्लानीकी नब्ज देखी और कहाकि एक दुग्धका कटोरा भर लेआओ.

सुनतेही इस शब्दके उसका पिता रजत (चांदी) के कटोरेके अन्दर निर्मल दुग्ध भर लेआया उस वैद्यने कटोरेको लेकर उस ग्लानीके शरीरपर इक्कीसवार उतारा किया और सब लोगोंके सामने यह ज़ाहिर कियाकि व्याधिका जितना जहर था सर्व इसके अंदर खिंचे गया है इसलिये जिसको यह कुमार प्यारा हो वह इसे पानकर लेवें जिससें यह कुमार जीवित हो जायगा और पान करनेवाला मरण शरण हो जायगा.

अब यह वैद्य प्रत्येकको पृथक्२ पूछता है उसपर लोग क्या२ उत्तर देते हैं सो विचित्र लीला ध्यानपूर्वक पढियेगा.

प्रथमही प्रथम वह वैद्य दुग्धका कटोरा लेकर उसके पिताके सन्मुख हुवा और प्रार्थना कीकि हे शेठ साहब! आप वृद्ध हैं अधिक जीवकी संभावना नहीं इसलिये यदि आप सच्चे प्रेमी हैं तो आफताफके मुआफिक दमकते हुए इस कुंवर कन्हैयेकों जीवित कीजिये और लीजिये यह दुग्ध सानन्द पान कीजिये.

पिताका उत्तरः—प्यारे वैद्यजी! यह कार्य होना अति कठिन है इस जगतमें विरले पुरुषोंको छोड़कर कौन ऐसा है कि जो चाहकर मृत्युवश होवे इसके अतिरिक्त जिस वातको तुम कहो वह स्वीकार है, यदि हम दोनो दम्पती मौजूद रहेंगे तो पुत्रोत्पत्ति होना असंभवित नहीं है. भाई वैद्यजी! निरर्थक हांहां करनेमें कुछ लाभ नहीं है देखिये ठीक कहा हैः—"**आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जा सुखी भवेत्**" इसका अनुकरण करते हुवे मैंने आपसें स्पष्ट निवेदन किया है.

यह सुन वैद्य कौतुकार्थ माताके सन्मुख उपस्थित हुवा और प्रार्थना कीकि हे शेठानी साहवा! यह आपका युवान् पुत्र मिनटोंके अंदर मरण शरण हो जायगा, जिस पुत्रकोंकि आपने नौ मास पर्यन्त अपने उदरके अन्दर स्थान

प्रदान किया है बाद में नाना प्रकारकी शुश्रुषाकर पालन किया है वह मनोहर पुत्र आज परलोकके प्रस्थानकी तैयारी कर रहा है आप वृद्धावस्थाके अन्दर पहुंच गई हो अब अधिक जीवनकी संभावना नहीं इसलिये कृपाकर अपने प्यारे पुत्रको बचाओ, रक्षा करो, इस दुष्ट कालके कब्जेसें मुक्त करो; अर्थात् जीवितदान दो और लो यह दुग्धपान कर लो

माताका उत्तरः—हे भाई वैद्यजी! तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है किन्तु यह कार्य होना बहुत कठिन है इस दुनियामें सैकडों पुत्र जन्मते है और इसही प्रकार मृत्युको प्राप्त होते है तो भला! किसर के पीछे जान दी जाय यह ससारका अनादि प्रवाह ऐसाही चला आता है और इसही प्रकार चलता रहेगा विशेष क्या कहू तुम खुद सुज्ञ हो

इसके बाद दुग्धका कटोरा लेकर बहुत सेरिस्तहदारोंके सन्मुख हुआ किन्तु सर्वने इसही प्रकार टूटाफूटा उत्तर दिया अन्तमे वह वैद्य उसकी स्त्रीके पास गया और कहाकि हे भद्रे! तुम अपने पतिकों बचाओ, अगर पति मर जायगा तो तुम्हें इस दुनियामे कुछ भी सुख नही है देखो उत्तम खानपान भी तुम नही कर सकती, उत्तम वस्त्र भी भोगमें नही ला सकती हो तथैव अलङ्कारोंसें अलङ्कृत नहीं हो सकती, उत्तम सेजपर शयन नहीं कर सकती हो, हँसीमजाक तथा अन्य वार्त्तालाप निर्भर नहीं कर सकती हो, अपने शीलकी रक्षा भी उत्तम प्रकारसें करना दुर्लभ है इसही प्रकार किसीसें घनिष्ट सम्बन्ध रखना भी दुःसाध्य है कहनेका तात्पर्य यह है कि पति मृत्युके बाद स्त्रीकों किसी प्रकारका सुख नही हो सकता है तो फिर अपने प्यारे पतिके बचानेका यश क्यो छोडती हो स्त्रियोंका यह मुख्य धर्म है कि अपने पतिके संकट ( Distress )को निवारण करे और सुना भी जाता है कि तुम बडी ही पतिव्रत धर्मधारका हो और सदैव अपने पतिकी आज्ञामे चलनेवाली हो तथैव गाढ प्रीति रखनेवाली हो इसलिये हे बुद्धिमते! लो यह दुग्धपान करो और अपने प्यारे प्राणनायकों दुष्ट मृत्युसे बचालो

स्त्रीका उत्तरः—वैद्यजी! तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु जीते जीव मरना कैसे बन सकता है देखो इस दुनियाके अन्दर हजारों स्त्रियोंके पतिकाल

प्राप्त हो गये हैं इसही प्रकार मेरी भी हालत हो जायगी अर्थात् हजारों विधवाएंकोनेका आश्रय ले रही हैं इसही प्रकार एक मैं भी बढ़ जाऊंगी तो कुछ हर्ज़ नहीं मगर भाई वैद्यजी ! तुम्हारे कथनानुसार करनेकों मैं सर्वथा असमर्थ हुं.

उस वैद्यने इस प्रकार अद्भुत घटना देखकर पुनरपि समस्त कुटुम्बकों कहाकि अरे भाईयो ! कोई भी दया लाकर इस कुमारकी रक्षा करो तुम्हारा प्रेम इसही उपमावस्यामें प्रतीत होगा.

कुटुम्बका उत्तरः—कौन इस जगत्के अन्दर ऐसा है जो अपना व अपने संबंधियोंका भला न चाहता हो मगर क्या किया जाय जीवित हालतमे जान देना कठिन है और इसही कारण हम सब मजबूर हैं. विशेष क्या कहें तुम खुद बुद्धिमान हो.

इस आश्चर्यजनक लीलाको देखकर उस चन्द्रयशको विस्मय करता हुवा वह वैद्यरूप मित्र सर्व कुटुम्बके प्रति कहने लगाकि धन्य हो तुम्हकों व तुम्हारे उत्तम कुलकों, धन्य हो तुम्हारे शुद्ध व्यवहार तथा तुम्हारे गाढ प्रेमको किन्तु इस प्रकार कुटिल व्यवहार रखते हुवे अपना उत्तमपन समझते हो मैंने केवल तुम्ह लोगोंके स्नेहकी परीक्षाके वास्ते ही इतना प्रयत्न किया है यह संसार महान मिथ्या तथा विश्वासघातक प्रतीत होता है देखो मैं यह दुग्धपान करता हूं इससे मुझे कुछ भी नुकशान नहीं हो सकता यह बात सुन सर्व लज्जित हुवे.

## ( गृहस्थाश्रमसें ग्लानी और वैराग्यमें रमणता )

**चन्द्रयश इस संसारकी अद्भुत लीलाको देखकर वैराग्यताकों प्राप्त हुवा.**

इसही अवसरमें एक चतुर्ज्ञानधारी महान् आचार्यका पदार्पण हुवा, इस अपूर्व खुशखबरीकों सुनतेही सर्व लोक एकत्रित होकर पूज्य गुरुवर्यके सन्मुख

गये, और महताम्म्बरसें नगर प्रवेश ( Entry ) करवाया उपाश्रयमें प्रवेश होतेही उपगारी गुरुवर्यने अपनी अलौकिक धर्मदेशनासें भव्य जनोको मुग्ध किये; वह चन्द्रयश कुमार भी इस जलसे मेंशरीक था

एक दिन उन धर्मावतारने संसारकी अनित्यता ( Transient ) पर असाधारण व्याख्यान दिया जिससें अनेक भव्यात्मा गृहस्थाश्रमके दुःखसें धूज पडे इसमें सबसें अधिक उदासीनता उस चन्द्रयशको प्राप्त हुई, यह कुमार अपने मातापिताकी आज्ञाको धारणकर इन विशाल ज्ञानीके पास अनेक भव्य प्राणियोंके साथ महताम्म्बरमे निर्मल चारित्र ग्रहण किया

धन्य है ! उस अतुल वैरागीकोकि जिसने दुःखके दाता गृहस्थाश्रमको तत्काल परित्याग कर भवतारक चारित्र अङ्गीकार कर लिया

इस दृष्टान्तसें आपको विदित हो गया होगा कि यह गृहस्थाश्रम किस प्रकार मिथ्या है, तथापि निर्मल चारित्रको अख्तियार करना अति दुर्लभ है जो भव्यात्मा इस भवोध्धारक चारित्रको अख्तियार करते है वे महानुभाव पञ्च महाव्रतको भली प्रकार पालन कर सकते हैं

यह पञ्च महाव्रत एक ऐसे उत्तम रत्न है कि जिसको व्यवहार निश्चयादि भेदोंद्वारा यथार्थ पालन करे तो उत्कृष्ट मोक्ष पद प्राप्त होता है उनहीं महान् पञ्चरत्नोंकी व्याख्या लिख दिखाते हैः—

## ॥ पञ्च-महाव्रतोंका दिग्दर्शन ॥

### प्रथम अहिंसा महाव्रत.

**किसी भी प्राणीकों हिंसा ( तकलीफ ) न पहुँचाना उसें अहिंसा महाव्रत कहते है.**

-व्यवहारसेंः—पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति, बेन्द्रि, तेन्द्रि, चौरिन्द्रि, और पञ्चेन्द्रि, इन नौ प्रकारके जीवोंकी हिंसा करे नहीं, करावे नहीं और

करतेको अनुमोदे नहीं एवम् २७ मनसें, वचनसें, और कायासें एवम ८१ प्रकारसे सर्वथा हिंसाको परित्याग करे, अर्थात् हिंसा चतुष्कर्ममें जघन्यसे प्रथम भेद व उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा त्याग करे.

## ( हिंसाचतुष्क )

### १ द्रव्यसें हिंसा करता है भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसें मुनिराज अहारपानीके वास्ते तथा विहार वगेरामें गमनागमन करते हैं उस वख्त जो कोइ हिंसा हो जावे वह द्रव्य हिंसा है अर्थात् स्वरूप हिंसा है बन्ध हिंसा नहीं.

### २ भावसें हिंसा करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—दिलमें ऐसा विचार होता है कि मै अमुक मनुष्यको या अमुक जानवरको प्राणरहित करदूं अथवा अमुक प्राणिको अमुक दुःखसें दुःखी करदूं इत्यादि अनेक दुष्ट विचार करता है लेकिन हिंसा करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह भाव हिंसा जानना; अर्थात् इससे अशुभ बंध पड़ता है.

### ३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे हिंसा करता है.

विवेचनः—परिणाम भी कषायके रहते हैं तथा द्रव्य हिंसा भी करता है; अर्थात् दोनो प्रकारकी हिंसा करके दुर्गतिका भागी होता है.

### ४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे हिंसा नहीं करता.

विवेचनः—यह शून्य भांगा है; अर्थात् असंभव है.

निश्चयसेंः—रागद्वेष करके जो अपनी आत्मा लीन हो रही है उससें मुक्त होकर अपने निज स्वरूपको प्रकट कर निर्मलावस्थाको प्राप्त होना.

# द्वितीय सत्य महाव्रत.

## सर्वथा असत्यका परित्याग करना उसें सत्य महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—क्रोध, मान, माया और लोभसें झूठ बोले नही, बोलावे नहीं और बोलतेको अनुमोदे नही एवम् १२ मनसें वचनसें और कायासें एवम् ३६ प्रकारसें सर्वथा मृषावाद परित्याग करे, अर्थात् मृषाचतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद व उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा परित्याग करे

## ( मृषाचतुष्क )

### १ द्रव्यसें झूठ बोलता है भावसें नहीं

विवेचनः—जैसें किसी एक वियावान जङ्गलके अन्दर एक मुनिराज विश्राम ले रहे थे उस वख्त एक सिंह पास होकर निकला उसको भली भांति जान लिया थोडी देरके बाद क्या देखते हैं कि बहुतसे मनुष्योंके साथ अनेक शस्त्र धारण किया एक राजा आन पहूंचा पूछता क्या है कि हे मुनीश्वर ? सिंहको इधर निकलते आपने देखा है क्या ?

यह सुन वह मुनिराज दिलमे विचार करने लगे कि यदि मे बतलाता हूँ तो पचेन्द्रिय जीवकी घात होती है; यदि इनकार करता हूँ तो मृषावादका प्रायश्चित लगता है; यदि मौन रखता हू तो जीवन रहना मुश्किल है ऐसा विचारते हुवे शीघ्रही यह ज्ञात हुवाकि जिनेश्वरका एकान्त मार्ग नहीं है धर्मके सर्व असूल सापेक्ष और निर्बाध्य है, उन सर्वज्ञ देवने द्रव्य तथा भाव ऐसे दो प्रकारके मृषावाद फरमाये हैं: द्रव्य मृषावाद उसे कहते हैं कि जिसमें महत्व कारण होनेसे अधिक लाभके वास्ते यदि बोलना पडे तो उससे बन्ध नहीं पडता है किन्तु स्वरूप मृषावाद है; ऐसा विचार कर उन मुनिराजने उत्तर दिया हे राजन् ? मुझे मालुम नहीं कि मृगराज किधर गया है अथवा अनुपयोगतासें असत्य बोला जाय वह भी द्रव्य मृषावाद समझना

## ३ जावसें फूठ बोलता है ड्व्यसे नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचार करता है कि मैं अमुकके समक्ष इस इस प्रकार मनोकल्पित आडम्बरीय वार्त्तालाप या कीसीकी यश कीर्त्ति या निन्दादिक अतिही खूबसूरतीके साथ कहूंगा इत्यादि विचार करता है लेकिन ऐसी वार्तालाप करनेका मोका नहीं पाता, वह जाव मृषावाद जानना.

## ड्व्य और जाव दोनों प्रकारसें मृषावाद.

विवेचनः—परिणाम जी सत्य बोलनेमे निमग्न रहते हैं तथा इसही प्रकार बोलनेका जी अवसर प्राप्त हो जाता है; अर्थात् दोनों प्रकारका मृषावाद बोलकर डुर्गतिका जागी होता है.

## ४ ड्व्य और जाव दोनों प्रकारसे मृषावाद नहीं बोलता है.

विवेचनः—यह शून्य जांगा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसें:—पौजलिक पदार्थकों यह चेतन जो अपनी करके मान रहा है अर्थात् ममत्वमे लीन होकर नित्य प्रति अधिकाधिक आनन्दमें मग्न हो रहा है. उससे विमुक्त होकर निर्मल जावमें रमण करना.

## तृतीय अस्तेय महाव्रत

वगैर दी हुई वस्तुकों बिलकुल अङ्गीकार नहीं करना उसें अस्तेय महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, ज्येष्ठ, सचित्त और अचित्त इन ६ प्रकारसें चौरी करे नहीं, करावे नहीं और करतेको अनुमोदे नहीं एवम १८ मनसें, वचनसें और कायासें एवम् ५४ प्रकारसें सर्वथा चौरी परित्याग करे अर्थात् स्तेय चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा परित्याग करे.

## ( स्तेयचतुष्क )

### १ द्रव्यसें चौरी करता है भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसें किसी एक शहरमें एक धनाढ्य शेठ रहता था वह एक वख्त सकुटुम्ब यात्रार्थ रवाना हुवा, पीछेसें उसके मकानमें अचानक ( Suddenly ) अग्नि लग गई उस वख्त उसके सुयोग्य पडोसी ( Neighbours) ने यह विचार कर सर्व सामान निकाल लिया कि जब वह आवेगा उसे वापिस दे दूंगा जब वह शेठ यात्रासें लौटकर आया तब सर्व वस्तुएं उसे दे दीं. यह द्रव्य अदत्ता दान जानना; अर्थात् स्वरूप चौरी है बन्ध चौरी नहीं.

### २ भावसें चौरी करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—मनमें ऐसा विचारता है कि मै अमुक राजाका या अमुक शेठ साहूकारका खजाना तोडकर बहुतसा द्रव्य चुरा लाऊं या किसी जगह डाका ( Dacoity ) डाल कर बहुत सा धन लूट लाऊं इत्यादि सङ्कल्पविकल्प किया करता है किन्तु चौरी करनेका या डाका डालनेका मौका प्राप्त नहीं होता है यह भाव अदत्ता दान जानना

### ३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे अदत्ता दान.

विवेचनः—परिणाम भी अदत्ता दानमे मग्न रहते है तथा माल भी लूंट लाता है यह दोनो प्रकारका अदत्ता दान सेवन करके आत्मा दुर्गतिका भागी होता है

### ४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे चौरी नहीं करता है.

विवेचनः—यह शून्य भागा हैः-अर्थात् श्रेष्ट और आचरण करने योग्य है

निश्चयसें—यह चेतन द्रव्य १ मे जो कर्मोंकी वर्गणा तथा पंचेन्द्रियके

तेवीश विषय ग्रहण कर रहा है उन्हे परित्याग कर उत्तम साधनोका अनुसरण करे.

## चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत.

मैथुन [ व्यभिचार ]सें सर्वथा पृथक् रहना उसें ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—देवाङ्गना, स्त्री और तिर्यञ्चनी इन तीनो जातिसे मैथुन सेवन करे नहीं, सेवन करावे नहीं और सेवन करतेको अनुमोदे नहीं एवम् ए मनसे, वचनसें और कायासें एवम् २१ प्रकारसें सर्वथा कुशील परित्याग करे; अर्थात् मैथुन चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष सर्वथा परित्याग करे.

## ( मैथुनचतुष्क )

### १ द्रव्यसें मैथुन करता है भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे भरत चक्रवर्ति रुक्ष परिणामोंसें अपनी ६४००० स्त्रियोंको सेवन करते थे मगर रक्तता रहित थे. द्वितीय दृष्टान्त यह है कि किसी समय एक महान् पवित्र मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे एक नदीके

---

( नोट )

दीर्घ विचारसें विमुख होकर भ्रम वश कितनेक लोग यह प्रश्न करते हैं कि स्पर्श मात्रसें मैथुनकह देना यह मिथ्या है कारणकि ऐसें तो माता पुत्रके स्पर्शसें, पिता पुत्रीके स्पर्शसें, भाई बहिनके स्पर्शसें व्यभिचारका दोष मानना पड़ेगा और यदि ऐसा हो तो यह अन्याय है.

उत्तरः—भो भव्यात्मन् ! यदि आपनें सूक्ष्म विचार किया होता तो ऐसा सामान्य प्रश्न कभी पैदा नहीं होता देखिये गृहस्थाचार और श्रमणाचारके अन्दर बहुत अन्तर है मुनिराज दूषित कार्योंके सर्वथा त्यागी हैं; दीक्षा लेनेके बाद साधु जन अपने खास माता, बहिन और पुत्रीको स्पर्श नहीं करते हैं इसमें शील रक्षाका ही कारण है. विशेषेण किम्.

तटपर आन पहुंचे देखते क्या है कि एक आर्या ( साध्वी ) जलमें डूबी जा रही है निगाह गिरते ही यह विचार किया कि यदि मैं इसको निकालूं तो शीयलव्रतके नियम विरुद्ध संघर्ष ( स्पर्श-संघट्टा ) दोषका भागी होता हूं यदि न निकालता हूं तो पञ्चेन्द्रिय जीवका निरर्थक घात होता है इसके जीवनसें हजारों भव्यात्माओंका उध्धार ( Deliverance ) होगा ऐसा समझ द्रव्यसे मैथुनका दोष न विचारता हुवा विशुध्द भावोंसे शीघ्र ही हाथ पकड़कर बाहर निकाल दी

## २ भावसें मैथुन करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचारता है कि मै इन्द्राणीसें या अमुक राजाकी रानी या अमुक युवा स्त्रीसें विषयसुख सेवनकर अपना मनुष्य भव सफल करूं मगर ऐसा दुष्ट प्रयोग करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह भाव मैथुन जानना

## ३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे मैथुन.

विवेचनः—मनोभाव भी व्यभिचारमे संलग्न रहे और योग भी मिल जाय, यह दोनो प्रकारका कुशील नरकादि गतिका दाता होता है

## ४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसें मैथुन नहीं.

विवेचनः—यह शून्य भागा है; अर्थात् उत्तम और सेवन करने योग्य है

निश्चयसें:—यह चेतन निज गुणकों परित्याग करता हुवा परपुद्गलमें रमणकर आनन्दित हो रहा है उससें सर्वथा पृथक् होकर अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें तन्मय हो जाय

# पंचम अपरिग्रह महाव्रत.

भोगोपभोगीय अशेष पदार्थोंमें मूर्छा रहित होना उसें अपरिग्रह महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसेः—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, जेष्ठ, सचित्त और अचित्त इन ६ प्रकारके परिग्रहको रक्खे नहीं, रक्खावे नहीं और रखतेको अनुमोदे नहीं एवं १८ मनसें, वचनसें और कायासें एवम ५४ प्रकारसें सर्वथा परिग्रह त्याग करे; अर्थात परिग्रह चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा त्याग करे.

## ( परिग्रह चतुष्क )

### १ द्रव्यसें परिग्रह है और भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे मुनिराजके पुस्तक पत्रादि ज्ञानोपगरण तथा जिनेश्वर देव और गुरु महाराजके चित्रादि दर्शनोपगरण एवम् वस्त्र, रजोहरण, (ओघा) पात्रादि चारित्रो पगरण होते हैं; किन्तु ममत्व रहित होनेसे द्रव्य परिग्रह जानना यानी स्वरूप परिग्रह है बन्ध नहीं इसही प्रकार भरत चक्रवर्त्ति वगैराका उदाहरण जानना.

### २ भावसें परिग्रह है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—जैसे कोई प्राणी विचार करेकि मुझे क्रोड़ रूपेकी प्राप्ति हो जाय, शेठ साहुकारपन एवम् राजा महाराजा चक्रवर्त्यादिका सिंहासन मिल जाय बहुतसे पुत्र, पौत्र, नौकर, चाकर अथवा दिव्यप्रासाद एवम् हाथी, घोड़े, बग्गी सिगरामादि वाहनोकी प्राप्ति हो जाय भोगोपभोगके उत्तमोत्तम पदार्थ सेवन करनेको मिलें इसही प्रकार बहु मूल्य वस्त्राभूषण प्राप्त हों इत्यादि नाना प्रकारके परिग्रहोंका चिन्तवन करता है किन्तु प्राप्त नहीं होते यह भाव परिग्रह जानना अर्थात बन्धनका हेतु है.

### ३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसें परिग्रह.

विवेचनः—दिलमें यह विचार करता है कि मुझे हाट, हवेली, ज़मीन, ज़ायदाद, पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब, परिवार, वस्त्राभूषणादि प्राप्त हों और

इसही माफिक सर्व मनोरथ सफल हो जॉय यह दोनो प्रकारका परिग्रहका दाता जानना

## ४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे परिग्रह नहीं.

विवेचनः—यह शून्य भागा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसेः—यह चेतन राग, द्वेष, ज्ञानावर्णीय प्रमुख अष्टकर्मों में निमग्न हो रहा है उन्हे विध्वसकर आत्मस्वरुपमें रमण करे

यदि कोइ प्राणी इन भवतारक पच महाव्रतोंको व्यवहार और निश्चय करके अखिल स्वरुपसें प्रतिपालन करे तो निम्न लिखित पञ्च दिव्य प्राप्त होते है

प्रथम महाव्रतके पालन करनेसें दृष्टिगोचर जीव आपुसमे वैर भाव नही ले सकते; अर्थात् लड़ाइ झगड़ा और प्राण रहित नही कर सकते है यह अलौकिक प्रथम सिद्धि जानना

२ दूसरे महाव्रतके पालन करनेसे वचन सिद्धि हो जाती है; अर्थात् किसीको यह कह दे कि तेरा यह कार्य अमुक दिन सफल हो जायगा वह अवश्य ही हो जाता है, यह द्वितीयालौकिक सिद्धि जानना

३ तृतीय महाव्रतके पालन करनेसें जिस २ स्थल पर चरण रक्खें उस २ स्थानपर नवनिधान प्रकट होते है नीतिकारका कथन है "निस्पृहे निधानानि" यह हेतु अनुभव सिद्ध है. यह अलौकिक तृतीयासिद्धि जानना

४ चौथे महाव्रतके पालन करनेसें अनन्त वीर्य प्राप्त होता है: इसहीसें कर्मोंका विध्वंसकर प्राणि अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त होता है यह अलौकिक चतुर्थी सिद्धि जानना

५ पञ्चम महाव्रतके पालनेसें भव भ्रमण नष्ट हो जाता है वस्तु ससर्गसें भववृद्धि होती है और इस महाव्रतसें दिनवदिन वस्तु ससर्ग निकन्दन होता जाता है, यह अलौकिक पञ्चम सिद्धि जानना

इन कर्मध्वंसक महान् पवित्र पञ्चमहाव्रतोंका जघन्यसें रक्षिया सदृश और उत्कृष्टसें रोहिणी सदृश शुध्धाचरण करना चाहिये. महानुभावों ! अवसरकों पाकर एक दृष्टान्त लिख दिखाता हूं.

## ( पञ्च महावृत्तोंपर दृष्टान्त )

किसी एक अनुपम शहेरमें धन्नासार्थवाह नामक एक शेठ निवास करता था उसके उत्तमशील नामक एक सुपुत्र था इसके उत्तम कुल धारका ४ स्त्रियें थीं. नोकर, चाकर, हाट, हवेली और लक्ष्मीकरके पूरित था. भोगोपभोग पदार्थोंका आनन्द लूटता हुवा सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करता था.

एक दिन वह शेठ ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर उठकर यह विचार करने लगा कि देखें मैं अपने लड़केकी चारों भार्याओंकी परीक्षा करूं कि गृह कार्य कौन उत्तम रीतसें चला सकती है, प्रातःकाल होतेही अपनी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर अपने मुनीम तथा गुमास्ताओंको यह आज्ञा दी कि जिस २ स्थलपर अपने रिस्तहदार निवास करते हैं उस २ जगह यह सूचना दी कि यहांपर एक महत् उत्सव होनेवाला है इसलिये कृपयाशीघ्र ही पधारकर इस जलशेकों सुशोभित कीजिये गा.

शेठकी आज्ञानुसार दिन मुकर्रिर करके सर्व स्थानपर प्रार्थनापत्र भेज दिये नियमित दिनपर सर्व सज्जन लोक एकत्रित हुवे उसही समय शेठने अपने पुत्रकी चारों स्त्रियोंको उस जलसेमें निमन्त्रित की उन्होंने महत् विनयसें अपने श्वसुरके चरणोंमे प्रवेश किया, अर्थात् उस जलशेमें हाजिर हुई.

शेठने सर्व महिमानो ( प्राहुणों )का यथोचित सन्मान किया तत्पश्चात् इन चारों स्त्रियोंकों सर्वके समक्ष पांच २ शालिके दाने दिये और यह कहाकि जिस वख्त मै वापिस मांगु उस वख्त यही पांच दाने मुझे अर्पण करना तत्पश्चात् वह जलसा विसर्जन हुवा. उन चारों स्त्रियोंने मकान पहुंचकर पृथक् २ इस प्रकार विचार किया:—

१ प्रथमा स्त्रीने यह विचारा कि घरके अन्दर मनोबन्द शाली रक्खी हुई है जिस वख्त सुसरजी कहेंगे उस ही वख्त इसमेसें पाच दाने लेकर अर्पण करडंगी, इन्हें सम्भालकर रखनेसें क्या प्रयोजन है यह सोच बाहर उकरडे पर फेंक दिये

२ द्वितीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीने अनुग्रहपूर्वक यह उत्तम वस्तु दी है इसे मैं भक्षण कर लूं तो मुझे बहुत ही लाभ होगा यह विचार वे शालिके दाने भक्षण कर गई

तृतीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीकी अक्षरश: आज्ञा पालना मेरा मुख्य कर्त्तव्य है इसके बराबर कोइ उत्कृष्ट धर्म नही जैन सिध्दान्तोंमें यह प्रसिध्द है विज्ञान, दर्शन और चारित्र एवम् विनय, वैयावच्च और तपश्चर्या इत्यादि उत्तमोत्तम सर्व धर्म आज्ञामे ही समावेश है; यही जिनागमका सार है ऐसा दीर्घ विचार करवेशालीके दाने अपने रत्नोंकी पेटीमे रख दिये

४ चतुर्थी स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजिने यह दाने कोइ शुभ मुहूर्त्तमे दिये है इसलिये मेरा यह धर्म है कि उन्हें वृध्दि रूपमें वापिस अर्पण करूं जैसें पुत्रको द्रव्य देता है और वह व्यापारादि प्रयोगोंसें द्रव्यको बढाता है इसही प्रकार मेरा भी कर्त्तव्य है यह सोच वे पाचों दाने अपने भाईके पास भेज दिये और यह लिख दिया कि इनका कृपी व्यापार करके हर साल क्रमशः बढाते रहना इसमें जितना खर्च होगा उतना मे अर्पण कर दूगी इस प्रकार चारों स्त्रियोंने अपनी २ मति अनुसार काररवाई की

कितनेक वर्ष व्यतीत होने पर शेठको एकबार स्मरण हुवा कि मैंने जो परीक्षा की है उसका क्या नतीजा हुवा उसें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये यह विचार पूर्वानुसार सर्व रिस्तहदारोंको एकत्रित किये और उसही प्रकार उन चारों स्त्रियोंको अपनी दी हुई वस्तुको लेकर हाजिर होनेकी निमन्त्रण की

प्रथमा स्त्री अपने कोठार ( धान्यगृह ) मेंसे पाचे दाने लेकर रवाना हुई, द्वितीयाने भी इसही प्रकार किया, तृतीयाने अपने जवाहिरातका डिब्बा लेकर प्रस्थान किया, चतुर्थीने कितनेक दिन प्रथमसें ही अपने पाच दानेकी परपरा

नुंगतं पैदावारीके पांचसौ शालिकी गाम्यिं मंगवा रक्खी थीं और यह हुकम दे दियाथा कि अमुक दिनकी अमुक टाइम पर अमुक स्थान पर हाज़िर हो जाना; इस प्रकार सर्व स्त्रियें अपनी २ तैयारी कर सुसराजीके चरणसरोजमें प्रवेश हुई.

शेठजीने उन चारों स्त्रियोंको यह आज्ञा दी कि वेशालीके दाने वापिस अर्पण करो; आज्ञा पातेही वे चारों क्रमशः प्रवृत्त हुई.

प्रथमा स्त्रीने जब वेशालीके दाने अर्पण किये तब शेठजीने कहा कि ये वे खास दाने नहीं हैं कि किन्तु अन्य हैं? सच बतलाउ! वे कहां गये? इसही प्रकार द्वितीया स्त्रीका भी सम्बन्ध जानना. उन्होने अपनी २ कारवाई प्रकट रूपसे निवेदन कर दीं.

तृतीया स्त्रीने जवाहिरातके डिब्बेमे सें वे दाने निकाल कर नजर ( भेट ) किये और अपना पूर्व कृत विचार निवेदन किया, सुनते ही शेठजी प्रसन्न हुवे. चतुर्था स्त्रीने वेशालि की पांचसे गाड़ियें समर्पण की और अपना पूर्व कृत सर्व प्रकट किया. यह सुन शेठजी अगाध प्रसन्न हुवे और उस ही समय इन चारों स्त्रियोंको पृथक पृथक् पदसे नियुक्त कीं.

प्रथमा स्त्रीको फूस ( काजा ) निकालने का काम सिपुर्द किया और यह कहा कि तूंने जैसे शालीके दानेकी परवाह नहीं की इस प्रकार द्रव्य को भी बरबाद कर देगी इस लिये तुझे यही कार्य योग्य है यह कहकर "उज्झिया" नाम बक्षीस किया.

द्वितीया स्त्रीको भोजन बनानेका कार्य बक्षीस किया और यह कहा कि जैसें तूंने शालीके दाने भक्षण कर लिये तेसें हीं हरेक चीज खानेमे तेरी अधिक प्रीति है इसलिये तुझे भोजन बनानेका तथा प्राहुणे आदि जिमानेका कार्य सोंपा जाता है यह कहकर "भक्खिया" नाम प्रदान किया.

तृतीया स्त्रीको भंडारका कार्य सिपुर्द किया और यह आज्ञा दी कि जिस

प्रकार तूने शालीके दाने संभाल कर रखे थे उसही प्रकार घरकी सर्व वस्तुएं सावधानीसे रखना यह कहकर "रक्षिका" ऐसा नाम बक्षीश किया

चतुर्थी स्त्रीकों स्वामिनी पद बक्षीस किया और अति प्रसन्न होकर यह कहा कि तूं बड़ी बुध्दिमती है, लघु वयमें इतने चातुर्य और साहसिकादि गुणों से अलङ्कृत है इसलिये गृह सबधि सर्व कार्य तेरे सिपुर्द किये जाते हैं तेरी आज्ञा के बगैर कोई कार्य नहीं हो सकेगा इत्यादि कहकर "रोहिणी" ऐसा नाम प्रदान किया

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोहिणीने शालीकी वृध्दि की इस ही प्रकार मुनिराजको पञ्च महाव्रत उज्वल रूपसे पालन करनेमें कटिबध्द होना चाहिये कदाचित वृध्दि करनेकी सामर्थ्य न हो तो मूलकी अवश्य ही रक्षा करना चाहिये इस प्रकार संयमका प्राप्त होना अति दुष्कर है; यदि संयम प्राप्त हो गया और वीर्य ( शक्ति ) प्रकट न हुवा तो भी यथेष्ट प्राप्त नहीं हो सकती कारण की वीर्यका पाना भी अति दुर्लभ है देखियेः—

## ॥ प्रार्थनारूप उपदेश ॥

कई महानुभाव श्रमण पद प्राप्त होनेके पश्चात् सामर्थ्य होनेपरभी विनय, वैयावच्च, तप, जप, ध्यान, पठनपाठनादि क्रियाओंमें अपनी शक्तिका यथोचित उपयोग नहीं करते हैं वे आराम तलबी लोग शारीरिक सुखमें निमग्न होकर सदाचारोंमें पतित हो जाते हैं यहा तककि आपखुदका भी अन्य पर निर्भर रहता है वे महानुभाव इतना भी नहीं सोच सकते कि परकी आशा अवश्य धोका देनेवाली है सज्जनो ? किसी ज्ञानी गुरुने ठीक कहा है'—

## ( गाथा )

परकी आशा सदा निराशा । ये जग जनका फाँसा ॥
य काटनकाकरो अभ्यासा । लहो सदा सुखवासा ॥ आप स्वभाव ॥१॥

सज्जन श्रोताओं ! ये कायर लोग अपने शिष्यसमुदायमें ग्रस्त होकर सूरवीरतामें विमुख हो जाते हैं, जो महानुभाव अपने भुजा बलसें सर्व कार्य करते हैं अथवा करनेकों समर्थ हैं वे भव्यात्मा अपनी यथेच्छाकों प्राप्त कर सकते हैं.

दीक्षा लेनेके समय बुद्धि जन यह विचार करते हैं कि अपने समस्त कार्य के अतिरिक्त गुरु महाराज तथा अन्य रत्नादि मुनिवरोंकी सेवा करना हमारा मुख्य धर्म होगा इस भव और परभवमें सच्चा साहाय्यकारी हमारे भुजा बलसे किये हुवे कार्य ही हो सकेंगे अन्य सर्वाश्रय व्यावहारिक लहरोंमें वह जाँयगे इस प्रकार उत्तम विचारोंसें जो भव्यात्मा निर्मल चारित्रको ग्रहण करता है वह सूरवीरता पूर्वक इस विषम संसारमें विजयका डंका बजा सकता हैं अपनी आत्मा और परमात्माका उध्धार करनेको समर्थ हो सकता है किन्तु ऐसा शुभ कर्म उदय आना अति डुर्लभ है. इस प्रकार धर्म देशना होनेके बाद जय २ शब्दोंसें दशों दिशाओं पूरित की गई.

ये महानुभाव कितनेक दिन तक इस शहरमें ठहरे और धर्मकी अत्युन्नतिकी चातुर्मास संपूर्ण होनेके पश्चात ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे मरुस्थल देशके सुप्रसिध्ध शहर योधपुरमें प्रवेश किया वहांपर आत्म कल्याण तथा भव्यात्माओंका उद्धार करते हुवे सानन्द निवास करते रहै.

## ॥ चारित्र रक्षा तथा भव्योपकार ॥

इस स्थलपर कितनेक दिन निवास करनेके बाद ग्रामानु ग्राम विहार करके भव्यात्याओंका उध्धार करते रहे. डुषम कालके महात्म्यसें डुष्ट कर्मोंनें गुरुवर्य्य श्री राजसागरजी, ऋध्धिसागरजोको आनघेरा जिससे आपको चारित्रसें शिथिल होना पड़ा* इस अवस्थाको देख परम वैरागी पूज्यपाद श्रीमान् सुख-

---

* ॥ विधिरहो बलवानितिमेमतिः ॥

अहाहा ! कर्मकी गति विचित्र हैं इसने बड़े २ तीर्थंकर, गणधर और महानाचार्य एवम् चक्रवर्त्ति, वासुदेव प्रतिवासुदेव और बलदेव तथा बड़े २ राजा महाराजा और शेठ साहूकारोंकों अपनी फाँसमें दबा लिये.

सागरजी महाराजकी तबियत उन लोगोंसे दिन बदिन हटती रही अन्तमें आपको निर्मल चारित्रकी रक्षा करनेके हेतुसिरोही ( गोडवाड ) राज्यमें वीर संवत २३७७ विक्रम संवत १९१८ में पृथक् होना पड़ा इस समय मुनिराज श्री पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी आप महानुभाव के सहचारी हुवे.

सर्वज्ञ भक्तों ! आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि यह महानुभाव कैसी निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले तथा किस प्रकार उत्तम चारित्र पालन करने वाले थे; मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूं कि जिन भव्यात्माओंने इन भव तारकके दर्शन किये है उन्होने अपनी पवित्र जिह्वा द्वारा मुक्त कण्ठसें प्रशंसा की है तथा करते है धन्य हो, मुनि रत्न हों तो ऐसे ही हों

आप महानुभावने अपने निर्मल चारित्रकी आराधना करते हुवे उपरोक्त दोनो मुनिराजोंके साथ सिंहके सदृश मारवाड़, मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़,

---

आपको यह बखूबी रोशन होगा कि इस ही दुष्टने कइ एक श्रुतकेवलियों ( चतुर्दश पूर्वधारी ) को नरक निगोदमें पकडगेरे क्या यह कम आश्चर्य हे ? इसही प्रकार बडे २ योगीश्वर, ध्यानी महात्मा और ऋषीश्वरोको चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके सन्मुख कर दिये सज्जनो ! क्रोडो उपाय क्यों न किये जॉय किन्तु निद्धत्त और निकाचित बगैर भोगे हरगिज नहीं छूट सकते देखिये किसी ज्ञानी महात्माका कथन है —

( श्लोक )

कृतः कर्मक्षयोनास्ति । कल्पकोटी शतैरपि ।
अवश्य मेव भोगतव्य । कृतः कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥

भावार्थः—कोटाऽनुकोटी कल्प पर्यन्त क्यों न उपाय किया जाय किन्तु बधन किया हुवा कर्म कदापि नष्ट नहीं हो सकता, शुभाशुभ जो कुछ कि कर्म बधन कर चुके हैं उसे अवश्य ही भोगना पडेगा यह निर्विवाद विषयहै

आपको उपरोक्त व्याख्यासें यह विज्ञान हो गया होगा कि दुर्जय कर्मराज कितना बलीष्ट हे बस इसहीके प्रचण्ड प्रकोपसें आपको भी गस ( मूर्छा ) खाना पडा,

कच्छादि देशोंमें विचरकर सराहनीय धर्मोध्दार किया. एवम् परम पवित्र श्री शत्रुं-जय तीर्थराजकी जियारत ( यात्रा ) कर अपना मानव जव सफल किया तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विहारकर क्रमशः फलवर्ध्दि (फलोदी) जिला योधपुर–मरुस्थलमें पदार्पण किया. वहांके श्री संघपर अगाध उपगार कर कृतकृत्य किये; जहां तक मेरा खयाल है मैं कह सकता हूं कि सबसें अधिक उपगार आपका इस ही क्षेत्रमें हुवा है मगर तदपि कितनेक कृतघ्न लोग आपके उपगारकों विस्मृत हो रहे हैं तथा बहुतसें महानुजाव उनके पवित्र नामको बारंबार स्मरण कर अपनी आत्माका कल्याण करते हैं. गत वर्षमें मैंने जी उस स्थलपर चातुर्मास किया है मैं अपने अनुजवसें कह सकता हूं कि कइएक जव्यात्मा उनके नाम कों फुरते हुवे अपनी अलौकिक जक्तिका दृश्य दिखलाते थे.

इधरसे रूपश्रीजीकी शिष्या उद्योतश्रीजी अपने अखण्ड चारित्र प्रतिपालनके हेतु अपनी शिथिल संप्रदायसें पृथक् होकर वीर संवत २३९१ विक्रम संवत १९२१ में फलोदी आयें और पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजसें वासक्षेप लेकर अपना जन्म पवित्र किया; यद्यपि राजसागरजी महाराजकों गुरु मान चुके थे तदपि उनसें पृथक् होनेसें तथा उन्हकी शिथिलावस्था समझकर तरणतारण गुरु इनही महानुजावोंकों माने इसही लिये पुनरपि शुध्द वासक्षेप ग्रहण किया.

पूज्यपाद गुरुवर्यने तीन वर्षोंके बाद यानी वीर संवत २३९४ विक्रम संवत १९२५ में जगवनूदासकों दीक्षा देकर अपने निज शिष्य बनाये नाम जगवान् सागरजी रख्वा गया. उधर उद्योतश्रीजीने दो वर्ष रहनेके बाद वीर संवत २३९३ विक्रम संवत १९२४ में श्राविका लक्ष्मीबाईकों दीक्षा देकर अपनी निज शिष्या बनाई. नाम लक्ष्मीश्रीजी रख्वा गया. उस वख्त इस समुदायमें केवल तीन मुनिराज व तीन साध्वियोंजी निवास करते थे.

---

( नोट )

गुरुवर्यके फलोदी पदार्पणके पहिलेही पद्मसागरजी पृथक् हो गए थे तथा बीकानेर निवासिनी आप साहबकी हस्त दीक्षिता धन्नश्रीजी उद्योश्रीजीसें मिल गए लिहाजान मुनिराज व साध्वियोंजी विद्यमान थे.

उसही समयसें श्रीमान् "सुखसागरजी महाराजके नामसें सिंघाड़ा" मशहूर हुवा उसके पेस्तर श्रीमान क्षमाकल्याणजीणी महाराजका सिंघाड़ा इस नामसे जाहिरथा बीचमें कितनेक लोग राजसागरजी महाराजका भी सिंघाड़ा कहा करते थे मगर जबसे यह महानुभाव सिथिलावस्थाको पहुंचे और भवतारक पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजने पृथक् होकर अपना व गुणवन्तसागरजी वगेराका एवम् उद्योतश्रीजी आदिका उध्धार किया तबसें क्षमाकल्याणजी महाराजके नमासे वासक्षेपमाला जाता है और सुखसागरजी महाराजके नामसें सिंघाड़ा कहा जाता है

अहाहा ! धन्य हो ऐसे नररत्नकों कि जिसने डूबती हुई जहाजको तिरा दी मै इस बातको प्रकट रूपमें कह सकता हू कि हमारे समुदायमें इनके बराबर अबतक इस प्रकार कोई अतुल उपगारी नहीं हुवा नहीं ! नही !! इतनाही नहीं !!! किन्तु सर्व जैन समदायमें निकट वर्षोंमें आसपास इन महानुभावके तुल्य इस प्रकार अवर्णीय उपगार करनेवाला नहीं हुवा होगा यद्यपि उपगारी कइएक प्रकारके होते है मगर तदपि अवसर उपगारी सबसें बड़ा होता है और आप महानुभावने इसही बृहत् उपगारको किया है

मोक्षाऽभिलाषियों ! आपके अन्दर ऐसे ही अलौकिक गुण भरे हुवे थे कि जिसका पार पाना मुश्किल है आप अपनी आत्माकों सुखरूपी सागरमें निमग्न करते हुवे अनेक भव्य जीवोंकों सुखी करते थे देखियेः—

## ॥ यथा नामस्तथा गुणाः ॥

सुखयतिजनानूतद् सुखं–सुखानासागरः इति सुखसागरः इस षष्ठीतत्पुरुष समाससें आपकों विदित हो गया होगा कि वे महानुभाव कैसे गुण करके सुशोभित थे, सुख एक ऐसी चीज़ है कि जिसमें सर्वोत्तम पदार्थोंका समावेश हो जाता है

सज्जन पाठकवरों ! सपूर्ण नामके अंदर गुण होना कुछ आश्चर्य नहीं है किन्तु आपका एक २ अक्षर अगण्य दिव्य गुणोंसे इस प्रकार भरा हुवा है

कि जिसका लिखना हमारी लेखनीसे बाहिर रहै तदपि अपनी अल्प बुध्या-
नुसार किञ्चित् लिख दिखाते हैः—

## ॥ गुरु भक्तिपर दोहरे ॥

सुखसागर गुरुरायके ॥ गुण गाऊं चित लाय ॥
अक्षर अक्षरके प्रति ॥ वहु गुण रह्या समाय ॥ १ ॥

सुः— सुमति सदा गुरु चितवसे ॥ कुमति भगे अति दूर ॥
त्रिकरण शुध्दि करते ॥ दिव्य ज्ञान भरपूर ॥ १ ॥

खः— खलके मित्र गुरुथे सदा ॥ करुणारस भंडार ॥
पर उपगारमें मग्नथे ॥ दर्शन निर्मल धार ॥ २ ॥

साः— सायरसम गंभीर गुरु ॥ चारित्र रत्न भंडार ॥
ब्रह्मचर्य गुरु धारते ॥ महिमा अपरंपार ॥ ३ ॥

गः— गगनसमा गुरु निर्मला ॥ रवि सम तेज प्रताप ॥
शशिसमान थी सौम्यता ॥ मणि सम शोभे आप ॥४॥

रः— रहस्य रङ्गमे झीलते ॥ आत्मध्यानमें लीन ॥
कर्म वृन्दोंको तोडते ॥ होके मोक्षाधीन ॥ ५ ॥

जीः— जीवाजीव विचारमें ॥ निपुण रहे गुरु राज ॥
षट् द्रव्यमें लीनथे ॥ बुध्दिवन्त महाराज ॥ ६ ॥

मः— महा दुष्ट रिपु कामकों ॥ जिनमे दिया हटाय ॥
रतिकी मती बिगाड़ दी ॥ सूरवीर महाराय ॥ ७ ॥

हाः– हानीकारक कार्यकों ॥ नष्ट किये तत्काल ॥
दूर हटाया दुष्टकों ॥ मोह महा विकराल ॥ ८ ॥

रा – रागरहित वैराग्यमें ॥ रमण कियाथा नाथ ॥
मनवच काया दमन करी ॥ सुमति सखीके साथ ॥ ९ ॥

जः– जस कीर्त्ति गुरु राजकी ॥ सकल विश्व विख्यात ॥
बाल शिष्य आनन्दको ॥ दर्शन दो साक्षात ॥ १० ॥

आप वेही महानुभाव हैं कि जो बृहतखरतर गच्छाधिपति महा-महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणकजी महाराजके पचम पद (पीढ़ी) पर होते हैं जिसका कि किञ्चित् विवरण ग्रन्थके अन्तिम भागमें लिखेंगे

मै इस बातको अति खेदके साथ प्रकट करता हू कि आप महानुभावका फोटो (तसवीर–छवी–चित्र) मोजूद नही है वरना हम अपने प्यासे नेत्रोंको तृप्त कर अपनी आत्म विशुद्धि करते मगर सच है! भाग्य हीनोको ऐसे सत्पुरुषोंके दर्शनोंका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है सज्जनो! इस अवसरमें उनकी सौम्य मूर्तिको ध्यानमें लानेके लिये आपके शान्त स्वरूपके कितनेक चिन्ह लिख दिखाता हू.––

## ॥ शान्तमुद्रा ॥

आप महानुभाव गन्दूमीरङ्ग, गोल चहरा और मझोलेकदसें तथा माध्यस्थ शारीरिक स्थिति करके सुशोभित थे; एवम् ललाटाकृति अतुला पुण्याईसें झलकती हुई अपनी अजीब शोभाको प्रकट करती थी; शान्त रससे भरी हुई आपके मुखकमलकी छवी भव्य जनोंके चित्तोंको मोहित करती थी आपके दर्शनोंका यहा तक प्रभाव था कि जो प्राणी एक वख्त कर लेता था वह वहासें अलग होनेकी इच्छा ही नहीं करता कहाँ तक कहा जाय आपके अवर्णीय गुण अपरम्पार है

# ॥ अपूर्व गुणोंका दिग्दर्शन ॥

सुज्ञ जनो ! आपने ३६ वर्ष पर्यन्त अखण्ड चारित्र पालन कर शासनकी सेवा की. इस अवसरमें आप महोदधिने अनेकानेक उत्तम कार्य किये जिसकी कि व्याख्या हमारी बुद्धिसे बहार है तदपि यत्किञ्चित उद्धृत कर पाठकोंकी सेवामें लिख दिखाते हैं:—

## (सम्यग् ज्ञानकी महिमा,)

( श्लोक )

यथाऽवस्थित तत्वानां । संक्षेपादि विस्तरेणवा ॥
योऽवबोधस्तमत्राहुः । सम्यग्ज्ञान मनीषिणः ॥ १ ॥

भावार्थः—संक्षेपसे या विस्तार पूर्वक तत्वोंका यथार्थ बोध होना उसे विद्वान् लोग सम्यग् ज्ञान कहते हैं.

विवेचनः—यद्यपि ज्ञान शब्दका अर्थ जानना मात्र होता है तदपि सामान्य जानने और तात्विक जाननेमें जमीन आसमानका अन्तर है यह प्रकटतः विख्यात है—जहाँ तक प्राणी तात्विक विषयोंसे वञ्चित है वहाँ तक आत्माका उद्धार हरगिज नहीं हो सकता इस ही लिये तात्विक बोधके यथार्थ जानपनेको सम्यग् ज्ञान कहते हैं.

आप महानुभाव ज्ञानके ऐसे उत्तम रसिक थे कि प्रायः हमेशां सूत्र सिद्धान्त अवलोकन किया करते थे और उनके क्लिष्ट विषयोंको मनन कर अपनी आत्माको ज्ञान रसमें मग्न किया करते थे. निर्मल ज्ञानके यहांतक उत्सुक थे कि यदि कोई विषय समझमें नहीं आता तो इतना अगाध प्रयत्न करते कि जो प्रायः अवश्य सफलीभूत होता, देखिये:—

## ( दिव्य पुरुषार्थ. )

एक दिनका जिक्र है कि आप पञ्चमाङ्ग "**श्री भगवती सूत्र**" पढ रहे थे उसमें गाङ्गेय मुनिके क्लिष्ट भांगे समझमें नहीं आये तब आपने फलो-

वीमें रहे हुवे यतिवर्य रावत सुन्दरजी ( जो कि आपके गाढ परिचित थे ) कों दरियाफत् किया किन्तु वहुत प्रयत्न करने पर भी उस समय उन्हे यथार्थ समझमें नहीं आ सके इस अवस्याकों देख गुरुवर्यको गहरी चिन्तामें निमग्न होना पड़ा तदपि प्रयत्नसे पराङ्मुख नहीं हुवे सच है ! उत्तम जनोका यही धर्म है देखिये नीतिकारने ठीक कहा है:—

## ( श्लोक )

प्रारभ्यतेन खलुविघ्नभयेन नीचैः ।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमतिमध्याः ॥
विघ्नैपुन. पुनरपि प्रतिहन्यमाना. ।
प्रारब्ध मुत्तमजना. न परित्यजन्ति ॥ १ ॥

भावार्थः—अधम पुरुष विघ्नके भयमें कोई कार्य आरंभ नहीं करते तथा मध्यम पुरुष प्रारम्भ करने पर यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसे परित्याग कर देते हैं, किन्तु उत्तम पुरुष प्रारम्भ करनेके बाद बार २ उपसर्गसें दुःखित होने पर भी कभी नहीं छोड़ते

अब आपकों रातदिन इस विषय कि चिन्ता होने लगी अखीर कितनेक दिनके पश्चात् एक दिन आप शान्तता पूर्वक धर्मशालामें विराजमान थे उस समय अचानक उन क्लिष्ट भागोंकी श्रेणी आपके खयालमें प्राप्त हो गई फिर क्या पूछिये चिन्ता देवीने प्रस्थान किया आप आनन्द रसमें झीलने लग गये उसही वख्त उपरोक्त यतिवर्यकों बुलाकर अपने विचार प्रकट किये आपके संयोगके पहिले ही यतिवर्यको कुछ २ समझमें आ चुके थे किन्तु इस अवसरमें दोनोकी एक सम्मति होकर विजयकों प्राप्त हुवे कहनेका तात्पर्य यह है कि आप तत्वज्ञानमें असाधारण प्रयत्नशील पुरुष थे सज्जनो ! आपने इस उत्तम अनुभवसें भव्य जीवोंकेउपगारके हेतु अनेक बोलचालादि सिद्धान्तोंमेंसें उद्धृत किये देखियेः—

पन्नवणा सूत्रके प्रथम पदसे जीवाजीव राशीका विस्तार उध्धृत किया. जो कि **"श्री ज्ञानवर्धक जैन मित्र मण्डल"** सैलाना-मालवाकी तर्फसें **"जीवाजीव राशि प्रकाश"** नामक ग्रन्थ वीर संवत् १४३७ विक्रम संवत १८६७ ईस्वीसन् १९१० में प्रकाशित हो चुका है. आपके कल्पसूत्रमें नवकार वगेराकी कथाओंका समावेश कर सरस ग्रन्थ बनाया. मुनिराजोंके लाभकारी अनेक सूत्रोंमेंसे उध्धृतकर १०० बोलोंकी रचना की. ६२ मार्गणाओंका जीवोंके ५६३ भेदोंके साथ बासठिया यन्त्र एवम् गुणस्थान, गत्यागति, समुच्चय, मूल हेतु, अल्प बहुत्व इत्यादि बहुतसे यन्त्रोंकी रचना की. एवम् अनेक दशक, अष्टक, सतक इत्यादि नाना प्रकारके गहन थोलाचालादि उध्धृत किये. इतना ही नही किन्तु भव्यात्माओंके आप यहां तक हितेच्छु थे कि शास्त्रमें अति आवश्यकीय पदार्थ जो देखते उनका शीघ्र ही नोट कर लेते थे. आपके हस्त-लिखित कई एक छोटे २ अमूल्य परचे इस वख्त भी दृष्टिगोचर होते हैं. मैं कह सकता हूं कि आपके समुदायमें रहे हुवे कई एक साधु बहुतसे गहन बोलचा-लादिसें परिचित हैं. यह आप महानुभावका ही विशाल प्रभाव है. कहाँ तक कहा जाय इस विषयमें आपका अकथनीय उपगार श्लाघनीय है.

## ( पाठन शैली )

आप महानुभाव भव्यात्माको पढ़ानेके अन्दर भी अगाध प्रयत्न करते थे, इस समुदायमें रहे हुवे कितनेक साधु, साध्वी जो कि आपके पढ़ाए हुवे हैं जैन शासनका निर्भर विजय कर रहे हैं; तथा कई एक श्रावक, श्राविकाओंको उत्तम धर्म शिक्षा प्रदान की. आप हरएक चीज़को समझानेके वास्ते असाधा-रण प्रयत्न करते थे, यदि किसीकों एकवार कहनेसें समझमें नहीं आता तो दो वार, चार वार, दश वार समझाते किन्तु दिल पर कभी ग्लानी नहीं लाते थे. जिन २ महानुभावोंने आपके चरणों की सेवा की है वे बेशक किसी कदर तत्त्वज्ञानसें परिचित हुवे हैं; आपकी पाठन शैली जगज्जनको मोहित करती थी हरएक चीज़ इस क्रमसे पढाते थे कि बहुत दिन आवृत्ति न करने पर भी यकायक मनोमन्दिरसें पृथक् नहीं हो सकती थी. आप अनेक भव्यात्माओंको

उत्तम ज्ञान देकर रत्नचिन्तामणि अपने मानव भवको सफल कर गये कहां तक कहा जाय आपका असाधारण उपगार जगत प्रशंसनीय है.

## ( अमृत रसका आस्वादन )

आप जिस वख्त व्याख्यान देते थे उस वख्त वचनामृतसें श्रोतागणोंके चित्तोंमें ऐसा भान पड़ता था कि मानो साक्षात् बृहस्पति ही व्याख्यान देते हों; जिस वख्त आदिमें नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते थे उस वख्त सिंहरूप नादसें व्याख्यानगृहगुंज उठता था और समस्त श्रोता जन शान्तरसमें निमग्न हो जाते थे गाथा या श्लोक इस प्रकार स्पष्ट फरमाते थे कि साधारण पुरुषको भी बहुतसा अर्थ प्रतीत हो जाता था आप जिस वख्त किसी विषयकी व्याख्या फरमाते उसें ऐसे अपूर्व सरस शब्दोंकी लतामें ग्रंथित करते थे कि श्रोता जन एकाग्र चित्त होकर श्रवण करते; तथा अपनी अनिमेष दृष्टिसे गुरुवर्य के मुखकमलको अवलोकन करते थे आपका सुस्वर नामक कर्म अपनी अपूर्व शोभाको प्रकाशित करता था व्याख्यानमें प्रायः विशेषतः वैराग्यरस, शान्तरस और करुणारस अपनी अजीब शोभाका अलौकिक दृश्य दिखलाते थे; शेष रस भी आवश्यकता पर अपनी योग्य स्थिति प्रदर्शित करते थे आपकी अमृतमय देशनासें भव्यात्माओंके हृदय कमल इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाते थे कि जैसे सूर्यके दिव्य प्रकाशसें कमल विकशित हो जाते है आपकी अमृतमय देशनाका पान कर भव्यात्मा आनन्द समुद्रमें गोता लगाने लग जाते थे; कहां तक कहा जाय आपकी व्याख्यान शैली जगज्जन प्रिय थी

आप मर्यादानुसार निर्मल ज्ञानकी उत्तम उपासना कर दुष्ट ज्ञानावर्णीय कर्मको निकन्दन करते थे और ज्ञानी पुरुषके प्रति बड़े ही पूज्यभावसे अवलोकन कर उत्तम सत्कार करते थे, कोई भी प्राणी शत्रुता या ईर्षा वश होकर यदि किसी ज्ञानी पुरुषको निन्दा करते तो वे शूल सदृश शब्द आपको असह्य दुःखसें व्यथित करते थे सच है ! उत्तम पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है

सज्जनो ! ज्ञान बराबर जगत्रयमें कोई पदार्थ नहीं है ज्ञान कहो चाहे विद्या कहो एक ही अर्थ होता है जैसें धनको पाकर प्राणी खानपानादिके

सुखोंमें आनंदित होता है तैसें ही इस विद्याका विषय समझ लेना. मगर इतना अवश्य अन्तर है कि धनवाला तो इस ही भवमें साधारण सुखोंको प्राप्त करता है, जिसमें भी अनेक मुसीबतें उपस्थित रहती हैं; मगर ज्ञानवान्की तो विचित्र ही लीला है. यह धन जोबन जितना है सब विद्या रत्नके बगैर निस्सार है. भव्य प्राणीके विद्या समान कोई उत्तम अलंकार नहीं है. भोगोपभोगका सरस पन भी इस हीसे प्राप्त होता है. किसी नीतिकारने ठीक कहा है:—

## ( श्लोक )

विद्यानाम नरस्यरूपमधिकं पृच्छन्न गुप्तंधनं ।
विद्याभोग करीयशः सुखकरो विद्यागुरुणां गुरुः ॥
विद्याबंधुजनो विदेशगमने विद्यापरं देवतं ।
विद्याराजसु पूज्यतेनतुधनं विद्याविहिनः पशुः ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्योंका विशेष सुरूप एक विद्या ही है जो कि अन्तरात्मामें रहा हुवा गुप्त धन है. यह महा गुरुरूप विद्या, भोग, यश और सुखकों करनेवाली होती है. यही विद्या विदेश गमनमें भ्रातृवत् साह्यकारी होती है और यही विद्या उत्कृष्ठ देवपनेकों धारण की हुई है; अन्य धन राजा, महाराजा और चक्रवर्त्तिसें उसें विनय, बहु मानसें नहीं पूजे जाते कि जितनी विद्या महाराणी पूजी जाती है. और इस ही लिये विद्याके बगर प्राणी पशु तुल्य समझा जाता है. इस प्रकार इस भवमें साधारण सुखोंके अतिरिक्त परभवमें अचिरात् मोक्षपदकों प्राप्त कर सकता है देखिये कितने २ गुण प्राप्त होते हैं:-

## ॥ दोहरे ॥

जगके सबही धननमें । विद्या धन शिर मोर ॥
यह तो व्यय कीने बढे । घटत जात धन और ॥ १ ॥
याते तुमकों उचित है । मानो गुरुकी शीख ॥
गुणीजननपै माँगिये । विद्या धनकी भीख ॥ २ ॥

विनय बढाई देत है । जगमें आदरमान ॥
विद्या ही परलोकमें । देत मुक्तिको स्थान ॥ ३ ॥

केवल नीतिकार ही उसकी प्रशंसा करते हों ऐसा नहीं समझियेगा किन्तु तीर्थंकर, गणधर, श्रुत केवली और माहन आचार्योंने इसकी मुक्त कण्ठसें प्रशंसा की है देखिये महा महोपाध्याय श्रीमद्यशोविजयजी महाराज अपने नव पद पूजाके सप्तम ज्ञानपद पूजामें इस प्रकार फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

प्रथम ज्ञानने पीछे अहिंसा । श्रो सिद्धांते भाख्यु ॥
ज्ञानने वंदो ज्ञान मनिन्दो ज्ञानीये शिव सुख चाख्युं. भ०सि०॥३१॥
सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा तेहनुं मूल जे कहिये ॥
तेह ज्ञान नित २ वन्दिजे॥ते विण कहो केम रहिये. भ०सि०॥३२॥

इससे आपको विज्ञात हो गया होगा कि ज्ञान एक कैसी उत्तम पदार्थ है वे महानुभाव इस मोक्षदाता सम्यक् ज्ञानकी असाधारण आराधना करते थे तथा इसही प्रकार प्रयत्न कर अनेक भव्यात्माओंको आराधन करवाते थे तथा अनुमोदन तो एक अद्वितीय गुणोंसें ही विभूषित थी आपको उस निर्मल ज्ञानका ऐसा सुदृढ व्यसन था कि जैसें मनुष्योंको भोजनका व्यसन होता है कहा कत कहा जाय आप ज्ञानके एक अपूर्व भक्त थे आपकी अवर्णीय महिमा निश्च प्रशंसनीय है पाठकवरों! अब मैं आपके दर्शन पदकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूं:—

॥ सम्यग् दर्शनका विवेचन ॥

रुचिर्जिनोक्त तत्वेषु । सम्यक् श्रद्धान मुच्यते ॥
जायतेतन्निसर्गेण । गुरोरधि गमेनवा ॥ १ ॥

भावार्थ —स्वाभाविक यानी स्वकीय मनीमें अथवा गुरु महाराज यानी परमोप-

कारी गुरु महाराजकी अतुल कृपासें जिन भगवान् प्रणीत तत्वों पर सुदृढ़ रुचि होना उसें सम्यक् श्रद्धा (दर्शन) कहते हैं.

विवेचनः—हमें ऋषभदेव प्रणीत या महावीर कथित शब्दों पर आग्रह हो ऐसा नहीं किन्तु जिन भगवान्‌के फरमानका ही हमारा मन्तव्य है. आपको यह भलीव प्रकार विज्ञात होगा की जिन किसें कहते हैं. देखिये:—

यः रागद्वेषादि शत्रुन् जयतिसजिनः—जिस महानुभावने रागद्वेषादि अशेष शत्रुओंकों विजय कर डाला है उसे जिन कहते हैं—जो केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथा ख्यात चारित्र गुण करके सुशोभित हैं तथा अनेक लब्धियों करके विभूषित हैं जो एक समय (कालका सबसे छोटा हिस्सा) में लोकालोककों हस्त रेखावत् देखते हैं. देखिये किसी महाऽनुभावका कथन है:—

"त्रैलोक्यं युगपत्कराम्बुज भुवन्मुक्तावदा लोकने" यानीवे जिन भगवान् करकमलमें लुटते हुवे मोतीके सदृश ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग इन तीनो लोकोंकों एक काला वच्छिन्न सें अवलोकन करते हैं.

चाहे वे किसी नामसें मशहूर हो किन्तु एतावन, गुण विशिष्ट जो जिन भगवान् हैं उनहीके प्रणीत तत्वोंपर रुचीका होना उसें सम्यग् दर्शन कहते हैं.

आप महानुभाव सम्यक दर्शन (श्रद्धा) में ऐसे सुदृढ थे कि यदि इन्द्र भी आकर क्षोभित करता तो आप किञ्चिदपि चलायमान नहीं हो सकते थे. कदाचित् सूर्य अपनी पूर्व दिशाकों छोड़ दैव प्रयोगसें पश्चिम दिशामें उदय होने लग जाय, मेरु पर्वत कोई उपसर्गसें कम्पायमान हो जाय, समुद्र वायु प्रकोपसें अपनी मर्यादाकों परित्याग कर दे, पृथवी किसी कारणसें अपनी सहनशीलताकों छोड़ रसातलमें चली जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, जल उष्ण प्रकृति स्वीकृत कर ले, आकाशमें पुष्प खिलने लग जाय, खर सिंगकों धारण करने लग जाय, वन्ध्याके पुत्र प्रसूत हो जाय, महिला दाढी, मूंछसे सुशोभित हो जाय, करतल पर बाल पैदा होने लग जाय, ऊसर भूमिमें नाज उत्पन्न हो जाय, सर्प अमृतरस देने लग जाय, जहर जीवन दशाको प्राप्त करा दे, स्त्री तीर्थंकर गौत्र बांधने लग जाय. किन्तु वे महानुभाव अपने निर्मल दर्शनसें कभी चलायमान नही हो सकते थे. कहनेका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त

वस्तुऐं विपरीत दशामें प्रवृत्त नही हो सकती है किन्तु कदाचित् देव प्रयोग या अन्य किसी कारणसें ऐसा हो भी जाय तदपि वे महानुभाव मनागपि चलायमान नही हो सकते थे; अर्थात् ऐसे सुदृढ थे, कि जिसका विवरण हमारी लेखनीसें बहार है

श्रद्धा एक ऐसी पदार्थ है कि जिसमें मनुष्य अवश्य, अपनी इष्टताकों प्राप्त करता है यावत्प्राणी सम्यग् दर्शन प्राप्त न कर ले तावत् अन्य, धार्मिक क्रियाओंसें केवल निरस पुण्य प्रकृतिका बन्धन कर क्षणिक सुख प्राप्त करता है किन्तु मोक्ष मार्गसें सदैव विमुख रहता है देखिये अभव्य जीव अनेक कष्ट क्रिया कर यावत् नवग्रैविक देवलोकमें पहुचता है; किन्तु सम्यग् दर्शन न होनेसें चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके पाशसे पृथक् नही हो सकता, अर्थात् शिवसुखसें हमेशा पराङ्मुख रहता है दर्शनसें भ्रष्ट हुवा मनुष्य मोक्षकों कभी प्राप्त नही कर सकता देखिये पूर्वाचार्य श्रीमान् रत्नशेखर सूरीश्वर अपनी बनाई हुई सम्बोध सत्तरीके १२ वे गाथे में फरमाते है

## ॥ गाथा ॥

दंसणभट्ठो भट्ठो दंसण भट्ठस्स नत्थिनिव्वाण ॥
सिज्झन्ति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिज्झन्ति ॥१॥

भावार्थ.--दर्शन ( सम्यक्त्व ) से भ्रष्ट हुवा प्राणी भ्रष्ट समझा जाता है इसही लिये दर्शन भ्रष्टकों निर्वाण ( मोक्ष ) प्राप्त नही हो सकता चारित्र रहित प्राणी तो सिद्ध पदकों प्राप्त कर भी सकता है किन्तु दर्शन रहित प्राणी कभी शिव पद नहीं पासकता

उपरोक्त गाथासे आपको विज्ञात हो गया होगा कि दर्शन एक कैसी उत्तम पदार्थ है और इस ही पवित्र पदको आप गुरुवर्य असाधारण रूपसें आराधन करते थे बाह्य सम्यक्त्व ग्रहण करनेके हेतु शुद्ध देव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्मकी उपासना करते थे तथा निश्चय सम्यक्त्वके हेतु रूपी चैतन्यके स्वरूपकों जानकर आभ्यन्तर तप, जप, ध्यान तथा योगाभ्यास एवम् शुभ

भावनाद्वारा कर्म मलको पृथक् कर आत्मीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यको प्रकट (उज्वल) करनेका अगाध प्रयत्न करते थे. जिस प्रकार आप इस सम्यग् दर्शनकी आराधना करते थे उसही प्रकार अन्यात्माओंको भी उपदेश देकर आराधन करवाते थे तथा जो प्राणी कि सम्यग् दर्शनको धारण करनेवाले थे उनकी तर्फ पूज्य दृष्टि रखते हुवे अत्यन्त प्रशंसा करते थे. कहाँ तक कहा जाय सम्यग् दर्शन पर आपका श्लाघनीय प्रेम था. प्रिय धर्माऽभि-लाषियों ! अब मैं आपको चारित्रकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूं:—

## ॥ सम्यग् चारित्रका विवरण ॥

( श्लोक )

सर्व सावद्य योगानां । त्यागश्चारित्र मिष्यते ।
कीर्त्तितं तदहिं सादि । वृत्तभेदेन पञ्चधाः ॥ १ ॥

भावार्थः—समस्त पापोत्पादक योगोंके परित्यागको सम्यग् चारित्र कहते है वह अहिंसादि वृत्त भेद करके पांच प्रकारका फरमाया है.

विवेचनः—किसी मर्यादामें रहना या किसी क्रियामें गमन करना उसे चारित्र कहते है किन्तु मन, वचन और काया जितने ही सावद्य व्योपार है उन्हें सर्वथा त्याग-कर अहिंसादि पञ्च महा व्रत जिन्हकी व्याख्या हम पूर्वमें कर चुके है उसमें रमण करना उसे सम्यक् चारित्र कहते हैं.

आप महानुभाव ऐसे उत्तम प्रकारसे चारित्र पालन करते थे कि उनके मुआँफिक वर्त्तमानमें साधारण मुनिसें पलना अति दुष्कर है.

शिष्य समुदाय होनेके पहिले आप जिस वख्त वस्त्रादिकोंकी प्रति लेहना करते थे, अपने उपयोगको स्थिरकर प्रत्येक वस्त्रोंको भलीभांति अवलोकन करते थ. वर्त्तमानमें कई एक साधु, साध्वी बिखरे हुवे वस्त्रको साफ कर जमा लेना ही प्रति लेहनकर्त्तव्य करते हैं; किन्तु महाशयो ! यदि वास्तविक विचारा

जाय तो जीव दयाके हेतु ही प्रतिलेखनका फरमान है देखिय इस ही प्रतिलेखनसें एक मुनिराजको अवधि ज्ञान पैदा हो गया थाः—

एक किसी नगरके अन्दर एक विद्वान आचार्य महाराज अपने बहुतसे मुनिराजकी संप्रदायसें विराजमान थे उनमेंसें एक सउपयोगी महात्मा जिनेश्वर कथित नियमानुसार जयणा पूर्वक प्रतिलेखना कर रहे थे; बाद जिस वख्तकी काजे ( कचरा ) को यत्नापूर्वक ले रहे थे उस वख्त कंथुवे वगेरा कइ एक छोटे २ जानवर दृष्टिगोचर हुवे, देखते ही यह विचार किया कि अहा धन्य है ! जिनेश्वरके धर्मको और धन्य है उनके दिव्य ज्ञानको तथा धन्य है उनकी पवित्र वाणीको और धन्य है उनकी असाधारण उपगार बुद्धिको ! कि जिसने हम अधम जनोंके वास्ते ऐसे उत्तम नियम बनाये वगेरा नाना प्रकारसें अनुमोदना करते हुवे दृढ़ श्रद्धासक्त हुवे इस अवसरमें अवधि ज्ञानावर्णीयपटल दूर होकर आत्मोध्दारक अवधिज्ञान प्राप्त हो गया इससें आपको प्रथम देव लोक की स्वजातक जलीजात विज्ञात होता था; नाना प्रकारकी चित्र विचित्र लीलाको देखते थे कहनेका तात्पर्य यह है कि जयणा युक्त प्रतिलेखनका इस प्रकार फल होता है

आप महानुभाव हरएक छोटे बडे जन्तुओंकी यथार्थ जयणा करते हुवे दोनो टाइम नियमानुकूल दृष्टि प्रमार्जन तथा पूजन, प्रमारर्जन उत्तम प्रकारसें कर जिनेश्वरकी शुध्द आज्ञाको शिरोधार करते थे इसही प्रकार चारित्रकी रक्षा करनेवाली अष्ट प्रवचन माताको अत्युत्तम प्रकारसें पालन करते थे देखियेः—

## ( अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप )

१ ईर्यासमितिः—आप जिस वख्त विहार करते थे या अन्य गमनागमनकी आवश्यकता होती थी उस वख्त अन्य सर्व इन्द्रियक और मानसिक विषयोंको परित्यागकर ३। हाथ अर्थात शरीर प्रमाण जमीनको एकाग्र दृष्टि द्वारा अवलोकन कर गमन करते थे सज्जनो ! नीचे देखकर चलनेके अन्दर धार्मिक फलके अतिरिक्त बहुतमें शारीरिकादि गुण भी प्राप्त होते हैं देखिये किसी कविने ठीक कहा हैः—

( दोहरा )

नीचे देख्या गुण घणा । जीव जंतु टल जाय ॥
ठोकर की लागे नहीं । पड़ी वस्तु दिख जाय ॥ १ ॥

इसके सिवाय कङ्कर, पत्थर, कांटे, शूल, ठुरुट, गड्ढे, सर्प, बिच्छु. आदि जो की शरीरको बधा पहुंचानेवाले हैं उन सबसे रक्षा हो जाती है.

२ भाषासमितिः—आप महानुभाव क्रोधसें, मानसें, मायासें, लोभसें, रागसें, द्वेषसें, भयसें और हास्यसें इन आठ कारणोंसें कर्कश, कठोर, छेदकारी, भेदकारी, मर्मकारी, मोषाकारी, सावद्य, और निश्चय इन आठ प्रकारकी भाषाओंकों अर्थात् पापकर्मोत्पादक सर्व अशुभ भाषाओंको परित्यागकर प्रियकारी, हितकारी, आज्ञाकारी सत्य वचन बोलते थे.

बुध्दि विचक्षणों! जिस वख्त आप किसी भव्यात्मासें संभाषण करते थे ऐसी सुकोमल मधुर वाणी फरमाते थे कि जिससे सन्मुखी अमृतरस पानकर आनन्दित हो जाताथा. बोली एक ऐसी अमूल्य वस्तु है कि जिससें प्राणीके जातिकी, कुलकी, पटुताकी, गुणकी और स्वभावकी परीक्षा करवा देती है इस लिये जो कुछ बोलना हो बहुत ही विचार कर बोलना चाहिये देखिये किसी बुध्दिवान्ने ठीक कहा है:—

( दोहरा )

वचन मोल अमोल है जो कछु बोले बोल ॥
पहिले हृदय विचार कर । पीछे बाहिर खोल ॥ १ ॥

भव्यज्ञान रसिकों ! सद्वचन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि दुःखसें दग्धित हुवे प्राणीकों शान्तरसमें निमग्न कर देती है और कटुक् शब्द सुखी

प्राणीकों भी वज्रके घाव सदृश दुःखकों प्राप्त कर देता है देखिये किसी महात्माका कथन है:—

( दोहरा )

वचन वचनके आंतरे। वचनके हाथ न पांव ॥
वही वचन है औषधी। वही वचन है घाव ॥ १ ॥

पाठकवरों! इसही जिह्वामें अमृत और इसही जिह्वामें ज़हर है जगज्जन इसही जिह्वासें ईश्वर भजनकर अपनी आत्माका कल्याण करते हैं और इसही जिह्वासे बदकलाम बोलकर दुर्गतिका बन्धन करते है; तब तो यह वही नजीर समझना चाहिये कि जिस जिह्वासें पक्वान्न भोजन किया जाता है उसही जिह्वासें गोयाविष्टा खाना है

धर्मचुस्त सज्जनो! आपकों थोडे में ही विज्ञात हो गया होगा कि भाषासमिति एक कैसी दिव्य गुणधारी माता है इसही लिये वे महानुभाव इसकी आज्ञा शिरोधारकर तनमनसें सेवा करते थे

३ एषणासमितिः—आप ४२ दोष टालकर अरसविरस आहारपानी किया करते थे रसनेंद्रियको इस प्रकार कब्जमें कर रक्खी थी कि वह अपनी लोलुप्य दशाको कभी प्रकट नहीं कर सकती थी शरीरकी पुष्टिके हेतु तो सरस भोजनका भक्ष सर्वथा ही असंभव था किन्तु व्याधि वगेरा अन्य अवश्यकीय अवस्यामें भी जहांतक बन सकता इस मदोत्पादक शत्रुसे पृथक् रहते थे आप वैसे ही मतोषी मुनि थे कि जैसे दशवैकालिकके प्रथम अध्ययनकी सज्झायमें फरमाया है. तथयाः—

( गाथा )

मुनिवर मधुकर समकह्या। नहीं है राग नहीं द्वेष ॥
लाधो भातो देवे देहने। अणलाधे संतोष ॥ धर्म० ॥१॥

४ आदानभंडमत्त निक्षेपणासमिति:—आप महानुभाव किसी भांडोपगरणको जब ग्रहण करते थे अथवा रखते थे तब बडेही उपयोगके साथ तथा जयणा पूर्वक काममें लाते थे. दिनको दृष्टि प्रमार्जन व रातको पूंजन प्रमार्जन कर हरएक पदार्थ उपयोगमें लाते थे अपनी समस्त उपधी जिस धर्मशालामें निवास करते उसही स्थानमें रखते थे किन्तु अन्य स्थानपर कुछ भी नर रखते थे; अर्थात् हरएक कार्य सउपयोग व सजयणा करते थे.

५ पारिष्ठापनिकासमिति:—कोई भी पदार्थ जो कि परठने योग्य होती उसें शास्त्रोक्त रीतिसें निर्वद्य स्थानमें परठते थे.

## ॥ घोर शत्रु मनकी दुर्जयता ॥

६ मनोगुप्ति:—सम, समारंभ और आरंभ करके मनकों स्वाधीन करते थे. सज्जनो ! मन एक वगेर लगामका ऐसा अश्व है कि जिसका वेग पवनसें भी वहुत तेज है. देखिये:—क्षणमें मनुष्य, क्षणमें तिर्यंच, क्षणमें नरक, क्षणमें स्वर्ग, क्षणमें मोक्षादि चौ तर्फ घूमा करता है किन्तु किसी जगह स्थिर रहकर आत्म कल्याण नहीं करता. बडे २ ज्ञानी ध्यानी, तपस्वी, चारित्री योगीश्वर और महर्षियोंको अपने आचरणोंसें पतित कर क्षणमें नरक निगोदके सन्मुख कर देता है. देखिये योगिराज श्री आनन्दघनजी महाराज अपने बनाये हुवे चतुर्विंशति जिन स्तवन संग्रहके सत्तरवें स्तवनमें फरमाते हैं कि:—

### ( गाथा )

मुगति तणा अभिलाषी तपिया । ज्ञानने ध्यान अभ्यासे ॥
वयरीडुकाइ एहवुं चिंते । नाखे अवले पासे हो ॥ कुं० ॥३॥

भावार्थ:—यह मन महा दुष्ट शत्रु है कारण कि मोक्षाभिलाषी तपस्वी जो कि इसकों साधन करनेके हेतु निज गुण जाननेके वास्ते ज्ञानाभ्यास कर रहे हैं तथा निज गुण प्रकट कर उसमें रमण करनेके वास्ते ध्यानाभ्यास कर

रहे हैं उन महान् मुनिराजोंको कर्मरूपी फासमें गेर देता है देखिये प्रश्नचन्द्र राजर्षिको क्षणान्तरमें सप्तम नरकके दलियोंका संग्रह करवा दिया और थोड़ी ही देर बाद जब सीधी गतिको अवधारण किया तब शीघ्र ही केवल ज्ञान प्राप्त करवा दिया इस लिये वीर पुत्रों! इस दुष्ट शत्रुको किसी प्रकार शनैः शनैः अपने कब्जमें करनेका प्रयास करना चाहिये; जब तक यह मन पराजय न होगा सर्व क्रियाए केवल निरस पुण्य प्रकृतिये ( जो कि क्षणिक सुखको देनेवाली हैं ) का संग्रह करवाती हैः इस एकको साधनेके वास्ते हजारों उपचार करने पड़ते है देखियेः—

ज्ञान, दर्शन और चारित्राराधन, दान, शियल, तप, भावना, योगाभ्यास और ध्यान क्रिया वगैरा जो कि अनेक कष्ट सहनकर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका करते है वे केवल एक इसही घोर शत्रुको वशमें करनेका हेतु है एक इस मनके ही न सधनेसें छार परलीपनरूप सर्व निष्फल हे और यदि यह स्वाधीन कर लिया जाय तो सर्व क्रियाएँ समुद्रके जलके मुआफिक सार्थक है देखिये वेही पूर्वोक्त महानुभाव अपने उसही स्तवनके आठवें गाथाके अन्दर फरमाते हैः—

॥ गाथा ॥

मन साध्यु तेणं सघलुं साध्युं। एह बात नहीं खोटी ॥
एम कहे साध्युं ते नवी मानु। एकही बात छे मोटी हो॥ कुं॥८॥

भावार्थः—हे जिनेश्वर देव! चचलताको परित्याग करके एकाग्रतासें जिस मनुष्यने मनको वशीभूत किया है उसने तप, जप, ध्यान, संयमादि सर्व कार्य साधन कर लिये कारण कि साधनका अन्तिम भाम नही है इस लिये जिसने मन वशमें कर लिया उसने आत्मिक ठकुराईका मल सिध्द कर लिया है यह बात सर्वथा सत्य है कदाचित्त कोई निरर्थक अपनी जिह्वासें कह देवे कि मैंने मनको साधन कर लिया तो यह बात बिलकुल अमान्य है क्योंकि मन एक अति ही दुर्जय शत्रु हैं

मान्यवरों ! आपको उपरोक्त महानुभावके दो गाथाओंसें प्रतीत हो गया होगा कि मन एक कैसा दुर्जय शत्रु है इसको साधन करनेके वास्ते अनेक प्रयोग हैं. उनमेंसें एक सहज प्रयोग यह भी है कि जिस वख्त आदमी कोई भी कार्य करे उस वख्त यह अवश्य शोचे कि "Whether it is right or wrong" अर्थात् क्या यह सही है या गलत! ऐसा विचारनेसें अवश्य बहुतसे हानिकारक कार्य दूर हो जाते हैं प्रत्येक कार्यका यह धर्म है कि विचारनेसें अति शीघ्र, सहज और निरावाध पूर्वक हो जाता है और बगेर विचारनेसें "घरहाण जगत हाँसी" होती है. देखिये कहाः—

## ॥ दोहरा ॥

विना विचारे जो करे । सो पीछे पछताय ॥
काम बिगारे आपनो ॥ जगमें होत हँसाय ॥ १ ॥

द्वितीय यौगिक क्रियानुसार यह भी प्रयोग है कि जिस प्रकार एक साहूकारने वन्दरको वशीभूत कियाथा उसही प्रकार मनको स्वाधीन करना चाहिये, जानवरोंमें सबसें अधिक चंचल वशेतान वन्दर ही मानां जाता है उसमें भी यदि वह सुरा पानकर ले तो फिर चंचलताका क्या ठिकाना और इस अवस्थामें यदि उसको विच्छु काट खाय तब तो एक अद्वितीय ही चंचलता प्रकट हो जाती है कहनेका तात्पर्य यह है कि मदिराका पान किया हुवा और विच्छु काटा हुवा जिस प्रकार वन्दर चंचल होता है इसही प्रकार इससे कई गुने अधिक मनरूपी मर्कट चंचल व शेतान होता है: देखिये उस सेठने इस प्रकार वानरको स्वाधीन किया थाः—

## ॥ अद्भुत दृष्टान्त ॥

किसी एक ग्रामके अन्दर एक गरीव ब्राह्मण रहता था. उसके एक स्त्री व एक पुत्री थी वह इस प्रकार निर्धन था कि सुबहको मांगकर लाता और सुबह अपना गुजरान करता एवम् शामको मांगर लाता और शामका गुजरान करता; इस प्रकार अपना काल निर्गमन करता था.

उसने एक ऐसा वतीरा अख्तियार कर रखा था कि जिस वख्त स्थंडिल भूमि जाता उस वख्त अपनी शौच क्रिया करनेके पश्चात् जलपात्रमें जो कुच्छ जल शेष रह जाता वह हमेशा एक वटवृक्षमें गेर दिया करता था इस प्रकार कितनाक काल निर्गमन हुवा अब उसकी लड़की युवावस्थाको प्राप्त हुई, इस हालतमें उस ब्राह्मणको उसके विवाहकी चिन्ता होने लगी किन्तु निर्धन होनेसें शिवाय दिलगिरीके कुच्छ भी नही सूझता था ऐसे दुःख की हालतमें एक दिन उस दरख्तमें पानी डालना भूल गया उसही वख्त उसमेंसें एक पिशाच प्रकट हुवा और उस ब्राह्मणपर क्रोधित होकर कहने लगाकि अरे दुष्ट ब्रह्मण! तूने मुझको आज जल क्यों न पिलाया ? मै आज तुझे मारे बगेरे हरगिज नही छोडूगा यह भयकर शब्द सुन वह ब्राह्मण बोला रे अधम! कृतघ्न!! दुराचारी!!! तूँ वडाही दुष्ट हे कि अपनेही स्वार्थमे समझता है किन्तु मेरी लडकीके विवाह संबधि असीम दुःखका कुछ भी विचार नही करता

यह सुन वह प्रेत अपने दुष्ट शब्दोंका पश्चात्ताप कर उस ब्राह्मण पर अत्यन्त प्रसन्न हुवा और कहने लगा कि हे भद्र! तू किसी प्रकारकी चिन्ता मत कर मैं तेरे सर्व कार्यको उत्तम प्रकारसें कर दूगा तथा तेरे दरिद्रताको दूर कर श्रीमन्त वना दूंगा देख मै वानर रूप हो जाता हूं मेरे गलेमें यह सुवर्ण जजीर डाल किसी एक वडे शहरमें ले चल वहा पर किसी धनवानको सवालक्ष रुपे में मुझको वेच देना, यह सुन वह ब्राह्मण हर्षित होकर उस वानर रूप पिशाचको लेकर मकानपर पहुंचा और अपनी स्त्रीको सर्व विषय समझाकर वहासें रवाना हुवा; दरकूंचदर मुकाम करता हुवा क्रमशः कलकत्ते सदश एक विशाल शहरमें पहुचा, वहा पर घूमता २ एक किसी क्रोडपतिके यहापर जा पहुचा वहा पर श्रेष्ठी, ब्राह्मण और वानर के इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवेः—

ब्राह्मणः—हे श्रेष्ठीवर्य! मैं इस कपिको वेचना चाहाता हूँ दया कर योग्य मूल्य प्रदान कीजियेगा

श्रेष्ठीः—भाई ब्राह्मण! इसका क्या मूल्य लेगा?

ब्राह्मणः—दयानिधे ! सवालक्ष मुद्रिका लेऊंगा.

श्रेष्ठीः—सद्गुणी ब्राह्मण ! इसमें ऐसा क्या अद्भुत गुण है कि जिससें इतनी अधिक किम्मत लेना चाहता है ?

ब्राह्मणः—हे परोपकारी ! तुम अपनी दुकानका जो कुछ काम बतलाउगे उसें तार ( Telegraph ) सें भी अति शीघ्र कर देगा तुमारे सैंकड़ों नोकरोंका खर्च बचा देगा; अर्थात् सालभरमें लाखों रुपोंका काम करेगा.

श्रेष्ठीः—चिठी देकर-अछा तो जाउ खजानेसे रुपे लेलो और वानरको यहां बांध दो.

वानरः—अजी शेठ साहब ! जरा मेरी भी प्रार्थना सुनियेः—

श्रेष्ठीः—भाई कपि सानन्द कह सुनाउ.

वानरः—श्रेष्ठी शिरोमणे ! इसमें शर्त यह है कि मैं एक मिनिट भी बेकार नहीं रहूंगा अगर मुझे कोई कार्य न बतलाउगे तो उसही वख्त तुमें भक्षण कर जाऊंगा.

श्रेष्ठीः—दिलमें सोचकर " अपने सैकड़ों दुकाने हैं एक कपि कितनाक काम कर सकेगा. " भाई वानर ! मुझको तेरा कथन सहर्ष स्वीकार है.

इस प्रकार वार्त्तालाप हुई और उस वानरको सवालाख रुपेमें खरीद कर अनेकानेक काम करवाते हैं. उधर वह ब्राह्मण खजानचीसें रुपे लेकर सहर्ष अपने मकान पर पहुंचा और अपनी कन्याकी खूब जलुशसें शादी कर सानन्द निवास करने लगा.

इधर वह कपि हजारों कोसोंका काम मिण्टोंके अन्दर करने लगा करीब एक वर्षमें लाखों रुपेका नफा कर दिया. वह श्रेष्ठी इस प्रकार वानरको कार्य करते हुवे देखकर दिलमें विचार करने लगाकि यह तो वर्षोंके कार्यको

मिएटोंके अन्दर कर देता है न मालुम कोई देव है या राक्षस है या विद्याधर है या अन्य कोई लब्धीवंत है कि जिससें इस प्रकार कार्य करता है, अब मैं इसको क्या कार्य बतलाऊंगा और किस प्रकार यह जीवन पूरा होगा एसी चिन्ता करही रहाथा कि इतनेमें वह वानर आकर बोला कि शेठ साहब! मैं सर्व कार्य कर चुका हूं अब कोइ नूतन कार्य मुझे बतलाईयेगा वरना मैं आपकों अवश्य भक्षण कर जाऊंगा

यह सुन वह श्रेष्ठी अधिक दुःखी हो गया और नाना प्रकारसें सकल्प विकल्प करता हुवा उपाय सोचता है किन्तु कुछ भी योग्य व्यवस्था न विचार सका, अब दिनबदिन शारीरिक अवस्था बिगडती जाती है भोजन भी सम्यक् प्रकारसें नहीं करता, इस दुःखावस्थाको देखकर उसकी सुखशीला पुत्रीने पूछा कि हे पिताजी! आज कल आपकी व्यवस्था इस प्रकार क्यों कर हो रही है यह सुन पिता बोला कि पुत्रि मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूं मेरा किया हुवा मुझको ही भुगतना पडेगा इस समय पिताके गदगद नेत्र भर आये अश्रुपात बहने लगे खेदरसमें भरा हुवा यह कहता हैः—

## ( दोहरा )

कौन सुने किसकों कहूं। सुने तो समझे नाँय ॥
कहेवो सुनवो समझवो। मनहीको मनमॉय ॥१॥

ऐसे दिलगिरीके शब्द सुनकर वह लडकी पुनरपि प्रार्थना करने लगी कि हे तात! आप अपने दुःखकों स्पष्टतया कथन कीजियेगा मैं अवश्य उसका उपाय बतलाऊंगी ऐसे साहसिक शब्द सुन उस पिताने अपना सर्व वृत्तान्त कह सुनाया तनुजाने यह सुन २४ घण्टेके बाद उत्तर देनेकी प्रार्थना की अब वह शेठ सहर्ष खानपान करने लगा इधर वह लडकी अपने इष्टदेवके स्मरणमें तल्लीन हुई स्वप्नमें इष्टदेव और लडकीके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे.—

इष्टदेवः—हे सुपुत्रि! सोती है या जगती है?

पुत्रीः—हे स्वामिन् ! जगतमें कौन ऐसा है कि जो दुःखमें निद्रावश होता हो.

इष्टदेवः—अच्छा तो कह तूंने मुझे क्यों स्मरण किया है ?

पुत्रीः—क्या नाथ ! आंपसें भी छिपी हुई बात है ? आप अपने पवित्र अवधि ज्ञानसें जान सकते हैं.

इष्टदेवः—उस वानरका संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा ले सुता ! इसका यही उपाय है कि जिस वख्त कोई कार्य हो उसमें करवा लेना और शेष टाइममें ऐसा करना कि मैदानमें एक लम्बा स्तम्भ आरोपण कर उसपर उसे चढने उतरनेका कार्य बतला देना.

जब कि दूसरा दिन हुवा उस लड़कीने अपने पिताको सादर नमस्कार कर गत रात्रिके स्वप्नकी सर्व व्याख्या कह सुनाई और इष्टदेवका बतलाया हुवा वह उत्तम प्रयत्न भी निवेदन किया. यह सुन उसका पिता अति हर्षित होकर नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम आशिर्वादें देने लगा और उसही दिन अपनी दुकान पर जाकर उस स्थंभकी व्यवस्था करवाई इसही अवसरमें वह वानर आकर शेठसें बोलाकि रे असत्यवादी ! तूंने मुझसें क्या वायदा किया था आज दो दिवस हुवे हैं जिसमें मुझको बिलकुल बराबर काम नहीं बतलाया जाता हैं तूं मुझको अति शीघ्र कोई कार्य बतला वरना तुझे इसही वख्त भक्षण कर जाऊंगा.

यह सुन वह श्रेष्ठी पराक्रम पूर्वक बोला रे दुष्ट वानर ! क्या तूं कोई प्रकारका मगरूर करता होगा. जाओ उस सन्मुखी स्तम्भके ऊपर चढकर उतरो वानर इस कर्त्तव्यको कर पुनरपि कहने लगाकि अब मैं क्या काम करूं ? तब शेठने वही कार्य करनेका हुकुम दिया इस प्रकार कई एकवार चढने ऊतरनेका कार्य किया अखीरमें शेठने य हुकुम दिया कि जब हम कोई कार्य बतलावें उसें करना चाहिये और शेष टाईममें इस स्थम्भ पर चढने उतरनेका काम हमेशां करते रहना इस प्रकार कितनेक दिन तक यह कार्य किया

अन्तिममें हेरान होकर उस वानरने अपना निज स्वरूप प्रकटकर शेठकों सर्व वृत्तान्त कह सुनाया शेठने अति प्रसन्न होकर उसें विमुक्त किया

तत्त्वाऽभिलाषियों !-आपको इस दृष्टान्तमें विदित हो गया होगा कि, उस बुध्दिमती लडकीके प्रभावसें सेठने उस दुष्ट वानरकों किस प्रकार वशीभूत किया कहनेका तातपर्यह है कि जिस प्रकार उस मर्कटसें वख्त जरूरत कार्य लेते थे बाद हमेंशा चढने उत्तरनेकाही कार्य करवाते थे उसही प्रकार इस मनरूपी मर्कटसें उत्तम व्यावहारिक कार्य तथा धार्मिक क्रियाओं करवाना चाहिये और शेष टाईममें श्वासोश्वासके नियमानुकुल समान्यतया "अरिहन्त" के जापमें तथा विशेषतया "सोऽहम्" पदके जापमें संलग्न करना चाहिये विशेष स्वरूप गुरु गम्यतासे जानना सज्जनो ! वे महानुभाव इस प्रकार मनोगुप्तिमें रमण करते थे

## ( मौनानंद )

२ वचनगुप्तिः—आपश्री सम, समारम्भ और आरम्भ करके वचनकों स्वाधीन करते थे; हमेशा मौनव्रतको अख्तियार करते थे मौनसें केवल यह मत समझियेगा कि भाषा वर्गणाकों सर्वथा रोकते थे किन्तु "मुनेर्भाव कर्मवा इति मौनम्" ऐसा अर्थ समझियेगा आप जिस वख्त वाग्विलास करते थे वभी ही गम्भीरतासें तथा सदाचारपूर्वक किया करते थे और आवश्यकीय अवसरपर सर्वथा मौन भी रखते थे

अनुभवी महाशयों ! मौन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है-कि जो हमारे आत्मस्वरूपकों प्रकट कर देती है देखिये तप, जप, ध्यान और यौगिक क्रियाओंमे भी इसकों परिपूर्ण सत्कार मिला है इसकों स्वीकार किये विइन मोक्ष मार्ग दुःसाध्य है नीतिकारने भी लिखा है कि "मौनसर्वार्थ साधनम्" इस अमूल्य पदमें यह स्पष्टतया प्रकट है कि उच्च शिखरपर पहुचानेवाला मौन, एक उत्कृष्ट साधन है

महानुभावों ! जगद्गुरु श्रीतीर्थंकर देव भी दीक्षा लेनेके बाद यह अभि-

ग्रह धारण करते हैं कि जब तक मुझे केवलज्ञान न हो मौनमें रहकर ध्यानादि उत्तम क्रियाओंका आचारण करूंगा. इतनाही नहीं किन्तु केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् भी मौनके बगैर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकते देखिये मोक्षगामी चौदह वें गुणस्थानपर जाकर शैलेसीकरण करते हैं; अर्थात् मन, वचन और कायाको मेरु पर्वतके सदृश अचल करते हैं पश्चात् शिवपुरमें प्राप्त हो जाते हैं.

कई एक भव्यात्मा ऐसी मौन रखते हैं कि सावद्य भाषाको परित्याग कर निर्वद्य वचन बोलते हैं यह जघन्य मौन कही जाती है तथा कई एक लोग वचन कलापको रोककर हूँकारादि शब्दोंसे तथा हस्त, चरण, मुख, नेत्र और मस्तक वगैरासे अङ्ग चेष्टा करते हैं एवम् पत्रादिको पर लिखकर अपने अभिप्रायको सूचित करते हैं यह मध्यम मौन कही जाती है और कई एक आत्मार्थी भव्यात्मा उपरोक्त समस्त कर्त्तव्योंको परित्याग कर आत्मीय गुणोंमें निमग्न हो जाते हैं. यह उत्कृष्ट मौन कही जाती है.

पाठकवरों! वे पूज्य गुरुवर्य जघन्य मौन तो प्रायः हमेशांही पालन करते थे और उत्कृष्ट मौन समयानुसार ध्यानावस्थामें किया करते थे. इस प्रकार वचन गुप्तिकी सादर सेवा कर अपने मानव भवको सफल करते थे.

## ( कायोत्सर्गकी सनिष्ठता )

३ कायगुप्तिः—सम, समारम्भ और आरम्भ करके कायाको वशीभूत करते थे; अर्थात् कायोत्सर्ग ऐसी उत्तम रीतिसे करते थे कि कैसा भी उपसर्ग क्यों न हो जाय किन्तु बिलकुल चलायमान नहीं हो सकते थे. जिस वख्त आप पर्यङ्कासन (पद्मासन) करते थे उस समय दोनो हाथोंको योग्य स्थितिसे रख ठुड्डीको वक्षस्थलपर लगा देते थे तथा जिह्वाको तालु स्थान पर लगाकर दृष्टिको नासिकाके अग्र भाग पर स्थिर करके ध्यानारूढ हो जाते थे और कायासे इस प्रकार विमुक्त होते थे कि उस नासिकाके अग्र भाग पर सर्व शरीरको ध्यानमें लाकर प्रथग ही प्रथम चरणोंकी तर्फसे तत्पश्चात्

जानुसें, जङ्घासे, कटिसें, करकमलोंसें, भुजाओंसें, हृदयसें, वक्षस्थलसें, कण्ठमें, मुखसें, नेत्रोंमें, ललाटसें, मस्तकसें और शिखासें इस प्रकार अङ्गके प्रत्येक अवयवोंसे क्रमशः दृष्टि हटाते हुवे अन्तमें मैं अशरीरी हू ऐसा विचार आत्मध्यानमें लीन हो जाते थे उस समय कितनाही भयङ्कर उपसर्ग क्यों न आक्रमण करता हो किन्तु आप महानुभाव बिलकुल क्षोभित नही होते थे,

वर्त्तमानमें कितनेक आत्मध्यानियोंको देखकर काउसग्ग ध्यानकी एक विलक्षण ही दशा प्रतीत होती है कइ एक पैरोको हिलाते है, कइ एक अपने हाथोंकों चचलता वश कर देते हैं, कइ एक दृष्टि विपर्यास करते हुवे नजर आते हैं, कइ एक मस्तककों हस्तिकी घूमत चालपर घुमाते हैं, कइ एक ओष्ठ फुर्राते हुवे दिखात होते हैं और कइ एक जोरशे सें नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुवे निकट वर्त्ति भव्यात्माओंको बाधा पहुंचाते है; यहा तक कि शरीरके प्रत्येक अवयवका नियम भ्रष्ट कर क्रियामें प्रवृत्त होते हैं सज्जनो! इस हास्यावस्थामें उपसर्ग सहनका तो विचार ही क्या? किन्तु वे वेदरूप क्रियाकों करनेवाले लोग एक साधारण जन्तु मच्छरसें भी चलायमान हो जाते हैं, मगर भव्य आत्मार्थी लोग प्राणान्त कष्ट होनेपर भी काउसग्ग ध्यानसें कदापि चलायमान नहीं होते थे देखियेः—

परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी जिस वख्त काउसग्ग ध्यानमें खड़े थे उस समय कमठ तापसका जीव मेघमाली देवताने घोर अंन्धकार कर मूसलधार वृष्टि की यहा तक्की बारहश कोश पर्यन्त सर्व अटवी जलमय कर दी और उन तीर्थंकर देवके नासिका पर्यन्त जल पहुंच गया था मगर तो भी वे मनागपि क्षोभित न हुवे इधर शासनाधीश्वर श्रीमन्महावीर परमात्माकों कायोत्सर्गमें शय्यापालक के जीवने कर्णो में लोहके तीक्ष्ण कीलेपिरो दिये, गवालियेने पैरों पर खीर पकाई, चण्डकोशिया नागने अपने फणका झपट मारा और भी संगमादि देवोंने नाना प्रकारके भयङ्कर उपसर्ग किये लेकिन वे जगद्गुरु किञ्चिदपि चलायमान न हुवे इस प्रकार अनेक तीर्थंकर गणधर, आचार्य, उपाध्याय और साधुजनोंने कायोत्सर्गमें स्थित रहकर अपनी आत्माका कल्याण किया प्रिय सज्जनों! उपरोक्त रीत्यानुसार वे पूज्य

गुरुवर्य भी यथाशक्ति पूर्वाचार्योंका अनुकरण करते हुवे इस प्रकार काय-गुप्ति मातेश्वरीकी यथार्थ सेवा बजाकर स्वकीय आत्माको निर्मल करते थे.

आत्माऽभिलाषियों! चारित्र एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिसके समान अन्य साध्यकारी कोई वस्तु प्रतीत नहीं होती; सर्व रत्नोंमें यह शिरोमणि रत्न है; इसे ग्रहण करनेसे भव्यात्मा अपनी मनोकामनाकी साफल्यता करता है; देखिये किसी कवीश्वरने ठीक कहा है:—

( श्लोक )

**चारित्र रत्नान्न परंहि रत्नं। चारित्रवित्तान्न परंहिवित्तम्॥**
**चारित्र लाभान्नपरोहि लाभ—श्चारित्र योगान्नपरोहियोगः॥१॥**

भावार्थः—इस जगत्में चारित्रके बराबर कोई अन्य रत्न नहीं है. चारित्रके बराबर कोई द्रव्य नहीं है तथा चारित्रके समान कोई अन्य लाभ नहीं है एवम् चारित्रके तुल्य कोई योग नहीं है. यह वही चारित्र है कि जो यदि एक भी दिन उदयमें आजाय तो इस प्रकार उत्तम फल प्राप्त करा देता है:

( श्लोक )

**दीक्षा गृहीता दिनमेकमेव। येनोग्रचित्तेन शिवं सयाति॥**
**नतत्कदाचिदवश्यमेव। वैमानिकः स्यात्रिदशः प्रधान॥१॥**

भावार्थः—यदि प्राणी एक दिन ही दीक्षा ग्रहण कर ले और उग्र चित्तसे उसे पालन करे तो अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त करता है. कदाचित् वैसा उत्कृष्ट आचरण न कर सके तो भी साधारण क्रियाओंसे अवश्य वैमानिक देवलोकमें प्रधान पद प्राप्त करता है.

नहींश इतनाही नहीं किन्तु यह चारित्र रत्न सम्यग्ज्ञान, दर्शनको सफल करता है. आप यह खूब समझ सकते हैं कि मर्यादा वगैर जितने क-

र्त्तव्य हैं वे सर्व निष्फल है और इसही लिये ज्ञान, दर्शनका सारभूत चारित्र बतलाया है देखिये खरतरगच्छ गगनाम्बरमणि नवाङ्गी टीकाकार श्रीअभयदेव सूरीश्वर अपनी बनाई हुई आगम अष्टोत्तरीके ८९ वें गाथेमें इस प्रकार फरमाते हैः—

## ( गाथा )

नाणं नरस्ससारं । सार नाणस्स शुद्ध सम्मत्तं ॥
सम्मत्तसार चरण । सारं चरणस्स निव्वाणं ॥८९॥

भावार्थः—मनुष्य भवका सार ज्ञान है और ज्ञानका सार शुद्ध सम्यक्त है तथा शुद्ध सम्यक्तका सार चारित्र है एव चारित्रका सार मोक्ष समझना इन उपरोक्त गाथाओंमे आपकों विज्ञात होगया होगाकि चारित्र रत्न एक कैसी उच्च पदार्थ है

सज्जनों ! आप लोगोंकों ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी महिमा पढ़कर यह संदेह पेदा होता होगा कि ज्ञानकी व्याख्यामें दर्शन और चारित्रसें ज्ञान कों मुख्य बतलाया और दर्शनके विवेचनमे सवसें बड़ा दर्शन पद बतलाया तथा चारित्रके विवरणमें ज्ञान और दर्शनसें चारित्रकों अधिक बतलाया इसका क्या कारण है ? उत्तरमें निवेदन है कि जहां तक सोचा जाता है प्रायः यही ज्ञात होता है कि जिसका विषय कथन किया जाय उसकी महिमा अधिक बतलाई जाती है लेकिन यदि वस्तुतः देखा जाय तो ये तीनोही अनुपम रत्न समान है पूर्वाचार्योंका भी यही कथन है कि "**सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः**" बुध्दिजनेषु किं विशेषम्

वर्त्तमानमे कइ एक साधुसाध्वी संयमी नाम धराते हुवे भी अपने आचारोंसे अनेक विपरीत कर्त्तव्य करते हुवे दृष्टिगोचर हो रहे हैं, द्रव्य चारित्र भी जब यथार्थ पालन नहीं कर सकते तो भावचारित्रकी आशाही क्या ? पूर्वोक्त अष्टप्रवचन माताका पालना अति दुष्कर दिख पड़ता है वे चारित्रकी

सत्ताका मौलर रखनेवाले चारित्र रक्षक एक भी मातेश्वरीकी जब यथार्थ सेवा नहीं वजा सकते तो आत्मोध्धारका तो कथनही क्या? मालुम नहीं होताकि वे महानुभाव इस प्रकार संयमको अख्तियार कर दिलमें क्या हर्ष मनाते होंगे? जोकि गृहस्थके तथा अन्य सामुदायिक प्रपञ्चोंके गाढ वन्धनसें जखडे हुवे हैं. साथका साथ यह भी कह देना समुचित समझता हूं कि जगके समस्त साधु साध्वी इस ढङ्गके हों ऐसा न समझियेगा किन्तु कइ एक आत्मार्थी पूज्य मुनिराज अपने चारित्रमें कुशल होकर उच्च श्रेणीमें पहुंचनेका दृढ प्रयत्न करते हैं इसही प्रकार वे पूज्य गुरुवर्य भी चारित्र क्रियामें एसे निपुण थे कि जिसकी व्याख्या हमारी लेखनीसे वाहर है. धन्य है! आपकी चारित्र महिमा जगज्जन प्रिय थी. सज्जनो! अब मैं आपकी दान महिमाका किञ्चिद् विवेचन लिख दिखाता हूं.

## ( दानगुणपर व्याख्या )

किसी वस्तुको कृपापूर्वक सहर्ष देना उसे दान कहते हैं ये दान पांच प्रकारके होते हैं तद्यथाः—

## ( गाथा )

**अभयं सुपत्तदाणं। अणुकम्पा उचिय कित्तिदाणाइं॥**
**दुन्निहिं मुक्खो भणिउ। तिन्निउ भोगाइयं दिंति॥१॥**

अर्थः—अभय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्ति इन पांच दानोमेंसें आदिके दो दानमोक्षके दाता हैं तथा शेष ३ सम्यग् भोगकी प्राप्तिके हेतु हैं इन्हही पाँच दानोकी किञ्चित व्याख्या लिख दिखाता हूं:—

(१) अभयदानः—प्राणीमात्रको भय रहित करना उसें अभयदान कहते हैं. इसके दो भेद हैं:—प्रथम द्रव्य अभयदान द्वितीयभाव अभयदान.

द्रव्य अभयदान—उसें कहते हैं कि किसी जीवकी हिंसा होतीहो तो

उसे तन, मन और धन करके रक्षा करे तनसें रक्षा उसें कहते हैं कि उपदेश देकर अथवा शारीरिक बलद्वारा किसी प्राणीके प्राणोंकी रक्षा करे मनसें रक्षा उसें कहना चाहिये कि दिलमें यह भावना भावे कि हे प्रभो ! किसी प्रकार यह प्राणी बच जाय तो उत्तम हो धनसें रक्षा वह कही जाती है कि द्रव्य देकर उसे बचा लेना

कइ एक महानुभाव यहांपर यह प्रश्न करते है कि अगर किसी एक हिंसकको दश रूपे देकर एक बकरेकों या अन्य किसी जानवरकों बचाया तो वह प्राणघातक उन रूपेके दो चार जानवर लाकर वध करेगा तो ऐसे अभयदानसें क्या नतीजा हुवा इससें तो बेहेतर है कि ऐसी अवस्थाओंमें मौन अखत्यार करना समुचित है

प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न अवश्य विचारणीय है किन्तु वे महानुभाव यदि तटस्थ होकर स्थिर बुध्दिद्वारा विचार करते तो एसें महदान गुणसें पराङ्मुख न रहते देखिये जिनेश्वर देवका यह फरमान हैकिः—परिणामें बंध, क्रियाए कर्म, और उपयोगे धर्म ये तीनो पक्ष प्रायः सबही जैन धर्मावलंबियोंको माननीय है तो अब खयाल कीजिये कि उस प्राणी रक्षकका मानसिक विचार क्या था ? विचारशील सज्जनों ! अगर आप बुध्दि विचक्षण जिज्ञासु है तो अवश्यही यह स्वीकार करेंगे कि उसके भाव केवल जीव दया करना मात्रही थे तो क्यों साहेब ! शुभ विचारोंसे शुभ बंध व अशुभसें अशुभ बंध तो क्यों कर वह नियम विपरीत समझा जावे देखिये करुणालय महानुभावोंका कथन हैः—

( श्लोक )

योदद्यात्काञ्चनंमेरु । कृस्नामपिवसुन्धराम् ॥
एकस्यजीवनंदद्या न्नास्ति तुल्यंतयो. फलम् ॥१॥

भावार्थः—जो प्राणी सुवर्णमय मेरू पर्वत तथा समस्त पृथ्वीका दान

दे देवे तो भी जीवितदान ( अभयदान ) देनेवालेके बराबर इष्ट फल प्राप्त नहीं कर सकता. बुद्धिजनेषु किंविशेषम्

भाव अभयदान—उसें कहते हैं कि कोई प्राणी किसी दुर्व्यसनमें, किसी अशुभ प्रवृत्तिमें याकुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी मान्यतामें ग्रस्त हो रहा हो तो उसें उपदेशादि प्रयोगोंसें सुमार्गबाधक प्रवृत्तियोंको पराजय करवाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त कर अथवा गृहस्थाश्रमके अनेक दुःखोंसें विमुक्त कराकर भवतारक चारित्र अङ्गीकार करवाता हुवा उसके मानवभवकों कृतार्थ करे यह सर्वसें शिरोमणी व आत्मिक अनुभव सुखकों देनेवाला है.

(१) सुपात्रदानः—सम्यक् प्राणीकों दान देना उसें सुपात्र दान कहते है. यह प्रायः सर्व त्यागी मुनिराजके वास्तेही संघटित है और किसो तौरपर देशविरती शुध्द श्रावकमे भी घटित हो सकता है. देखिये पवित्र मुनिराजोंकों दान देनेसे इस प्रकार लाभ होते हैं:—

( श्लोक )

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्गत्य मालम्बते ।
नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ॥
दैन्यंनाद्रियते दुनोतिनदरः क्लिश्नन्तिनैवा पदः ॥
पात्रेयोवितरत्यनर्थ दलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥१॥

भावार्थः—जो भव्यात्मा अनर्थोंकों दलन करनेवाले कल्याणकोष रूप सुपात्र दान देते हैं उन्हे दरिद्रता गिरफ्तार करनेकी इच्छा नहीं कर सकती अर्थात् सदैव लक्ष्मीवन्त होते हैं तथा दुर्गतिके सेवासें पृथक् रहते हैं यानी सदैव सद्गति प्राप्त करते हैं एवम् अपकीर्त्ति उन्हे आश्रयण नहीं कर सकती यानी सदैव यशस्वी होते हैं और क्षिती उन्हे स्वाधीन करनेकी अभिलाषा नहीं कर सकती है अर्थात् सदैव अलभ्य लाभकी प्राप्ति होती है तथा व्याधि उन्हे बाधित नहीं कर सकती यानी सदैव कुशलतासें निवास करते हैं एवम्

दीनता उन्हे पकड़ नहीं सकती अर्थात् सदैव अमीरात भोगते है और रोग उन्हे पीड़ित नहीं कर सकता यानी हमेंशां निरोगाऽवस्थाकों धारण करते हैं तथा आपदा उन्हे क्लेपित नहीं कर सकती अर्थात् हमेंशा निराबाध आनद करते हैं; यहाँ तक वे दानेश्वरी सुखी होते है कि अन्तमें क्रमशः अचिरात् परमपद ( मोक्ष )कों प्राप्त होते हैं

इस विश्वभरमें अगर निष्प्रयोजन उपगारी हो तो प्रायः आधिक्यतासें एक पवित्र जैमुनिराजही हो सकते है इन्हे वस्त्र, पात्र, आहार उपाश्रय और भेपजादि दान देनेसें इतना तीव्र पुण्य सचय होता है कि जिससें शीघ्रही निर्जराकी संभावना है

३ अनुकम्पादानः—किसी जीवपर करुणा लाना उसे अनुकम्पादान कहते है–यथाः—किसी अतिथी, निराश्रय गरीबको आहारपानी देकर उसकी आत्माको सतोप करना अथवा वस्त्रादि देकर धूप, ठण्डसें बचाना एवम् अन्य जीवकों दुःखी देखकर दिलमें दिलगिरी लाना कि हे प्रभो! किसी प्रकार यह भी सुखी हो जाय तो उत्तम है

४ उचितदानः—डुनियावी नियमाऽनुकूल देना उसें उचित दान कहते है यथाः—बहिन, पुत्री, भत्रीजी, भानेजी वगेराकों देना

५ कीर्तिदानः—अपने यश निमित्त देना उसें कीर्तिदान कहते हैं यथाः सदा व्रत खोलना जहाँ चाहे गरीब चाहे अमीर कोई आके मिलती हुई वस्तुकों निराबाध ले जा सकता है अथवा चारण भाटकों दान देना एवं अपनी नामवरीके लिये टीप वगेरामें बहुतसा द्रव्य देदेना वगेराः सर्व कीर्तिदानमें समावेश है

इन उपरोक्त पाँच दानोमेंसे आप पूज्य गुरुवर्य अभयदानमें असाधारण प्रयत्नशील थे आप परमोपकारी अपने अतुल उपदेशद्वारा जिव्हाके लोलुपी मासहारियोंका मास खाना छुड्वाकर जीवोंकी रक्षा करवाते थे तथा वध होते हुवे प्राणीकी रक्षाके हेतु बनता हुवा उत्तम उपचार करते थे तथा ज्ञान अभय दानमें तो आपका एक अलौकिकही द्रव्य था; किसीकों डुर्व्य-

सनोसें अलग हटाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा गृहस्थाश्रमके असह्य दुःखसें बुड़ा लेनेके वास्ते आपश्रीका प्रशंसनीय प्रेम थाः—

वर्त्तमानमें कइ एक साधु, साध्वी मौल लेकर अथवा ईर्षाद्वारा अपनी समुदायकों बढ़ानेके हेतु एवम् अपनी सेवा करवानेके खातिर वा जगतमें नाम वरीविस्तीर्ण करनेके लिये शिष्य समुदायका संग्रह करते हुवे प्रतीत होते हैं. वे हमारे महाऽनुभाव इतनाभी नहीं सोच सकते कि ऐसी कर्तूतोंसें क्या हमारा या शिष्य समुदायका वा शासनका भला हो सकता है? किन्तु सच है! अबोध भङ्गका स्वभावही ऐसा होता है.

हमारे वे पूज्य दयानिधि किसी प्राणीके परमोपकारके निमत्तही गृहस्थाश्रमके गहरे दुःखसें मुक्त कर अपने पवित्र चरणांऽबुजोंका शरण देते थे अर्थात् पवित्र संयम प्रदान करते थे और उसकी उम्र पर्यन्त मात पितासें भी अधिक लालना पालना करते थे और सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आराधन करवा कर कृत कृत्य कर देते थे.

प्यारे ज्ञान रसिकों! आपकों यह बखुबी रोशन होगा कि ज्ञान दानसें बढकर इस जगत्रयम कोई दान नहीं है चूंके इस दानसे सब दानोकी साफल्यता होती है.

आप पूज्य गुरुवर्य इस विषयसें भलीव प्रकार सुपरिचित थे कि ज्ञानके बगेर सर्व शून्य है इसलिये प्राथमिकाऽवस्था ज्ञान दानसेंही विभूषित करना चाहिये ताके अन्तिमाऽवस्था पर्यन्त निराबाध अलभ्य दानकों हांसिल कर सके.

आप सामान्य ज्ञान दानसें सत्क्रियामें प्रवृत्त कराकर शुद्ध, देव, गुरु और धर्मके निर्मल स्वरूपकों उसके हृदयाऽङ्कित करते थे पश्चात् विशेष ज्ञान दानसें आगम रसपान कराकर ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीन वस्तुओंका पवित्र स्वरूप बतलाते थे उसका किञ्चिद् विवरण इस स्थल पर पाठकोंके अभिमुख करता हूं.

( १ ) ध्याताः—ध्याने वाले ( ध्यान करने वाले ) महानुभावको ध्याता कहते है

ध्याताको मुख्य तीन विषयोंमे सदैव पृथक् होना चाहिये जिससें कि दुर्जेय मन चल विचल होकर निगम्बन्धके फांसमें गेर देता है वे ये हैं:-१ दृष्ट २ श्रुत ३ अनुभूत ये प्रायः वगैर चिन्तन कियेही स्मृति पथमें आ जाते है यथाः—

कोई एक प्राणी हवा खोरी करता हुवा जारहा था उसने नगराधिपतिको बड़ेही जुलुशके साथ शहरके बीचो बीच किसी गुलजार बाजारमें निकलते हुवे देखे आगे बढ़कर क्या देखता है कि उसका एक असीम प्रेमी सड़कके किनारे पर खड़ा हुवा राह देख रहा है यह तत्काल स्थानाऽऽपन्न हुवा दोनोंकी चो नज़र होतेही हर्षित नेत्र गद २ भर आए और स्नेहलतासें गुंथी हुइ शब्द श्रेणी खिल उठी इस प्रकार वार्त्तालापसें दोनोके हृदय प्रेम रससें आपूरित (यथार्थ) होगये अब वे दोनो बाजारसें अनेक भोगोपभोगीय पदार्थ खरीद कर एक मनोहर वाटिकाके अन्दर जा पहुचे वहापर अनेक सुन्दर पुष्पाञ्चित दृक्ष अपनी अजीब शोभाको झलका रहे थे वें दोनो प्रेमी एक पवित्र स्थानपर विश्रामित हुवे और उन भोगोपभोगीय पदार्थोंको उत्कट इच्छा द्वारा सेवनकर आनंद रसमें निमग्न हुवे थोड़ेही समय पश्चात् वे दोनो महानुभाव अपने २ मकानपर सानद पहुच गए

अब वह महानुभाव ( जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके है ) ध्यानाऽवस्थामें संलग्न हुवा इस समय वगैर विचारेही वह राजाकी सवारी (वरघोड़ा) और मित्रकी मनमोहन वाणी एवं इन्द्रियोंको सुखदाई खाद्य पदार्थादि स्मरण हुवे, मनको बहुत दबाता है किन्तु वारंवार वे विषय सन्मुख होते हैं इस प्रकार कइ वार हटाने पर भी वे अपनी कटिबद्धतासें पराजय न हुवे और अन्तमें उसे ध्यान भ्रष्ट कर दिया इस लिये मेरे प्यारे ध्यान रसिको ! इन प्रबल बाधक निमित्तोंसें सदैव पराङ्मुख होना चाहिये

( २ ) ध्येयः—जिसका ध्यान किया जाय उसें ध्येय कहते है

हमको वैसेही ध्येयकी आवश्यकता है कि जिससें बढ़कर जगत्रयमें नहो. राग द्वेषके फाससें जखमें हुवे ध्येयके ध्यानेसें आत्मिक अनुभव निरंतर दूर रहता है चूंके जो खुद अनेक प्रपञ्चोंमें ग्रसित हो रहा है और अपना भला करनेकी वाञ्छा कर रहा है वह हमारा भला हरगीज़ नहीं कर सकता. हमें ऐसे ध्येयका ध्यान करना चाहिये कि जो अक्रोधी, अमानी, अमायी और अलोभी हो तथा अरागी, अद्वेषी, अकामी और अशरीर हो एवम् अकर्मी, अक्षय, अविनाशी और अगोचर हो तथैव अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यकाही भोक्ता हो अर्थात् निरंजन, निराकार और ज्योति स्वरूप हो ऐसे सिद्ध भगवान् जोकि अनंत गुणगणाऽलङ्कृत हैं वेही उत्तम ध्येय होना चाहिये.

३ ध्यानः—सम्यग् विचार या सम्यक् चिन्तनकों ध्यान कहते हैं. जैसेंः—

हे नाथ ! आप इस प्रकार समस्त दुःखोको निरासेन (नष्ट) कर अनंत सुखोंमें झील रहे हो मैं अनादि कालसें चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीमें भ्रमण करता हुवा अनेक दुःखोंसें दुःखित हो रहाहूं मैंने अनेक वख्त सुपात्रादि दान दिये, शील व्रतमें सर्वथा निमग्न रहा, उग्रतपस्याकी, शुभ भावनाभी भाइ किन्तु वे सर्व क्रियाएं अनुपयोग द्वारा अज्ञान कष्ट क्रियाकी श्रेणी प्रतिपन्न हुई प्रतीत होती हैं.

हे प्रभो ! किसी दिन तुमभी ऐसी दशामें थे तो क्या वजह है कि मै यहीं रखडू रहाहूं और आप शिवपद ( मोक्ष ) कों प्राप्त होगए इस तरह नाना प्रकारकी आशङ्काए करता हुवा विचारता है कि हे जगदाधार ! आप उन अष्ट कर्मोंके व चेतनके निज स्वरूपों सें भलीव प्रकार परिचित होगए थे जिससे शीघ्रही उन घोर अष्ट दुष्टोंकों दूर हटाकर आत्मीय स्वरूपमें लीन हुवे.

मुझकोंभी इसही प्रकार इन विषयोंसें ज्ञात होना चाहिये कि कर्म और चेतनका संयोग कबसें है इन्होने इस आत्माकों कैसे गिरफतार किया, कर्मबंधनके क्या २ निमित्त हैं. उन्हे रोकनेमें कौन २सी सम्यक् क्रियाओंको सेवन करना चाहिये यानी आश्रवकों निरुद्ध कर संवर किस प्रकार करना चाहिये संवर होनेके पश्चात् सत्ता ( खजाना ) में रहे हुवे कर्मोंकी किस प्रकार निर्जरा

( नष्ट ) करना चाहिये इतमें विषयोंकों जब तक सम्यक् प्रकारसें न जाने, न श्रद्धे और आचरण न करें तब तक आत्माका निज स्वरूप प्रकट होना सर्वथा ङःसाध्य है यह निर्विवाद पक्ष विद्वर्योंकी बुद्धिमें प्रकट सिद्ध है इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यान करना चाहिये

गुणानुरागियों ! उपरोक्त ध्याता, ध्येय और ध्यान स्वरूपसें आपको स्वतः सिद्ध हो गया होगा कि वे कैसे दानवीर मुनिराज थे

इतनाही नही किन्तु कालाऽनुसार निरालंबन ध्यानकी भी सम्यग् विधि बतलाते थे इतने विवरणसें आपकों यह निराबाध विज्ञात हो गया होगा कि वे किस प्रकार विशाल ज्ञानी व दानेश्वरी महात्मा थे मै इस बातकों जाहिरा कह सकता हूं कि जो तटस्थ अनुभवी महात्मा है वे इस विषयको श्रवण कर अपने मुक्त कण्ठसें प्रशंसा किये बगैर हरगिज न रह सकेंगे अहाहा धन्यहो! आपकी दान महिमा जगदाधार है सज्जनो ! अब मै आपके शील प्रभावका किंचिद्वर्णन पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूं

## ॥ शीलका महा प्रभाव ॥

स्त्रीके समस्त विकारी अङ्गोपाङ्गीय सेवनके त्याग स्वभावकों शील कहते है

आप पूज्य गुरुवर्य आबाल ब्रह्मचारी थे यानी बाल्याऽवस्थासेंही सम्यक् प्रकारसें शील व्रत पालन करते थे वृद्ध स्त्रीकों अपने माता तुल्य, युवाकों बहिन सदृश और बालिकाकों अपनी पुत्रीवत् शान्त दृष्टिसें अवलोकन करते थे. काम रससें पूरित स्त्रीकथासें तो आपकों स्वाभाविक ही घृणा थी चाहे अप्सरा भी अपने विकारी अवयवोंकों हाव भाव पूर्वक दिखलाकर वशीभूत करनेका क्यों न सहास रखती हो किन्तु वे हरगिज चलायमान नहीं होसकते थे काम विकारके जितनेही निमित्त है उनसें आप सदैव सर्वतःतट-

स्थ रहते थे. आप पूज्य ब्रह्मचारी निम्न लिखित नव वाड़ो ( किला-नियम) कों वड़ेही पवित्रतासें पालन करते थे.

## ॥ पवित्र नववड़ोका विचार ॥

### ( गाथा )

वसही कहानिसिज्जिं दिय । कुड्डित्तर पुव्व कीलिए पणिए ॥
अइ मायाहार विभूपणाई ॥ नववंभचेर गुत्तिओ ॥ १ ॥

अर्थः—१ वस्ती २ कथा ३ निसिद्या ४ दृष्टि ५ कुड्यन्तर ६ पूर्व क्रीड़ित ७ परिणती ८ अतिमात्राऽहार ९ विभूषण. ब्रह्मचर्यकी इन नौ वाड़ोंकों गोप कर रखना अर्थात् इन नौं विषयोंकों सर्वथा त्याग करना.

१ वस्तीः—वे पूज्य ब्रह्मचारी ऐसे स्थानपर मुकाम नहीं करते थे कि जहाँ पशु, पंडक ( नपुंसक ) और स्त्री निवास करती हो, कारणकी "मार्जर मूषकवत्" दोषकी प्राप्ति होनेका अनुमान है. देखिये जैसे मार्जार ( बिल्ली ) मूषक ( चूहा ) कों देखते ही शीघ्र उसें ग्रहण करनेकों झपटती है तैसे ही तिर्यचोंकों संभोग करते हुवे देख मनोवृत्ति कामवश हो जाती है—इसही प्रकार स्त्रीके विकारी अवयव देखनेसें प्राणी कामातुर हो जाता है तथैव पुरुष, स्त्रीसें प्रवल कामाग्निकों धारण करनेवाले नपुंसकके आचरणोंसें दिल चलविचल हो-जाता है; लिहाजा ऐसे कामोत्पादक स्थानकों वे महानुभाव सर्वथा त्याग करतेथे.

२ कथाः—वे अविकारी ऋषीश्वर स्त्रीके प्रति हास्य कथा व काम कथा कभी नहीं करते अथवा अन्यके साथभी ऐसी कथाओकों सर्वथा निवारण कर रक्की थी, चूँके ऐसी प्रवृत्तिमें "नीबूवदनवत्" दोषकी संभावना हैः—जैसे प्राणीकों नीबू देखते ही वदन ( मुख ) में आम्ल रस व्याप्त हो जाता है. यद्यपि उसे देखा मात्र ही है खाया नहीं है तदपि उसकी स्वाभाविक प्रकृती ऐसी ही है तैसें ही स्त्रीकों सेवन नहीं की है किन्तु कथा मात्रसें ही उसके

हृदयमें विकार व्याप्त हो जाता है इस ही लिये वे बडभागी इस विकारी विषयसें हमेशा पृथक् रहते थे

३ निसिद्याः—वे मुनीश्वर जिस स्थलपर स्त्री बैठी होती उस स्थान पर दो घटिका ( अडतालीश मिनिटस् ) पर्यन्त नही विराजते क्यों की वहॉ पर "अग्नि घृतवत्" दोपका अनुमान है जैसे अग्नि पर घी रखनेसे तत्काल पिघल जाता है वैसे ही स्त्रीके स्थानकी उष्णता लगनेसें रुका हुवा कामज्वर विकशित हो जाता है अर्थात् जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो वह स्थल उसके शरीरकी गर्मीसे तप्त हो जाता है वह आतप लगनेसे मनुष्यकों खयाल होता है की यहॉ पर अमुक स्त्री बैठी थी इस तरह शृंगारोंसे अलङ्कृत थी, इस २ प्रकार शारीरिक मनोज्ञ अवयवोंसे सुशोभित थी इत्यादि चिन्तनसें कामाग्नि उठल पडती है कारण वे सौभागी ऐसे स्थानका कदापी आश्रय नही करते थे

४ दृष्टिः—वे योगीश्वर स्त्रीके प्रति कभी चोनज़र ( विकार दृष्टि ) नही करते थे मतलब की ऐसा करने पर "सूर्य नयनवत्" दोपकी प्राप्तिकी सम्भावना है जैसे सूर्यकों देखनेसे शीघ्र ही नेत्रोंसे जल वहने लग जाता है इसही तरह स्त्रीसें चो नज़र करने पर वह अपने कटाक्ष बाणोंसें ऐसा विव्हल करती है कि काम रस उसके हृदयमें वहनें लग जाता है इस वास्ते वे सागी आत्मार्थी ऐसे दुष्टाचरणसें निरंतर जुदा रहते थे

५ कुट्यन्तरः—वे दृढ व्रत धारी वैसे स्थानपर निवास नहीं करते कि जहा स्त्री पुरुषके शयनगृहसें केवल एक टट्टी ( कच्ची भीत वा घास वगेरासे बुनी हुई टाटी ) का ही व्याघात हो; कारण की ऐसी व्यवस्थामे "मेघ मयूरवत्" दोप का धोका है जैसे मेघकी गर्जाहट सुनकर मयूर अति आनंदित होता हुवा उत्साह पूर्वक वचन कलाप करता है तैसे ही उस शयन गृहमें रहे हुवे स्त्री पुरुषके काम क्रिडा विषयिक वार्त्तालाप श्रवण कर काम रसमें झीलने लग जाता है और अपनी तीव्राऽभिलाषाद्वारा वैसे अनर्थोंमें मशगूल हो जाता है इस वजहसे वे आत्माऽनुयाई ऐसे आवास का संसर्ग तक नही करते थे

६ पूर्वक्रीडितः—उन निर्मल धर्मावतारकों इस विषयके विचारमात्रकी

आवश्यकता नथी. कारणकी की आप स्त्री संसर्गसें सर्वथा तटस्थ थे. तदपि इस वाक़का खुलाशा करना जरूरी हैः—ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकृत स्त्रीकी संजोग क्रीड़ाकों स्मरण नहीं करे यानी ऐसा न विचारे कि अहाहा ! मैं पहिले स्त्रीके अमुक अवयव सें इस प्रकार आनंदित होता था, अमुक अवयवसें इस तरह रसाऽऽस्वादन करता था और अमुक अङ्गसे गाढ़ सुखमें लीन हो जाता था वग़ेरा २ गरज़की जितने ही अङ्गनाके साथ विकारी नाव हैं उन्हे स्मृतिपथसें सर्वथा निकन्दन कर दे; कारण की ऐसा न करनेसे "पंथी तक्रवत्" दोषका संदेह है. जैसेः—

दो मुसाफिर अपने रोजगार निमित्त देशान्तर जा रहे थे रास्तेमें किसी एक ग्राममें एक वृध्दाके मकान पर ठहर गए, ग्रीष्म ऋतुके हेतु मार्गश्रमसें पीड़ित हो गए थे उन दोनोने शितलोपचारके निमित्त तक्र ( छाच ) पान करली कुछ टाइम ठहर कर अपने इष्ट शहरकों चले गए पीछेसें मोकरी क्या देखती है कि उस तक्रमें सर्प का गरल पड़ा हुवा था यह व्यवस्था देख उसके दिल में संदेह हुवा कि अवश्य वे दोनो वटाउ मर गए होंगे.

कितनाक काल बीत जानेपर वे मुसाफिर लौटते हुवे उसही के यहाँ ठहरे मोकरीने देखकर कहा अरे मेरे वीराओं ! क्या तुम अब तक जिन्दे हो ? यह अद्भुत वचन सुन उन दोनोने निज़ हकीकत जाननेकी विज्ञप्ति की उसने नाग गरलके सर्व हाल सुनाए सुनने ही वे मुसाफिर हिचकने लगे और वार २ यह कहने लगे कि अरे बापरे ! इसमें क्या विषधरका गरल था हमारे रोम २ में जहर व्याप्त हो जाता अरे भनो ! हम अवश्य मर जाते इस प्रकार असह्य दुःखके शब्द कहते २ धड़ाकसें दोनोके दम निकल पड़े, तैसे ही पूर्वके कामभोग याद करनेसे कामाग्नि तत्काल प्रज्वलित हो जाती है. लिहाज़ा शीलवान्कों ऐसे विकारी विषयोंकों देश निकाला दे देना चाहिये.

९ परिणती—रसविकारः—वे शान्त गुणधारी अकारण कभी स्निग्ध भोजन नहीं करते थे; क्योंकि ऐसे खाद्यमें "घृत ज्वरवत्" दोषका भय है. जैसें किसीकों बुखार चढ़ा हो उस समय यदि सरस भोजन दिया जाय तो ज्वर

इङ्गित हो जाता है इसही तरह मिष्टानादि स्निग्ध आहार करनेसें कामज्वर देदिप्य हो जाता है इस लिये वे धैर्यवन्त ऐसे विकारी भोजनसें सर्वथा पृथक् रहते थे

सज्जनो ! यहा पर कोई प्रश्न करता है कि यदि आहारमें ही यह सामर्थ्य है तो क्योंकर श्री स्थूलिभद्र स्वामीकों चलविचल न किये क्यों की वैश्यागृह के चातुर्मासमें आप हमेशा षट्रस भोजन करते थे

उत्तरमें विज्ञात हो कि नियम सार्वजनिक होता है किसी एक व्यक्तिके वास्ते नहीं हो सकता वे महानुभाव दिव्य ज्ञानकों धारण करनेवाले एक जितेन्द्रीय वीर पुरुष थे जहाँतक प्राणी उच्च श्रेणीकों प्राप्त न हो वहाँ तक मन कों स्थिरकरनेके हेतु इन नवों वाडोंकों पालन करना चाहिये; इससें यह न समझियेगा कि मन वशमें होनेके पश्चात् विकारी निमित्त सेवन कर सकता है; किन्तु वैराग्य रसमें मनोवृत्ती स्थिर होनेके बाद कदाचित् कारणवश या स्वाभाविक विकारी निमित्त समाप्त हो भी जाँय तो वे सर्व वैराग्यावस्थामें ही समिलित हो जाँयगे. प्रायः तो वैराग्य रसमें झीलने पर विकारी निमित्तों की प्राप्ति ही असम्भवित है

८ अति मात्राऽहारः—वे संतोषी धर्मात्मा रुचिसें अधिक आहार नहीं करते थे किन्तु प्रायः ऊणोदरी ही किया करते थे जिसका कि खुलासा हम तप प्रकरणमें करेंगे वजह कि "भाजन अमनवत्" दोषकी देखत हैं जैसे सेर भरके बरतनमें सवासेर अमन (नाज) डाल दिया जायतो उसमें नहीं ठहर सकता, वैसेही आधासेर आहार करनेवाला यदि पौन सेर कर लेतो उनयता अपने मस्त स्वरूपको प्रकट कर देती है जिससे कामाग्नि उछलने लग जाती है इसही लिये वे दयालु मामूली आहार करते थे अर्थात् अधिक आहारमें महँग आपको घृणा थी

९ विभूषणा.—वे परम वैरागी आत्मा इन्द्रकी शारीरिक शोभा वगैरा नहीं करते थे कारण की "भूषित रत्नवत्" दोषकी संभावना है जैसे रत्न जब तक डिब्बेमें छिपा हुवा रहता है तब तक उसे ग्रहण करनेकी कोई इच्छा

नहीं करता और जब वह मसाले द्वारा स्वच्छ कर दिया जाता है तब हरएक उसें लेनेकी दिली इच्छा करते हैं तथैव जबतक शरीर व वस्त्रादि साधारण स्थितिमें रहे हुवे हैं तब तक कोई बुरी निगाह नहीं डाल सकता नखुदकी इच्छा विकारी होनेकी संभावना है और यदि शरीर चकाचक है, अतर फुलेलसें मर्दित है, बढ़िया वस्त्राद्यलङ्कारोंसें अलंकृत है तो उस हालतमें अन्य स्त्री वगेरा भी कटाक्ष बाण विक्षेप करती है और खुदका भी दिल चलायमान हो जानेका खोफ है इस लिये उन मोक्षाऽभिलाषी धर्म धुरंधरने इस दुष्ट विषय को नासिका मलवत् परित्याग कर दिया था.

उपरोक्त नववाड़ोंसें आप समझ गए होंगे कि ब्रह्मचर्यके रक्षा निमित्त कैसे उत्तम मार्ग हैं, शील व्रत खण्डन होनेके अनेक निमित्त है किन्तु इन नव प्रबल निमित्तोंको जो नष्ट कर देता है वह प्रायः अवश्य दृढ़ शीलवन्त होसकता है. यह स्वतः सिद्ध है कि कारण के विनाशाऽवस्थामें कार्योत्पन्न नहीं हो-सकता. देखिये कहा भी हैः—"निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः" कारण के अभावमें कार्यका भी अभाव होता है. यहाँपर वस्त्रादि नौ विषयोंको सेवन करना यह निमित्त है और मैथुन सेवन नैमित्तिक है वास्ते उन्हके दूर करनेसें मैथुन स्वतः नष्ट हो जायगा.

हां अलबत्ता! इतना अवश्य है कि कामदेवको जीतना कुछ सहज नहीं है जिस वख्त वह खींचकर बाण मारता है बड़े २ ज्ञानी, ध्यानी और महात्मा नाम धरानेवाले थर २ धूजने लग जाते हैं. देखिये उसके बाणोंके अन्दर किस प्रकार शक्ति है

## ( श्लोक )

उन्मादनस्तापनश्च । शोषणः स्तंभनस्तथा ॥
संमोहनश्चकामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

भावार्थः—उन्मत्तता, आतपता, शुष्कता, स्तब्धता और मोहित दशा; इस प्रकार कामदेवके पञ्च बाणोंसें प्राणी विव्हल दशाको प्राप्त हो जाता है.

व्याख्याः—(१) उन्मत्तताः—जिस वख्त कामदेव अपने बाणकों तान कर मारता हे उस वख्त प्राणी मदोन्मत्त हो जाता है इस वख्त माता, बहिन, पुत्री, स्व स्त्री, पर स्त्री और वैश्या वगेराका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है जाति मर्यादा, कुल मर्यादा और अपनी अमूल्य इज्जत आवरुसें भ्रष्ट हो जाता है अपने पवित्र गुरुवर्योंकी और लौकिक लज्जासें बिलकुल नही डरता जिसने अधोवस्त्र मस्तक पर पहन लिया वे बेशरम कभी नही शरमाते कहा हैः—

( शैर )

शरमको भी यहाँपर । शरम आय हे ॥
जो बेशरम हो । वे न शरमाय हैं ॥ १ ॥

(२) आतपनाः—जिस समय प्रद्युम्न अपना बाण खीचकर मारता है उस समय आदमीके हृदयमें ज्वाला लग जाती है जिस प्रकार एकसो पाँच डिग्रीके बुखार वाला दुःखी होता है उससें कितने ही गुणा प्राणी कामज्वरसें पीडित हो जाता है

(३) शुष्कताः—जिस वख्त मदन अपने बाणकों खींच कर मारता है उस वख्त मानवका शरीर सूक जाता है क्योंकि चिन्ता डाकिनी कलेजेमें बैठकर रक्त पीती है यानी उसें रात दिन कामिनीकी प्रबल इच्छा बनी रहती है किन्तु भाग्य हीनतासें स्त्री संसर्ग नहीं होता—अथवा कामदेवसें पीड़ित होनेके हेतु प्रियतमाकों वारंवार सेवन करनेसें शरीर पिंजर हो जाता है जिस प्रकार जलमें भरी हुई पुष्ट मसक पानीके निर्गमन होनेसें सुक जाती है इसही प्रकार वीर्य क्षयमें शरीर पिंजर हो जाता है

(४) स्तम्भताः—जिस अवसरमें मन्मथ अपने बाणकों ताक कर मारता है उस वख्त उसका शरीर स्तम्भ हो जाता है जैसे किसीकों अचानक दुःख आ गिरे और वह दिग्मूढ हो जाता है इसही प्रकार उसकों कुछ भी कार्य नहीं सूझ पडता एक स्त्री विलासकी वाञ्छा में ही मलग्न रहता है.

(५) मोहित दशाः—जिस वख्त अनङ्ग अपने बाणको झपटकर मारता है उस वख्त प्राणी मोहसे विह्वल हो जाता है जैसे मदिरा ( Wine ) पान किया हुवा आदमी पागल हो जाता है इसही तरह विलासिनीमें गाढ मोहित हो जाता है और इस अवस्थामें स्त्री जिस तौर नाच नचावे उसही तरह नाचता है—धन्य हो! पुरुषार्थ धारी हों तो ऐसे ही हो.

उपरोक्त व्याख्यासे आपको अच्छी तरह रोशन हो गया होगा कि कामदेवके कैसे तीक्ष्ण बाण हैं. अन्य बाणके लग जानेसें तो जीवित रहनेका भरोसा है व शीघ्र आराम होनेका भी सम्भव है किन्तु इस असह्य दुर्वार बाणके लगनेसें आदमी मूर्छित हो जाता है और प्रायः इसके वशीभूत होकर इसकी आज्ञामें चलना पड़ता है अर्थात् दुष्टाचारको आचरण करना पड़ता है. इन बाणोंके घाव सहन करते हुवे भी युध्दसें न हटनेवाले बहुत ही कम प्रतीत होते है. इस दुनियामें कइ एक अतुल पराक्रमी विद्यमान हैं किन्तु इस जगह आते ही सबके हाथ पेर ठण्डे पड़ जाते हैं. सज्जनो! कामदेवके अभिमानको गलन करनेवाले विरले ही वीर रत्न हैं. देखिये किसी अनुभवी महात्माका कथन है.

( श्लोक )

मत्तेभकुम्भ दलने भुविसन्तिशूराः।
केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः॥
किन्तु ब्रवीमिबलिनां पुरतः प्रसह्य।
कंदर्पदर्प दलने विरला मनुष्याः॥ १॥

भावार्थः—हे शूरवीरों! इस विश्वमें कइ एक ऐसे बाहादुर ( brave ) हैं कि मदोन्मत्त हस्तिके कुंभ स्थलको विदारणकर डालते हैं तथा कइ एक ऐसे पराक्रमी हैं कि प्रचण्ड सिंहको टंगड़ी पकड़ कर चीर डालते हैं किन्तु हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि दुर्जय कामदेवके मदको दलन करनेवाले विरले ही पुरुष होंगे.

वस्तुतः कामदेव ऐसा ही घोर शत्रु है जब तक प्राणी इसके फाँससें पृथक् नहो पवीत्र शील व्रतकों हासिल नहीं कर सकता और इस महाव्रतके न होने पर प्राणी तप, जप, ज्ञान, ध्यानादि कुछ भी सम्यक् प्रकारसें करनेको समर्थ नही हो सकता देखिये:—

जिस प्रकार बगैर राजाकी रईयत नष्ट भ्रष्ट होजाती है और कोई भी यथावत् कार्य करनेकों समर्थ नही हो सकती इसही प्रकार वीर्य राजाके न होने से देह प्रजा बरबाद हो जाती है और कोई कार्य करनेका हौसिला नही कर सकती शरीरमें प्रधान वस्तु वीर्य ही है इसहीके प्रभावसें यह वपु हृष्ट पुष्ट, दिव्य कान्तिवान् और निरोग रहता है और इसही के अतुल कृपासें स्मरण शक्ति ( Memory ) विचक्षण बुध्दि और दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है तथा इसहीके परम महरसें प्राणी अनंत शक्तिवान् होता है एवम् इसही के आधारसें भव्यात्मा अष्ट कर्मकों विध्वश कर सिध्दि पदकों प्राप्त करता है एक इसके न होनेसें सर्व आशाऐं निष्फल हो जातीं है

इस स्थल पर कोई प्रश्न करता है कि अगर वीर्यमें क्षिती होनेसें ही शरीर बेकार हो जाता हो तो आम गृहस्थों की यह दशा होना चाहिये क्योंकी अधिकाश गृहस्थ ( व्याहे हुवे ) लोग स्त्रीकों नित्य सेवन करते है फिर क्योंकर सर्वका शरीर जर्जरीभूत नहीं दिखाई देता? लिहाज़ा यह उद्देश खिलाफ है

उत्तरमें विदित हो कि दुनियावी यह कहावत है कि "पहिलेके बुढे अबके जवान अब होंगे सो और नकाम" यानी पूर्वके वृध्दोंके मुताबिक भी अबके युवानोंमें सामर्थ्य नहीं है और आइन्दा होंगे वह इससें भी शक्ति विहीन होंगे इसका यही मतलब है कि पूर्वकालके लोग प्रथम तो यथोचित वय में शादी करते थे द्वितीय योग्य अवसरपर स्त्रीसेवन करते थे जिसकी सतान प्राक्रमी और ज्ञानवान् होती थी इस वख्त अधिकाश बाल लग्न होनेसें अपरिपक्व वीर्यको छेद्न किया जाता है उससें यही नुकशान है कि जैसे कच्चे फुवारको सतानेसे होता है आपको वैद्यक नियम विज्ञात होगा कि कितनीक

व्याधियोंको छोड़कर प्रत्येक बीमारीका यह नियम है कि यावत् वह परिपकावस्थामें न होजाय तावत् उसका माकुल इलाज़ नहीं किया जाता तद्वत् बाल्यावस्थामें स्त्री संसर्गका फल होता है. तिद्वीय यह भी है कि इस जमानेमे प्रायः नित्य भोग करते हैं, इन लोलुपियोंके बनिस्पत तो विचारे कुत्ते और कव्वे ही ठीक समझे जा सकते हैं कि जो अपनी मौसिम पर मैथुन सेवन करते हैं. इसही लिये इस वख्त ऐसे कामी पुरुषों की संताने बहुत कमजोर प्रतीत हो रही है तात्पर्य यह है कि अधिकांश नित्यभोगी गृहस्थ बलवान् होते हैं यह बात उपेक्षणीय है. अब रहा यह की कितने लोग नित्य भोगी होने पर भी रुष्ट पुष्ट दिख पड़ते हैं उसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे मैथुन सेवनके पश्चात् ही कुछ ताकतवर वस्तुऐं सेवन करते हैं अथवा अपने खानपानका पूर्णतः साह्य रखते हैं. इस लिये वे कुछ २ काम कर सकते हैं ऐसा होने पर भी यह अवश्य है कि नित्यभोगी जो रुष्ट पुष्ट दिख पड़ते हैं उनमेंसें अधिकतर बाह्य शक्ति मात्र ही धारण किये हुवे हैं अर्थात् अभ्यन्तर शक्तिसें बेशक वे वञ्चित हैं यह अनुभव सिद्ध हैं. सारांश यह है कि ब्रह्मचर्य न पालनेसे अवश्य ही हीन दशाकों प्राप्त होते हैं.

प्रस्तुत प्रकरणमें कोई प्रश्न करता है कि यदि शीलपर ही सर्वाधार है तो क्योंकर मुनि जनोमे पृथक् २ कृष्यता, दुष्कान्ति, व्याधि, अस्मृति, बुद्धि हीनतादि दिख पड़ते हैं? चूंके मुनिराज तो सदैव अखण्ड शील व्रतकों पालन करते हैं.

जवाबमें मालुम हो कि कितनेक मुनिराजमें जो उपरोक्त आपत्तियें गिरतीं हैं उसका उपचरित कारण यह प्रतीत होता है कि उनके पथ्यका साधन योग्य नहीं रह सकता और भी अनेक परीसह सहन करना पड़ते हैं इससे उनका वीर्य विगड़कर मल, मूत्र, खकार और श्लेष्मादिके ज़रिये क्षय हो जाता है. इससे उपरोक्त व्यवस्थाएं प्रतीत होतीं हैं; तदपि विशेषतः इतनी जोरदार आपत्तियें नहीं आती कि जितनी गृहस्थकों होतीं हैं.

हम इस दुनियामें प्रायः देखते हैं कि कामी पुरुषका शरीर शीघ्र ही जर्ज-

रीभूत हो कर बेकार हो जाता है और अखण्ड शील व्रत धारी अपने इच्छित कार्योंको निराबाध कर सकता है इस वक्त मि० सेन्डो (रामपूर्त्ति) जोकि एक अद्भुत पराक्रमी समझा जाता है वह शील व्रतका ही महा प्रभाव है

कइ एक कामी पुरुष यह कहते है कि संसारमें आकर जिसने स्त्री विलास न किया उसने अपना जन्म व्यर्थ गुमा दिया इस दुनियामें कामिनेसें बढ़कर कोई सुख नही हैं देखिये वह गजगामिनी; चन्द्रमुखी, कमलनयनी, स्वर्ण कलशोपमित पयोधरधारिणी गजशुंभावत् जङ्घा सुशोभित आदि अनेक अलङ्कारोसें अलङ्कृत है ऐसी सुन्दरीकों भुजालताओंसें गाढ आलिङ्गन कर कौनऐसा होगा कि जो अपूर्व सुखका अनुभव न करे अर्थात् आनद रसमें झीलनेकी वॉछा न करे ! जिसकी युवाऽवस्थाका यौवन झर रहा है वह अपने शरीरकों यदि अन्य तपादि क्रियाओंमें शोषण करे तो क्या उसमें बढ़कर कोई मूर्ख शिरोमणि हो सकता है ? इत्यादि अनेक आक्षेप कर वैराग्य भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करते है

मेरे प्यारे वैरागियों ! क्या उपरोक्त कथन सत्य है ? यदि ऐसा ही हो तो अनर्थोसे वचन । प्राणियों कों सर्वथा असम्भव हो जायगा मै यह हरगीज़ क्यास नहीं कर सकता कि मेरे प्यारे निरागी महाशय इसें स्वीकार करें लीजिये जरा उन कामान्ध पुरुषों के लिये नेत्राञ्जन देखियेः—

मुमुक्षों ! स्त्रीके समस्त शरीरमें तीन अङ्ग विशेष विकारी हैः-१ मुख २ स्तन ३ जङ्घा स्थान इन तीनोंसें आदमी पागल होकर इसही में मोक्षसा सुख मानता है. इन तीन अङ्गोंके अन्दर किस २ प्रकार दुर्गन्धित मल भरा हुवा है यह सुन बुध्धिजन तत्काल तटस्थ हो जाते है देखिये किसी वैरागी महात्मा का कथन हैः—

( श्लोक )

स्तनौमास ग्रन्थीकनक कलशाविव्युपमितौ ॥
मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥

**स्त्रवन्मूत्रंक्लिन्नं करिवर करस्पर्धिजघन ॥**
**महोनिद्यं रूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥**

भावार्थः—स्त्रियों के स्तन मांसके लोंदे हैं उन्हे सुवर्ण कलशकी उपमा सें उपमित करते हैं; मुख थूक और खकारादिका गृह है उसें चन्द्रमाके सदृश वतलाते हैं और टपकते हुवे मूत्रसें भीगी जङ्घाओंकों श्रेष्ट गजके शुण्डा समान कहते हैं. देखिये स्त्रियोंका पुनः २ निंदनीय स्वरूप होनेपर भी कवियोंने कैसा वढ़ाया है क्या कवि कुशल तुम्हें इस प्रकार अघटित उपमा देते लज्जा प्राप्त नहीं होती ?

व्याख्याः—स्तन जो कि पुष्ट और उत्तंग दिख पड़ते हैं उनमें केवलमां सभरा हुवा है. यदि किसी प्राणीकों मांसके ग़ले हाथोंमें देकर उन्हें मथन करनेके वास्ते कहा जाय तो क्या वह स्वीकार करेगा ? नहीं २ स्वीकार करना तो दूर रहो किन्तु स्पर्श तक न करेगा बस इसही तरह विवेकी पुरुष सड़े हुवे दुर्गंधित मासके लोंदे सदृश स्तनोकों मर्दन करनेकी कदापी इच्छा नहीं करते.

मुख जो कि गोरी चमड़ीसें मढा हुवा दिव्य कान्तिकों झलकाता हुवा दिग्मुढ़ोंकों फिदा कर लेता है वह केवल पीक और खकारसें भरा हुवा है. अर्थात् सड़े हुवे वीर्य और विष्टाके भागोंसे भरा हुवा है यदि किसी पुरुषकों इस प्रकार सड़े हुवे वीर्य और विष्टाके भागोंसे भरे हुवे पात्रकों ओष्टों द्वारा प्रेम पूर्वक आश्वादन करनेका कहा जाय तो क्या वह अङ्गीकार करेगा ? अङ्गीकार करना तो दूर ही रहो किन्तु ऐसा सुनने मात्रसें ही जीमें घवराहट होकर तत्काल वमन हो जाती है. वस तो इसही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष घृणोत्पादक (कमकमी दिलानेवाला) दुर्गंधित खकारादिसे भरे हुवे मुखकों कदापि चुंवन करनेकी वांछा नहीं करते.

जङ्घा स्थान जो कि गज शुण्डावत् प्रतीत होता हैं वह केवल मूत्र और लोहुसें भरा हुवा है. किसी व्यक्तिकों यदि कहा जाय कि मूत्र, लोहु और

वीर्यादिसे जरा हुवा कीड़े जिस्मे बिलबिला रहे हैं ऐसे कुएमें स्नान करके अपने शरीरकों पवित्र करोंगे क्या ? नहीं २ स्नान करना तो दूर रहो किन्तु ऐसी डुर्गछनीय बात तक सुननेकी इच्छा नहीं करते बस इस ही तरह बुद्धिवान मल मूत्रादिसें जरे हूवे ( जिसकों देखने मात्रसें कमकमी छूटती है) जघ्घा स्थानकों सेवन करनेकी कदापि अनिलाषा नहीं करते

उपरोक्त व्याख्यामें आपकों मालुम हो गया होगा कि स्त्रीके कैसे २ डुर्गन्धित स्थान है तो जी हाय हाय ! ठी ठी ! ! मूर्ख लोग जिह्यामें मुह देनेमे नहीं शर्माते इन्डियजीत पुरुषोके तो डुर्जय कामदेव सदैव किंकर रहता है देखिये:—

एक समयका जिक्र है कि परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी किसी स्थान पर अपने कायोत्सर्गमें सन्निष्ट थे इधरसे कामदेव और रति पर्यटन करते हुवे आ निकले–उनके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे:—

## ( श्लोक )

कोऽयंनाथ जिनोजवेत्तववशी हूँहूँ प्रतापप्रिये ॥
हूँहूँतर्हिविमुश्च कातरमते शौर्या वलेपक्रियाम् ॥
मोहोनेन विनिर्जित· प्रजुरसांतत्किङ्कराः केवयं ॥
इत्येव रतिकामजल्प विषयेपार्श्वप्रजुः पातुनः ॥ १ ॥

इस अपरे श्लोकका जावार्थ प्रश्नोत्तरमे ही दिग्वलाना समुचित समझता हूं:–

रतिः–हे नाथ ! यह सन्मुख खडे हुवे कौन है ?

कामदेवः–प्रिये ! ये जिन जगवान् है

रतिः—क्या ये आपके वशीभूत हैं ?

कामदेवः—हे प्रतापशालीप्रिये ! हूँ. हूँ.

रतिः—हे कायर पुरुष ! यदि हूँ हूँ करता है तो अपना शक्ति बाण क्यों नहीं छोड़ता.

कामदेवः—हे प्राणवल्लभे ! इन महात्माने विषरूप मोहकों सर्वथा त्याग कर दिया है इसलिये अपन तो इनके सदैव किङ्कर हैं. महानुभावों ! इस प्रकार रति और कामदेवकी वार्त्तालाप विषय वाले श्री पार्श्व प्रभु सदैव हमारी रक्षा करो.

इस श्लोकसें आपकों सुविदित होगया होगा कि जिन महात्माओंने पुनः २ निन्दनीय स्त्री संसर्गकों सर्वथा परित्याग कर अखण्ड शील व्रत धारण किया है उनके सेवाकी इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र भी निरंतर वाँछा करते हैं. एक इस शील व्रतसें अनेकशः गुण प्रकट होते हैं जिसका वक्तव्य मेरी सामान्य लेखनीसें बाहर है तदपि यत्किञ्चिद् उधृत करता हूँः—

## ( श्लोक )

हरतिकुलकलङ्कंलुम्पतेपापपङ्कंसुकृतमुपचिनोतिश्लाघ्यतामातनोति।
नमयतिसुरवर्गंहन्तिदुर्गोपसर्गंस्त्वयतिशुचिशीलंस्वर्गमोक्षौसलीलम्

भावार्थः—यह शीलव्रत कुलके समस्त कलङ्कोंकों हरण कर लेता है तथा पापरूपी कीचड़कों विनाश कर देता है और सत् कृत्योंकों वर्द्धित करता है तथा प्रशंशा विश्व विस्तरित करता है एवं महा ऋद्धिवन्त देवताओं ( इन्द्रादि समस्त ) को नमन करा देता है तथा घोर उपसर्गोंको मार भगाता है और अन्तिममें जघन्यसें स्वर्गवास और उत्कृष्टसें अपवर्ग ( मोक्ष ) की विचित्र लीलाकों रचतां है अर्थात् अनंत सुखकारी सिद्धि पदकों प्राप्त करवाता है.

उपरोक्त समस्त व्याख्यासें आपकों सम्यक् प्रकारेण विज्ञात हो गया होगा कि शीलव्रत एक कैसा उत्तम रत्न है इस व्रत रत्नकों आप परमवैरागी पूज्यगणाऽधीश्वर अकथनीय कटिबद्धता पूर्वक पालन करते थे धन्य हो! आपके अखण्ड शीलव्रतका महा प्रभाव विश्व प्रशंसनीय है प्यारे गुण ग्राहियों! अब मैं आपके दिव्य तपश्चर्याका पाठकोंकों श्लाघनीय परिचय दिलाता हूँ:—

## ॥ दिव्य तपस्या ॥

जिसके जरिये अष्ट कर्मों को तपाना यानी निर्जरना अर्थात् विनाश करना उसें तपस्या कहते है जैसे काष्टके अन्दर अग्नी डालनेसें जलबल कर खाक हो जाते है; इसही तरह तपस्यारूप अग्नीसें काष्टरूप कर्म नष्टताकों प्राप्त होते है अर्थात् निर्मूल हो जाते है अथवा इच्छारोधन करना उसें तप कहते हैं

आप पूज्यगणाऽधीश निम्न लिखित द्वादश तपका सम्यग् आचरण करते थे:—

## ( गाथा युग्मम् )

अणसणमुणो अरिआ । वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसोसंलीणा । आयवज्झो तवोहोई ॥ १ ॥
पायच्छित विणए । वेयावच्चं तहेवसज्झाओ ॥
झाणं उसग्गोविअ । अभिंतरो तवोहोई ॥ २ ॥

अर्थः—१ अनशन २ उणोदरी ३ वृत्ति संक्षेप ४ रसत्याग ५ कायक्लेश ६ सलीनता ये ६ बाह्य तप होते हैं तथा १ प्रायश्चित २ विनय ३ वैयावच्च ४ सझाय ५ ध्यान ६ उत्सर्ग ये ६ अभ्यन्तर तप होते हैं

इन बारह प्रकारके उग्र तपका आप पूज्य गुरुवर्य किस २ प्रकार आचारण करते थे उनका किञ्चित् खुलाशा पाठकोंके अभिमुख करता हूं:—

(१) अनशनः—अहारका त्यागकना उसें अनशन तप कहते हैं. आप महा तपस्वीने उपवास, बेला, तेला, अठाई, पक्षक्षमण, मास क्षमणादि पर्यन्त बहुतसी तपस्या कर पुद्गलको निर्विकारी बनाया. जिस वख्त आप उपवासादि व्रत करते थे बड़े ही संतोष पूर्वक अपने कालको निर्गमन करते थे.

वर्त्तमानमें कइ एक महानुभाव उपवासादि व्रत कर खानपानकी चेष्टा किया करते हैं यानी बाहरसें तो उपवासादि के प्रत्याख्यान ( नियम ) कर लेते हैं औ मन उनके बाज़ारमें हलवाईयों की दुकानों पर घूमा करते हैं और यह विचार किया करते हैं कि हे ईश्वर! आजका दिन बड़ा लम्बा हो गया आज तो सूर्य भी ऊंघता २ चलता है इस प्रकार रात्रिमें भी धुनघुना हट्ट करते हैं कि कब दिन ऊगे और रुष्ट भोजन महाराणाको मनावें. साथकी साथ उपवासके दिन यह भी चेष्टा करते हैं कि कल पारणेके लिये अमुक २ रसवती भोजनकी तैयारीके लिये आजही सर्व बन्दोबस्त कर लेना चाहिये नहीं तो पारणेमें विलम्ब हो जायगा इत्यादि अनेक विकल्प कर उपवासके फलको नष्टभ्रष्ट कर देते हैं.

सच है! ऐसे उपवासादि व्रतसें कुछ भी फल नहीं हो सकता. इधर जरा जैनेतर लोगोंकी तर्फ झुक कर देखते हैं तो एक विलक्षण ही गम्मत नज़र आती है. कहावत मशहूर है कि "जैनियोंका वास और कायाका नाश वैष्णवका वास और पैसोंका नाश."

विरले पुरुषोंको छोड़कर जैनेतर लोग जब एकादशी वग़ैरा का उपवास करते हैं तब लड्डु, पेड़े, कलाकन्द, पेठे और सिंघाडेका हलवा वग़ैरा अनेक मिष्टान पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा आम, केले, सन्तरा, अनार, जामन, तरबूज, खरबूज, ककड़ी वग़ैरा रसाल खाकर मौज उड़ाते हैं एवम्

।कसमिस, पिस्ते, काजु, नेजे और बादामादि वस्तुओंको सेवन कर उग्र तपके फलकी आशा रखते है तथैव मलाईका वर्फ, कच्चा वर्फ और अमनिया ठण्ढा (कच्चा) जल पानकर आनद मानते है कइ एक लोग दिनजर जूखे मरकर रात्रीको जोजन करते है और कइ एक ऐसा जी कथन करते है कि यदि फलहार (अन्नको छोड़कर शेप मिष्टान, मेवा, फलादि) न करें तो वह उपवास गिनतीमें नही हो सकता अर्थात् उसमें हमारे मनोवाछित नही मिल सकते है

वहावहा क्या खूब! एकादशीकी दादी द्वादशी सदृश मौज उमाने पर जी यथेच्छा फलकी अजिलापा करते है उफ! मै जूला उपवासमें जो वे फलहार करते है वह ठिक है उस दिनके जोजनका नाम वेशक गुण निष्पन्न है सुनिये जरा ध्यान पूर्वक "फलह्रीयते इतिफलहारः" जिस जोजनसें सम्यग् इष्टता हरण हो अर्थात् नष्ट हो उसे फलहार कहते है अस्तु कुछ जी हो किसी पर कटाक्ष करना उचित नहीं मै तो सीर्फ मेरे प्यारे गुणग्राही तटस्थ पाठकोंकों इतना ही ध्यान दिलाना चहाता हूँ कि एसे व्रतसे अपनी इष्टता हरगीज़ नही हो सकती उनका व्रत करना गोया दिलकों वहलाना है मुझे पूर्ण आशा है कि विद्वान् पाठक वर्ग अवश्य इस पर लक्ष देकर वास्तविक नियमकों विचारेंगे

कइ एक प्राणी अपने यशकीर्त्तिके निमित्त, उपवास, वेला, तेला, अठाई, पक्षक्षमण, मासक्षमणादि करते है कि जिससें लोग मुझे खूब, पूजें, माने, मेरी सेवा, सत्कार करें और मेरी कीर्ति डुनियामें चो तर्फ फैल जाय यह जी प्रायः निष्फलरूप ही है

हमारे वे पूज्य महा तपस्वी उपवासादि व्रतके दिन कैसी २ शुज जावनाए जाते थे जिसें सुनकर प्राणी वैराग्य रसमें झीलने लग जाते हैं सुनिये उस दिलचस्प अपूर्व जावनाका एक अमृत बिन्डु आपकों जी आस्वादन कराते हैंः—

हे चेतन! आजका दिन अहोजाग्य है आज तेरे अनत पुण्याइका उदय है की उपवासादि व्रत उदय आया अनादि कालसें तेने अनेक योनियोंमें अनेक शरीर धारण किये और नाना प्रकारके जोजनादि जोगकर उदर पूर-

णाकी, यदि उसकी गिनती करने लगे तो कई मणांसे कणांसे तक भी नहीं ठहरती. पानीका यदि हिसाब लगाया जाय तो समुद्रके समुद्र तक खाली कर दिये होंगे मगर तुझे अबतक संतोष न हुवा; भवान्तरको छोड़कर यदि इसही भवका हिसाब लगाना चाहें तो कुछ यथावत् पता नहीं लगता देख यह उदर कितना गहरा है सुबुह खाया शामको फिर खाली, शामको खाया सुबुह फिर खाली उपासका नाम मात्र सुननेसें दश२ कोश दूर भागता है तू अन्नका कीड़ा सदैव अन्नमें ही प्रसन्न रहता है जिस प्रकार विष्टाका कीड़ा विष्टामें ही खुश रहता है कभी उसको उच्च स्थान पर पहुँचनेका कहो तो कभी नहीं मानता इसही प्रकार तुझे कभी व्रतका कहते हैं तो हृदय वज्रसा घाव पड़ता है हे आत्मा! तूझे इतना भी खयाल नहीं होता कि ऋषभदेवादि तीर्थंकर, पुण्डरीकादि गणधर श्रुत केवली, दिग्विजय आचार्य और अनेक मुनि महात्माओंने कइ एकप्रकार तपाराधन कर अपनी देहका कल्याण किया है और अन्त में यावत् उग्र अनशन कर परम पदको हाँसिल किया है तुझे आज उपवासादिमें इतना कष्ट प्रतीत होता है यह केवल तेरी ढिठाई है तू इस वख्त संतोष को अवलम्बन कर पूर्वजोंकी अनुमोदन करके आनंद रसमें झील, तुझको वार२ यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकेगा. देख अखीर तूझे इन पौद्गलिक पदार्थोंसें जुदा हुए बगेर सिद्धि पद कभी नहीं मिल सकता तो क्योंकर अभ्याससें वंचित रहता है यह मानव भव, पुनः २ तुझको हरगीज़ प्राप्त नहीं हो सकता. यह पौद्गलिक पदार्थ तेरी नहीं है क्योंकर इसमें रक्त हो रहा है अब तू इनसें तबियत हटा और संतोष समुद्रमें निमग्न हो. इत्यादि नाना प्रकारसें भावना भाते हुवे अपने अमूल्य टाइमको निर्गमन करते थे.

(२) उणोदरीः—क्षुदा, पिपासाऽऽपूरित भोजनसें न्यून करना उसें उणोदरी कहते हैं. वे धर्मावतार प्रायः कइ वार इछित भोजनसें खास तौर पर (Specially) कम कर आहार, पानीसें तबियत हटाते थे और उत्तम२ भावना भाकर अपने मानवभवको सफल करते थे.

(३) वृत्ति संक्षेपः—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसें रही हुई व्यवस्था को कम करना उसें वृत्तिसंक्षेप कहते हैं.

आप ज्वोद्धारक १ द्रव्यसें तो जौगिक यानी खानपानकी वस्तुओंकों संक्षेप करते तथैव औप जौगिक यानी उपधी, ( उपगरण–वस्त्रादि ) वगेराका नियम करते थे २ क्षेत्रसें आज इतने घरसें ही आहार पानी लाना और न मिलने पर उपवास व्रतकर जाना तथा गमना गमन इतने क्षेत्र प्रमाणसें अधिक नहीं करना ३ कालसें अमुक समय परही गौचर्यादि लाना न मिलने पर क्षेत्रवत् ४ जावसें उठलते हुवे क्रोध, मान, माया, लोज, राग, द्वेषादिकों उपशान्त कर शनैः २ निराबाध क्षपादेना इस प्रकार वृत्तिका संक्षेप करते हुवे यह जावना जाते थे किः—

हे चेतन ! इस ङनियाके अन्दर मुख्य दो शत्रु है प्रथम राग द्वितीय द्वेष जिस्में जी राग बड़ा ही डर्धर है इस ही घोर शत्रुने तुझे अनंत जव रुलाया गृहस्थाश्रमके अन्दर किसी समय पितासें, कज्ञी मातासे, कज्ञी जाई, बहिनसें, कज्ञी जार्यासें कज्ञी पुत्र, पुत्रीसें और कज्ञी स्नेही मित्रादि अनेक संम्बन्धोमें मोहित कराकर आसक्त किया इसही लिये तूंने उत्कृष्ट सुख उसही मे स्वीकार किया और दिन बदिन प्रबलताकों साथ देनेमें कटिबध्द रहा इधर श्रमणपदमें स्वार्थी होकर गुरुसें प्रेम बढ़ानेमें उत्कट इच्छुक हुवा तथा गुरु जाई, शिष्य, शिष्याओंकी व्यावहारिक सेवा जक्ति देख गाढ स्नेहमें चकचूर हुवा और मोक्षके सुखका अनुजवन यही मानने लगा अशनादि चतुर्विध जोजनके आस्वादनमें लिप्त रहा, कोमल स्पर्शीय वस्त्रादिकोंका सुख अपूर्व रूपसें मानने लगा, मकानादिकी उवियों पर बेचेनीसें वियोग किया अर्थात् प्रेमानंद मानने लगा इत्यादि अनेक जोगोपज्ञोगीय पदार्थोंपर ऐसा गाढ ममत्व रहा कि जो वक्तव्यसें बाहार है हे अवधु ! तुझे यह आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, जैनधर्म और श्रमणपदादि उत्तमोत्तम योगवाईयें वार २ नहीं मिल सकेगी जरा अपने हृदय पर हाथ धरकर विचार कर की तूँ कौन है और ये पदार्थ क्या हैं ! हे आत्मा ! तूं अनत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यमय, अक्षय, अविनाशी, अव्याबाध, निर्विकार, निराकारादि समस्त उत्कृष्ट गुणोपेत है और ये जितनी पौद्गलिक पदार्थें है वे सर्व जमात्मक है क्या कोई ज्ञानी किसी मूर्खकी सगतीसें खुश होता है ? नहीं २ कदापि नहीं खुस होना तो दूर रहो किन्तु शब्द मात्र ही कर्णोंमें शूल सदृश डःखदाई होते है

तो हे चेतन ! ये जितनी ही भोगोपभोगीय पदार्थ हैं उससें राग भणाती दूर कर चिदानंदमय हो जा. तेरे इस भववृध्दि रागके निकंदन होनेसे द्वेष स्वतः ही नष्ट हो जायगा जैसें जड़के काट देनेसें वृक्ष स्तम्भ, शाखाएं, पत्र, फूल, फलादि स्वयं विनाश हो जाते हैं. इत्यादि शुभ भावना द्वारा रागद्वेषके आश्रवको निरोधकर संचित रसकों पतला करते थे. धन्य हो ! मुनि रत्न आप कृत पुण्य हो !

( ४ ) रस त्यागः—रसवती पदार्थोंकों परित्याग करना उसें रस त्याग कहते हैं.

आप निर्विकारी महानुभाव दूध, दही, घृत, तैल, मिष्टान और पक्वान्न इन षट् विगयकों कइवार त्याग कर देते थे और निरंतर एक दो विगयसें प्रायः विशेष सेवन नहीं करते थे. किन्तु षट् विगय हमेशां छोड़नेकी उत्कृष्ट खप ( कोशीस ) करते थे.

( ५ ) काय क्लेशः—किसी तरह शरीरकों कष्ट देकर सहनशीलताकों बढ़ाना उसें काय क्लेश कहते हैं.

आप पृथ्वीसम सहनशील नियमित समयपर लोच ( वाललुंचन ) करवा कर मनके चंचल वेगकों स्थिरीभूत करते थे. आप भवतारकने ३६ वर्ष ४ माह और १४ दिवश अखण्ड चारित्र पाला इसमें रोगादि कष्टावस्थाओं में भी आपने मुण्डन ( रासादि प्रयोगसें वाल निकलवाना ) कभी न करवाया यह एक उत्कृष्ट चारित्रका परिचय है.

आपके आतापना तपका अपूर्व गुण सुन भाणी आश्चर्य समुद्रमें गोता मारने लग जाते हैं. अधीर न होईयेगा लीजिये उस उत्तम गुणकों सुनकर अपने उत्सुक कर्ण युगलोंकों आनंदित कीजिये औ मुक्त कण्ठसें अनुमोदन कर अपनी कर्म राशीकों क्षय कीजिये.

सर्व परिसहोंमें उष्ण परिसह बड़ा तेज है जिसका उपचार भी दुःसाध्य है

वैशाख जेष्ठमें सूर्य अपने प्रबल कोप द्वारा ऐसा प्रचण्ड आताप फैलाता हुवा घूमता है कि जिस तेजकों देखनेसें प्राणीके नेत्रोंमेंसें जल वहने लग जाता है और उसमें स्पर्श करनेसें पेर जलने लगते हैं, शिर भुंजने लगता है, शरीरमें ज्वाला पैदा हो जाती है, हृदय फड़कने लगता है यहाँ तककि मनुष्यके प्रत्येक अवयवमें घवराहट्ट होने लगजाती है उस वख्त यदि किसी पुरुषकों कहा जायकि तुम आध घटा काउसग्ग कर खड़े रहो तो अव्वल तो उसका सहासही नहीं हो सकता कदाचित् सख्त दिल होकर खड़ा भी रहै तो मिण्टोंमें मूर्छित हो धरणी वश होना पडता है ऐसे उग्र आतापकों सहन करनेमें अगर वीररत्न हो तो आसपासमें यही एक महात्मा हो सकते है

सज्जनो ! आप दृढ़ हृदयी मरुस्थलके सुप्रसिद्ध ग्राम फलवर्द्धि इलाके योधपूरके पश्चिम भागीय उन्नत धोरे (धूलके ढेर) जो कि वैशाख जेष्ठमें अग्निमें भी जियादे गर्म हो जाते हैं जिसके सामने मामूली आदमी ठहरनेकों सर्वथा असमर्थ है ऐसे धगधगती हुई (झालोझाल) अग्नि सदृश उन धोरों पर मध्याह्नकालमें तीन २ चार २ घटे लेट जाया करते थे और कभी कायोत्सर्ग कर ध्यानाऽऽरूढ हो जाते थे किसी वख्त धर्मशालाके चादनी पर ही ऊःसह उष्ण पाषाणादि पर पूर्ववत् आतापना लेते थे इस वख्त दशों दिशाओं की आताप अपनी प्रबल शक्तिद्वारा टक्कर मारकर पस्त हिम्मत करनेका सहास करती किन्तु उन वीर पुरुषके सामने उसकी सर्वाऽऽशाए निष्फलताकों प्राप्त होतीं थीं अहाहा ! आपने इस प्रकार कइवार आतापना ग्रहण कर अपनी देहका उद्धार किया मे इस वातकों स्फुट तौरसें कह सकता हूँ कि जैन काम्युनिटी (जैन समाज) में आसपास वर्षोंमें आपके सदृश इस तौर पर उग्र तपस्वी न हुवाहोगा आप अपने शरीरकी कुछ भी परवाह नकर इस प्रकार तपाराधनमें कटिबद्ध रहे धन्य है ! आपका माधुर्य विश्व आदर्शनीय है

( ६ ) संलीनताः—अङ्गोपाङ्गकों संकुचित करनेमें सलग्नता हो उसें सलीनता कहते है

वे जितेन्द्रीय महानुभाव पञ्चेन्द्रीयके तेवीस विषयोंसें अनाकाङ्क्षित होकर

अपनी स्पर्शेन्द्रियादि पाँचोंका निग्रह करते थे अर्थात् उनकी विकारी दशाकों हटाकर उन्हे उत्तमाचरणोंमें संयोज्य करते थे.

( ७ ) प्रायश्चितः—किसी अतिचार या अनाचारकी आलोचना (शास्त्रानुसार दण्ड) लेना उसे प्रायश्चित कहते हैं.

महानुभावों ! प्रायश्चितका लेना कुछ सहल नहीं है कारण कि अपने दोषोंकों स्फुट करना बड़ा ही मुशिकल है वर्तमान जमानेकी गंधीली वायु इस प्रकार झपट मार रही है कि सैकड़ों मनुष्योंके खयाल विपरीत कर दोषोंकों जाहिर नहीं करने देती. और दिलमें यह विकल्प पैदा करती है कि मैं उत्तम कुलमें पैदा हुवा, मेरे घरानेकी कुलीनता जगज्जाहिर है मैं राजा, महाराजा अथवा शेठ, साहूकार पदवी कों धारण करनेवाला इस प्रकार विपुल वैभवका भोगवनेवाला मैं सर्वत्र सन्मानीय इज्जतकों धारण करनेवाला किस प्रकार अपने गुह्य पापोंकों प्रकट करूं अथवा—

मैं दृढ धर्मी कहलाने वाला, मै द्वादश व्रतोंकों अङ्गीकार करने वाला श्रावक होकर एवम विश्व प्रशंनीय पञ्च महा व्रतोंकों धारण करने वाला मुनिराज होकर किस प्रकार अपने गुप्त दोषोंकों जाहिर करूं मेरी शान्तता, मेरे शुध्द आचरण, मेरी यश, कीर्ति विश्व विस्तीर्ण हो रही है ऐसी अवस्थामें अपने छुपे हुवे पापोंकों हरगीज़ ज़ाहिर नहीं करना चाहिये. अगर लोग सुनेगे तो मुझे बेशरम, धर्मभ्रष्ट, आचार च्युत और पासथ्या ( धर्म्म मार्गमें रहकर क्रियाभ्रष्ट द्रव्यलिङ्गी अतिचार अनाचार सेवन करने वाला) आदि दुःसह्य अनेक कलङ्कोसें कलङ्कित करेंगें इस प्रकार अनेक दुष्ट विचार कर अपने पोशीदे आजावोंकों ( पापोंकों ) प्रकट नहीं करता है.

जो प्राणी अपने अतिचार, अनाचारोंकों गुप्त रखकर वग़ैर आलोचना मरण शरण हो जाता है वह **"रूपी राजाके सदृश"** अनेक भव रखड़ता है.

मुझे इस स्थलपर इतना अवश्य कहने दीजिये की जमाना बहुत नाजुक है लिहाज़ा सर्वके समक्ष अपने अप्रकट दोषोंकों जाहिर करना सर्व साधारणके

वास्ते दुःसाध्य है ऐसी व्यवस्थामें ऐसे महानुभावोंके सन्मुख अपने अतिचार, अनाचारोंको प्रकट कर आलोचना ग्रहण करना चाहिये कि जो कमसे कम इतने गुणोंसे अवश्य सुशोभित हों

१ अपने पूर्ण विश्वासी हों .. ..
२ धर्मके दृढ श्रद्धावन्त हों ..
३ कर्मराजकी विचित्रताके सुविज्ञ हों
४ घृणाके अभावी हों
५ अनादर करनेमें सदैव पराङ्मुख हों
६ उचित आलोचना दाता हों
७ संतोष जनक उपदेश देकर आत्माको आनंद देनेवाले हों

इस प्रकार गुणशील उपकारी पुरुषका योग मिलनेपर भी जो प्राणी अपने गुप्त पापोंको प्रकटकर आलोयणा ग्रहण नहीं करते हैं वे भव २ में असह्य दुःखमें दुःखित होते हैं

धन्य है! उन आत्मार्थियोंको कि जो बिलकुल विचार न कर तत्काल अपने गुरु महाराजसे सजा अख्तियार कर अपनी आत्माको निर्मल करते थे क्या ही उत्तम हो कि वर्तमानमें भी भव्यजनको वैसा सौभाग्य प्राप्त होजाय

वर्त्तमानके लिहाजसे भी उपरोक्त कथनानुसार योग मिलनेपर यदि दण्ड अङ्गीकार कर लें तो भी कुछ प्रशंसनीय है और यदि पूर्व महानुभावोंकी तरह निडर होकर अपने दोषोंको पबलिकमें जाहिरकर आलोचना ग्रहण करें तो विशेष प्रशंसनीय व शतशः धन्यवादके पात्र है हमारे गुरुदेव जिनकी कि हम व्याख्या कर रहे हैं उनकी प्रणाली इस प्रकार थीः—

वे विवेकी गुरुवर्य अपने अनुपयोगतामें लगे हुवे दोषोंका तत्काल ही गुरुजनों द्वारा शास्त्रानुकूल प्रायश्चित ग्रहण कर पवित्र दशाको अवगाहना करते थे—मैं इस स्थानपर यह बात अवश्य जाहिर करूंगा कि चारित्र रत्न के एक उत्कृष्ट आराधक थे कि जिससे अतिचार या अनाचार उन पर हुमला करनेका सर्वथा साहस नहीं कर सकते थे तदपि छाद्मस्थिकावस्थाके कारण उपरोक्त सम्बन्ध दर्शाया है

( ८ ) विनयः—विशिष्ट रूपसें मोक्ष मार्गमें ले जावे उसें विनय कहते हैं.

वे शान्त स्वरूप गुरुवर्य अपने गुरु महाराजका तथा रत्नादि मुनिवरोंका इस प्रकार विनय करते थे कि जैसें साक्षात् गौतमस्वामी वीर परमात्माका ही न करते हों. तथैव सिध्धान्तोंका बहु मानकर अपनी आत्माको विनय गुणमें रमण कराते थे.

महानुभावों ! पवित्र आगमोका फरमान है कि **"विणयमूलोधम्मो"** यानी धर्मका मूल विनय ही है जब तक प्राणी मानरूपी अजगरके मुखसें बाहर न निकल आवे तहां तक विनय गुणकी असिध्धता है. कहा है **"माणेविणय-विणासई"** मानसें विनय नाश होता है और विनयसें विद्या यावत् मोक्षके अनंत सुखोंसें वञ्चित रहना पड़ता है. इस लिये:—

हे चेतन ! तुझे मान करना उचित नहीं क्योंकी अहंकारसें नम्रता नहीं हो सकती और नम्रताके बग़ैर विद्या नहीं पा सकता क्योंकी मुलायमता अगर होगी तो किसी प्रकार गुरु महाराजको खुशकर ज्ञान संपादन कर सकता है और विद्याके बिधुन समकित हाँसिल नहीं कर सकता चूंके अगर ज्ञानरूपी प्रकाश होगा तो मिथ्यात्वरूप अन्धकार नष्ट कर सकता है एवम् समकितके बग़ैर यथाख्यात चारित्र नहीं मिल सकता कारण की वीतराग देवके पवित्र वचनो पर दृढ़ श्रध्धा हुए बग़ैर चारित्र अङ्गीकार नहीं होसकता तथा चारित्रके विना मुक्ति नहीं हो सकती क्यों कि जिनेश्वर भगवान् ने जैसा फरमान किया है वैसा ही आचरण करे तब अष्ट कर्म विध्वंस कर परमद पासकता है ऐसे मुक्तिके शस्वत अनंत सुख तूँ बग़ैर इन रत्नोंके हाँसिल किये कौन युक्तिसें संप्राप्त कर सकता है ? कहनेका तात्पर्य यह है कि बग़ैर विनयादि गुणके जीव निर्वाण पदको कदापि संपादन नहीं कर सकता है.

पवित्र जैन सिध्धान्तोंमें श्री उत्तराध्ययनके प्रथमाध्ययनमें तथा दशवैकालिकके नौमें अध्ययनादिमें किस प्रकार विनय गुणकी गुणाऽऽवली गाई गई है की जिसे सुनने मात्रसें प्राणीके रोंम २ हर्ष रस सें भर जाते हैं तो अनुभवके आस्वादनका कथन ही क्या ? विनयाऽनुभवी महात्मा तो सदैव दिव्य आनंद लहरोंमे लहलहाति हैं.

मेरे प्यारे पठुताभिलाषियो ! शिष्य वर्गको भवतारक गुरु महाराजके साथ बैठनेमें, ऊठनेमें, चलनेमें, सोनेमें, खाने, पीनेमें, आवागमनमें और सामान्य सम्भाषणमें तथैव प्रत्येक प्रार्थनामें एव पठनादि अवस्थाओंमें और उनके फरमानको शिरोधार करनादि अनेक क्रियाओंमें विनय मांचवकर अपने मानवभवको सफल करना सुखकारी है यह विषय बहुत गहरा व उच्च होनेपर भी गुरु महाराजके चरणोंका अवलम्बनकर 'गुरू शिष्यका अपूर्व दृश्य" इस हेडिंगवाले विषयमें विनय पुष्पोंको उतप्रोत कर किञ्चित् रूपए पाठकोंके अभिमुख प्रकाशित करता हूँ

## ( गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य )

अतीव मनोहर गुर्जर देशमें सिद्धपुरपट्टन नामक एक विशाल शहर है वहाँपर अनेक जिन मन्दिर उन्नत ध्वजा, कलश और तोरणादि करके सुशोभित है कितने ही जैन धर्मानुरागी श्रावक वर्ग निवास करते है यह शहर किसी जमानेमें साक्षाद् इन्द्रपुरीसा मनोहर प्रतीत होता था

एक समयका जिक्र है कि अनेक पवित्र मुनि वर्गसे सुशोभित एक दिव्य ज्ञानधारी आचार्य महाराज निवास करते थे उनके बहुतसे शिष्य सुविनीत होनेपर भी एक विनयशील नामक विद्वान् शिष्य अत्यन्त नम्र गुणसे विभूषित था; जरा देखिये उसके विनयकी तर्फ लक्ष दीजियेः—

वह महानुभाव अपना आसन ऐसे स्थानपर रखता कि गुरु महाराजसे न तो अति निकट और न अति दूर था किन्तु माध्यस्थानमें गुरुवर्यकी दृष्टिमें निवास करता था

प्रातः कालमें ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर जाग्रित होते ही प्रथम ही प्रथम गुरु महाराजकी विधि पूर्वक सुखशाता पूछ अपनी आवश्यक क्रियामें प्रवृत्त हो जाता पश्चात् ठीक प्रकाश होनेपर आदेशको पाकर गुरु महाराजके वस्त्रादिकोंकी जयणा युक्त प्रतिलेखन कर अपनी उपधीकी पडिलेहण करता तद-

नन्तर गुरुमहाराजके समीपमें आकर नम्रता पूर्वक स्वाध्याय कियाकर सविधि वंदना नमस्कार करनेके पीछे यथाशक्ति प्रत्याख्यान अङ्गीकार करता. जिस वख्त वह वंदना करता था शरीरके प्रत्येक अङ्गको इस प्रकार मोड़ता था कि मानो उसमेंसे साक्षाद् विनयरस झर रहा हो.

पश्चात् दो पात्रोंमें जल भरकर गुरु महाराजके साथ स्थण्डिल भूमि जाता नियमाऽनुसार इस कार्यमें निवृत्त होकर वापिस उपाश्रयमें प्रवेश होते ही गुरु महाराजके समीप इरियावही (गमनागमनकी आलोचना विधि) प्रतिक्रम कर आज्ञानुसार अपने आसनको ग्रहण करता हुवा स्वाध्यायमें संलग्न हो जाता.

अहारपानीके समय गुरु महाराजके निकट आकर दोनो कर जोड़ मस्तक नीचाकर यह प्रार्थना करता कि:—हे स्वामिन्! यदि आप सर्व कार्यसें निवृत्त हों अर्थात् कोई कार्यमें बाधा न पहुँचती हो तो भोजनार्थ पधारनेका अनुग्रह फरमाइये गौचरी हाजिर है समय आने पहुँचा सर्व मुनि मण्डल आपकी राह देख रहा है सुनतेही इन मधुर वचनोंके वे पूज्यआचार्य महाराज तत्काल उस स्थानसें उठकर गौचरी गृहमें पहुँचे सर्व मुनिराजोंने सत्कार पूर्वक स्थानाऽऽपन्न किये सर्वसें आदिमें गुरुवर्यके रुचिकर भोजन उनके पात्रमें प्रक्षेप किया तदनन्तर नियमानुकूल सर्व मुनियोंको समर्पण किया. अव्वलही अव्वल सर्व मुनिराजोंने गुरुमहाराजकी भावना भाई बाद परस्पर भावना भाकर गुरुवर्य की आज्ञानुसार सानंद आहार पानी किया, पश्चात् सर्व महानुभाव अपने२ कार्यमें प्रवृत्त हुवे.

मध्याह्नकालमें वह सुविनीत शिष्य पठनार्थ गुरु महाराजके सेवामेंसमुपस्थित हुवा यथा विधि वंदना नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे भवतारक! यह आपका चरणोपासक सेवक हाजिर है अनुकम्पया वांचना प्रदान करनेका अनुग्रह फरमावें.

सुनतेहीं इन कोमल वचनोंके उपगारी गुरु महाराजने आसनपर बैठनेकी इजाजत बक्षीस की.

इस अवसरमें जैसे चातक, अपना मुख पसारकर मेघकी उत्कट इच्छा करता है इसही तरह वह शिष्य कभी गोड्डाघाऽऽसन (दोनों जानु खड़े हुवे) कभी उष्ट्राऽऽसन (दोनो जानु पृथ्वी पर लगे हुवे) और कभी इन्द्राऽऽसन (बाया घुटना खडा हुवा.) इत्यादि किसी भी विनय आसनको ग्रहणकर दस्त ब दस्त मस्तकको झुकाया हुवा यह भावना भाताथा कि, कब गुरु महाराजके मुखकमलमें से अमृत वर्षा हो कि मै उसें पानकर अपने मानव-भवको कृतार्थ करूं

इधर-गुरु महाराज-अपनी अवर्णीय उपकार-बुद्धिसें यह विचार रहे थे कि मै शीघ्र ही जिन आगमका सुधारस पानकराकर इस की तीव्र पिपासा को शमन कर दू—

अहाहा! धन्य हो! गुरु शिष्य हों तो ऐसेही हों ऐसेही परम दयालु गुरु महाराज व ऐसाही सुविनीत शिष्य यह वही मशल हुई कि मानो मोतियोंके हारमें रत्न जडना है इस स्थलपर यदि हम वीर परमात्मा व गौतमस्वामीकी घटना करें तो असंघटित न होगी मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि ऐसे अनुमोदनीय सम्बन्धमें अवश्य ही साफल्यता हो सकती है

कृपालु गुरु महाराजने पढाना आरम्भ किया प्रत्येक विषयको इस प्रकार समझाते थे कि उस शिष्यका आनंद मस्तक घूमने लग जाताथा इस वख्तका आनद अनुभवि लोगही जान सकते है

पढते २ एक स्थलपर ऐसा प्रकरण आया कि जहांतक प्राणी मर्यादा न करले तहां तक चतुर्दश लोकके समस्त पदार्थोंकी आश्रव क्रियाका प्रायश्चित लगता है यह बात पढते ही गुरु मुखसें विशेष खुलासेके लिये बडे हो नम्रता पूर्वक दरियाफ्त करता है

तत्वाभिलापियों! उन दोनो महानुभावोंके इस प्रकार परस्पर प्रश्नोत्तर हुवे जरा ध्यान पूर्वक पढियेगा

शिष्यः—हे विशालज्ञानी! जिनेश्वर कथित जितनेही विषय हैं वे

अक्षरशः सत्य हैं और उनपर मुझे पूर्ण श्रद्धा है. तथैव आगमाऽनुयायी पूर्वाचार्योंके पवित्र वचनोपर भी मुझे दृढ़ श्रद्धा है एवं आप भवोद्धारकके वचन मेरे सदैव शिरोधार हैं किन्तु अल्पज्ञता वश मुझे यह ठीक समझमें नहीं आता कि पदार्थोंके बगैर भोगोपभोग किये ही क्रियारूप प्रायश्चित अपना वज्र कैसे पटकता है क्या कृपाऽर्णव बगेर चोरी किये चोरकों कभी सज़ा मिलनेकी संभावना हो सकती है? अनुकम्पया मुझ अज्ञानीके भ्रमकों उन्मूल कर अपनी शीतलछायामें शरण दीजियेगा.

गुरुमहाराजः—भोमुविवेकी! तुमारा कथन यथार्थ है इसही प्रकार सम्यक् प्रश्न करने परही प्राणी बुद्धिवान हो सकता है. देखो यह दृष्टान्त अपने लक्षमें लक्षित करो.

किसी एक आलीसान मकानमें एक क्रोड़पति अपने द्रव्यकी रक्षा करता हुवा सानंद निवास करता है इस अवस्थामें जबतक उसके मकानके चारों दरवज्जे खुल्ले हुवे हैं तबतक चौरोंके आनेका धोका है या नहीं? शिष्यने कहा अवश्य है. बसतो इसही प्रकार जबतक प्रत्याख्यान (नियम) नहीं है किसी न किसी दिन वे पदार्थ अवश्य भोगोपभोगमें आ जावेगी वास्ते उसकी क्रियाका आज़ाब (पाप) लगना मुनासिब है.

शिष्यः—सुनते ही इस उत्तरके प्रार्थना करता है कि हे कृपावतार! चाहे चौरोंके आनेकी देहशत स्वतन्त्रता पूर्वक क्यों न विहार करे किन्तु जबतक चौर माल न चुरा जाँय उसें कोई प्रकारकी हानि नहीं हो सकती इसही तरह जब तक पदार्थोंकों सेवन न की जाय उसें पाप लगना समुचित नहीं. अहो स्वामी! क्याही आश्चर्यका प्रस्ताव है कि जिस पदार्थकों कभी हाथसें स्पर्श नहीं, नेत्रोंसे देखी नहीं, कर्णोंसे सुनी नहीं. ग्रन्थोंमें पढ़ी नहीं, स्वप्नमें अनुभवि नहीं उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादिसें सर्वथा अनभिज्ञ होनेपर भी दोषका प्राप्त होना स्वीकृत श्रेणीमें कैसे संघटित हो सकेगा. दयाकर कोई अन्य दृष्टान्त प्रदर्शित की जियेगा. जिससे यह अनुचर संतोष रस पानकर आनंदित हो जाय.

गुरुमहाराजः—शिष्यके ऐसे मुलायम शब्द श्रवणकर दिलमें विचारते

हैं कि यह दृष्टान्त बेशक संतोष कामिल है किन्तु कालके प्रभावसें इस वख्त इसके समझमें नहीं आता अस्तु बिलफेल द्वितीय दृष्टान्त देकर इसें प्रमुदित करना चाहिये पश्चात् वह दृष्टान्त भी इसके मनोमन्दिरमें संस्थापित कर देंगे. यह सोच आप फरमाते हैंः—हे आज्ञाऽनुयायी! तूँ कोई प्रकारका खेद मत कर वह दृष्टान्त भी क्रमशः तेरे समझमें आजावेगा ले अभी यह द्वितीय दृष्टान्त ध्यान पूर्वक श्रवण कर

एक पुरुष अपने शरीर पर तैल मर्दन कर वस्त्र वर्जित बैठा-हुवा है क्या उसके वदनमें रज संलग्न होगी?

शिष्यः—कृपानिधे! निसंदेह लगेगी.

गुरु महाराजः—क्या वह इच्छा करता है कि मुझे रज लगे?

शिष्यः—दीनबधो! हरगीज नहीं

गुरु महाराजः—तो क्योंकर उसें वह रज लगी!

शिष्यः—हे नाथ! तैलकी स्निग्धताका ही यह स्वभाव है कि स्वतः रज आलगती है

गुरुमहाराजः—अगर वह वस्त्र परिधान करले तो शरीरके रज लग सकती है? या नहीं

शिष्यः—दयानिधे! कदापि नहीं

गुरुमहाराजः—प्यारे विनयशील! जैसे विना प्रयोगही तैलकी चिकट रजको आकर्षित कर लेती है इसही तरह कषायोंका स्वभाव सचिकण है इससे वगैर इच्छाही अव्रत (आश्रव) क्रियारूप रज आकर लिपट जाती है और व्रत (प्रत्याख्यान-नियम) रूप वस्त्र पहननेसे क्रियारूप रजका निरोध

हो जाता है हां! इतना अवश्य है की संजोगके सदृश तीव्र बंधन नहीं हो सकता. सुगुणी वत्स! क्या कुछ समझा?

शिष्य—हे धर्मावतार! आपकी अतुल महरसें खूबी समझ गया.

गुरुमहाराजः—देख अब पूर्व कथित वही दृष्टान्त तुझे हम यथावत् घटित कर तेरे हृदयाऽङ्कित कर देते हैं.

शिष्यः—हे दयासागर! कृपाकर फरमाईयेगा.

गुरुमहाराजः—जबतक दरवज्जे खुल्ले थे शेठके दिलमें क्या था!

शिष्यः—स्वामिन्! चिन्ता.

गुरुमहाराजः—अगर चौर द्रव्य ले जाते तो क्या होता?

शिष्यः—करुणाऽऽलय! विशेष चिन्ता.

गुरुमहाराजः—मालके न जानेपर केवल देसतसें ही रात्रीभर निद्रा नहीं आती और हरदम बेचेनी बनी रहती है तथा द्रव्य ले जानेके बाद बहुत काल तक विशेष बेचैनी रहती है इसही तरह वस्तुओंके सेवन करनेसे तीव्र बंधके हेतु अधिक भव रखड़ना पड़ते हैं और आश्रवकी क्रियासें क्षिप्रही छुटकारा होनेकी संभावना है.

शिष्यः—हे तरणतारण! आपकी विचक्षण बुद्धिके सन्मुख बृहस्पति भी गश खाकर क्षिति तल हो जाता है धन्य है! आपकी अनंत पुण्याईकों और शुक्रियादा है आपके निर्मल क्षयोपशमकों एवं कोटिशः धन्य है आपके श्रमणाऽवतारकों कि इस प्रकार बाल जोवोंपर उपकारक कृतकृत्य कर रहे हैं यह पृथ्वी आप सदृश मुनि रत्नोसें ही रत्नवती कहलाती है. हे जगदाधार! आप हमेशां जयवन्ता वर्तो ताके यह वीर शासनरूपी मार्तण्ड अपने दिव्य प्रकाशसें समस्त पृथ्वीतलकों प्रकाशित करता है इत्यादि अनेक स्तवना कर अपने जन्मकों कृतार्थ किया.

तत्पश्चात् दोनो हस्त जोड यह विज्ञप्ति करता है कि हे दीननाथ ! बहुत समय हो गया है पिपासा पीडित कर रही होगी यदि आज्ञाहो तो जलपात्र हाजिर करूं ? गुरुमहाराजने फरमाया "यथासुखं तथैवकुरु" यानी जैसा सुख हो वैसाही करो अर्थात् सानद लेआओ आज्ञा पाते ही तत्काल उस स्थानसें उठकर निर्मल अचित्त जल जहॉ पर रक्खा है वहा पर पहूँचा और उत्तम वस्त्रसें छानकर एक स्वच्छ पात्र जलसें आपूरित कर लिया अब वह वस्त्रसें ढका हुवा ( उड़ता हुवा धूल या कोई जन्तु उसमें न गिर जाय इसलिये वस्त्रमें आच्छादन कियाथा ) जलपात्र हस्तकमलमें स्थापनकर गुरुमहाराजकी सेवामें हाजिर हुवा और कुछ नीचा झुककर दोनो करकमल गुरुमहाराजके अभिमुख करता हुवा यह प्रार्थना करता है कि दयानिधे ! लीजिये जलपान (वावरना) कीजिये गुरुवर्यने चटसें पात्र ग्रहण किया और जल वावरकर अपनी प्यासकों शान्त की; और वह पात्र वापिस शिष्यकों बक्षीस कर दिया

तदनन्तर कुछ टाइम औ पढकर गुरुमहाराजसें प्रार्थना की कि हे करुणा-रस भण्डार ! पाठन समयने अपनी अन्तिमाऽवस्थाकों ग्रहण कर लिया है इसलिये दयाकर मुझे अपने आसनपर जानेकी आज्ञा बक्षीस करें गुरुमहाराजने फरमाया "अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबन्धकरेह" अर्थात् देवताओंको भी वल्लभ ऐसे हे शिष्य ! जैसा तुमें सुखहो अविलम्बतया सानद करो गुरु आज्ञाकों शिरोधार कर शिष्य अपने आसनकों ग्रहण करता हुवा अन्यपठन पाठनादि क्रियाओंमें संप्राप्त हुवा

थोडीही देर बाद क्या देखता है कि गुरुमहाराज मात्रा ( लघुशङ्का ) के वास्ते जानेका विचार कर रहें हैं अङ्गिताकारसें मानसिक परिणामोंको समझ सर्व कार्य अलग रख शीघ्रही टोपसीमें जल लेकर गुरुमहाराजके पीछे हो-लिया मात्रागृहमें पहूँचते ही मात्रिये ( पालसिया ) कों पूंजनीसें पूंज जयणा पूर्वक रख दिया व पासमें ही टोपसी भी धरदी—गुरुमहाराज अपनी बाधाकों निवृत्त कर अपने स्थानपर पधार गये—शिष्य एक हस्तमें मात्रिया और द्वितीय हस्तमें जलकी टोपसी लेकर बाहिर निकला और जहाँ पर निर्वद्य स्थान है वहाँ पर दृष्टि परमार्जन कर उसे बिखेर दिया और जलसें पालसिया साफ

कर जयणा पूर्वक उसही स्थानपर रख दिया और गुरुमहाराजके सन्मुख इरियावही ( पाप अलोचन क्रिया ) कर पुनरपि अपने कार्यमें प्रवृत्त हुवा.

अहाहा! सदुपयोगी शिष्य हो तो ऐसाही हो जिसे अङ्गुली निर्देश तक करनेकी आवश्यकता नहीं हुई तो वैखरी भाषा (जिव्हासें प्रकट तया बोलना) द्वारा कहनेका तो कथन ही क्या ? जो बुध्धिमान व कुलवान हैं और जिसने गुरुकुल सेवन किया हुवा है वे बाह्य चेष्टाओंसें ही मानसिक परिणामोंका अनुमान कर लेते हैं नीतीकारने भी हृदयस्थ परिणाम जाननेके इसप्रकार लक्षण दिखाए हैः—

## ( श्लोक. )

आकारै रिङ्गितै गत्या । चेष्टया भाषणेन च ॥
नेत्र वक्त्रविकारेण । लक्ष्यते ऽन्तर्गतं मनः ॥ १ ॥

अर्थः—आकार, इङ्गित, गति, अङ्ग चेष्टा, वचन, चक्षुविकार, और मुखविकार. इन सप्त लक्षणोंसे मानसिक परिणाम जाने जाते हैं.

विवेचनः—१ आकारः—अङ्गाऽऽकृती. यानी जैसें दक्षीण हस्त पर मस्तक को नीचा झुकाया हुवा देखकर यह ज्ञात होना कि किसी चिन्तासमुद्रमें डूब रहे हैं. उसें आकार कहते हैं.

२ इङ्गितः—मनविकार यानी उपदेश अन्यको देना है और कहते अन्यको हैं जैसें भाईने कोई वस्तु गुमा दी उसका उसें न कहते हुवे पुत्रसें कहते हैं कि तूँ बड़ा निरोपयोगी है घरका कुछ भी फिक्र नहीं कभी कुछ कभी कुछ नुकशान कर देता है ऐसे घरका निभाव किस तरह हो सकेगा इत्यादि उपदेश देकर भ्राताको जताया. बंधु भी यह समझ गए कि कहते इसको हैं किन्तु नाराजगी मुझपर है इस प्रकार विदित होना उसे इङ्गित कहते हैंः—

३ गतिः—चाल यानी किसीको मंद चालमें चलते हुवे यह पहिचानना कि इसके शरीरमें कुछ व्याधि है या शारीरिक शक्ति हीन हो रहा है उसे गति कहते है

४ चेष्टाः—अङ्ग विकार यानी जैसें अङ्गुलीसे ओष्टोंको मलते हुवे देखकर प्यासका मालुम होना उसें चेष्टा कहते हैं

५ भाषण.—वचन यानि शब्दश्रेणी अन्य है और अर्थ कुछ अन्य है यथा अहा! तुमारे जूआका व्यसन बहोही प्रशंसनीय है सारा जगत तारीफ करता है धन्य है! तुम्हे वारंवार धन्य है' इस प्रकारके कथनसें शब्दार्थाऽनुसार तो श्लाघनीय ही प्रतीत होता है किन्तु इसमें व्यङ्ग निंदाका निकलता है गरज़की सामान्य शब्दोंमें से व्यङ्गर्यया भन्यर्थ जानना उसे भाषण कहते हैं

६ नेत्रविकारः—चक्षु विकार यानी जिस तरह नेत्रोंको तेज (रक्त) देख यह जानना की इस वख्त कुपित हो रहे हैं इसें नेत्र विकार कहते हैं.

७ वक्रविकारः—मुख विकार यानी किसी वातको सुनकर मुख बिगाड देना उससें यह जाहीर होना कि इस विषयसें इन्हे पूर्ण ग्लानी है इसें वक्र विकार कहते हैं

शायकालके प्रतिलेहनका समय आते ही अपने स्वाध्यायमें फारिक होकर गुरु महाराजकी व अपने वस्त्रोंकी पडिलेहणादि क्रिया प्रातःकालाऽनुसार की पश्चात् षडावश्यक सानंद आराधन किये

प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् गुरु सेवामें तत्पर होकर यह प्रार्थना करता है कि हे जगतारक! यह चरणोपासक आपके पदपङ्कजोंकी सेवाकर अपने पापोंको पवित्र करनेकी तीव्र ऽभिलाषा कर रहा है अनुकम्पया आज्ञा बक्षीस करनेका अनुग्रह फरमावें। सुनतेही इन मधुर वचनोंके गुरु महाराजने सानंद आज्ञा बक्षीस की अब वह सुविनीत शिष्य हृदयमें उमङ्ग सहोते उनकी रक्षी है भक्तिमें तल्लीन हुवा।

उसके हस्तकमल ऐसे मुलायम थे कि अकतूलकी रूईभी शर्माती थी, गुरु महाराजके चरणकमलोंकी इस ढंगसे सेवा करता था कि उनका प्रत्येक अवयव खिल उठता था इस प्रकार सेवामें आसक्त होकर दिव्य द्रव्यानुयोगके गहन विषयकी वार्तालाप करता हुवा सुख पूर्वक काल निर्गमन करता है अखीरमें गुरु महाराजके पवित्र चरणोंमें मस्तक नमन कर दोनो हाथ जोड़ विज्ञप्ति करता है कि हे नाथ! वहुत दिनोंसे यह दास एक आवश्यकीय विनंती करनेकी अभिष्टता कर रहा है किन्तु भाग्य हीनतासें ऐसा कोई सुअवसर न मिला कि जिससें मै अपनी इच्छा पूर्ण कर सका आज अनंत पुण्याईका उदय है कि मुझे वह सौभाग्य प्राप्त हुवा यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूं. गुरुमहाराजने फरमाया निशंकतया सानंद प्रकाशित करो. हुकुम पातेही "तहत्तस्वामी" कहकर वह परहितैषी विनयशील प्रार्थना करता है:—

पूज्यपाद गुरुवर्य! अपनी पवित्र समुदायमें कितनेक अविवेकी साधु साध्वी ज्ञानद्रव्य तथा साधारण द्रव्य अपनी जिम्मेदारीमें रखते प्रतीत हो रहे हैं और इसही वजहसें कितनेक सेठ साहूकारोंके यहां उनके नामके खाते पड़े हुवे हैं ऐसा भी सुना जाता है इस प्रकार प्रवृत्ती विगड़ते हुवे वे खास परिग्रह धारी होजांयगे ऐसी सम्भावना है इसलिये हे भवोध्धारक! इस दुर्गति दाता दुष्ट प्रणालीको शीघ्र ही उन्मूल कीजियेगा.

गुरुमहाराजः—हे विनयशील! तेरी परोपकारी प्रशंसनीय बुध्धिके प्रति हम सहानुभूती प्रदर्शित करते हुवे यह सुचना करते हैं कि वे साधु, साध्वी किस प्रकार द्रव्यसें संसर्ग रखते हैं इसें स्फुट तया प्रकाशित कर.

शिष्यः—हे दयाऽर्णव! आप सर्व वेत्ता हैं आपके सन्मुख विस्तीर्णरूप सें कथन करना मेरी नादानी है किन्तु तदपि आपकी आज्ञाको शिरोधार करता हुवा सविनय किञ्चित् प्रार्थना करता हूं:—

कइ एक ज्ञानके लिये जैसें:—पाठशाला, लायब्रेरी, ग्रन्थ छपवाना, ग्रन्थ लिखवाना, ग्रन्थ खरीदना वगेरा तथा साधारणके वास्ते उपदेश देकर रुपे इखठे करवाते हैं उनका हिसाबादि सर्व अपनी निगरानीमें रखते हैं तथा उनकी

आज्ञा वगैर एक पाड भी इधर उधर नहीं हो सकती और कई एक लोग जिस वख्त श्रावक श्राविकाओंको दीक्षा देते हैं उस वख्त उनका जितना बचा हुवा द्रव्य हो उसे ज्ञान खाते या साधारण खातेमें किसी मौजीज सख्शके यहाँ अमानत ( Deposit ) रखवा देते हैं उस द्रव्यको अपनी इच्छाऽनुकूल खर्च करवाते हैं उनके आज्ञा वगैर कोई भी किसी स्थानमें नहीं लगा सकता इस प्रकार सैंकडों रूपे डिपाजिट रहे हुवे है जिसका यथावत् सिबूत पहुँचानेको मैं सदैव कटिबद्ध हूं हे नाथ! सुज्ञेषुकिमधिकम्.

यह वज्र धावना विषय श्रवणकर गुरुमहाराज अति दिलगीर हुवे और पृथक् २ स्थानोंमें निवास किये हुवे अपने समस्त साधु, साध्वीको एकत्रित होनेकी आज्ञा प्रकाशित की

शिष्यः—"**प्रमाणवचन**" कहकर प्रार्थना करता है कि हे स्वामिन्! संथारा पोरसी (शयनके पहिलेकी क्रिया) का समय आन पहुँचा है

गुरुमहाराजः—राई संथारा पोरसी भणाइ पढकर विश्राम करो

आज्ञा पाते ही शिष्य गुरुमहाराजके साथ संथारा पोरसी पढकर अपनी पथारी ( Bedding ) ऐसे स्थानपर की कि जो गुरुमहाराजसे ऊंची और समान न थी किन्तु नीचे स्थानपर शयन करता जहाँ कि गुरुवर्यकी किसी प्रकार आशातना नहीं हो सके अब यह शिष्य अपने आसनपर बैठा हुवा यह राह देख रहा है कि गुरुमहाराज शीघ्रही शयन करें तो मैं भी सो जाऊं गुरुमहाराज कुछ समयके बाद अपनी ध्यान क्रियासे निवृत्त होकर निद्रावश हो गए शिष्य गुरु महाराजको शयन किये देख शीघ्रही अपनी पथारी पर जाकर विश्रामित हुवा

द्वितीय दिन विनयवान शिष्यने हुकुम पाकर नियमाऽनुकूल सर्व स्थानो पर आमन्त्रण भेज दिये जिसके जरिये समुदायके कुलश्रमण, आर्या इस विद्यानपट्टन शहरमें समाप्त हुवे

इस अवस्थामें पूज्य उपकारी आचार्य महाराजने सकल शिष्य, शिष्याओंको मध्याह्नकालमें एक बजे हाजिर होनेका हुकुम बक्षीस किया सर्व लोगोंने शिरोधार कर नियमित समयपर चरण सरोजमें प्रवेश किया.

सज्जनो ! यह श्रमण सम्मेलन खानगी (Private) ही था चूँके शुद्ध व्यवहार यह उपदेश करता है कि किसीके सत्कारमें त्रुटी न पहुंचते हुवे यदि उसका भला हो जाय तो उत्तम है.

प्रथम ही प्रथम विनयशीलने सर्व सम्मेलनकों यह विज्ञप्ति कीः—

आप सर्व महानुभाव दूर २ देशान्तरोंसें अनेक कष्ट सहन कर गुरुसेवामें पधारे हैं इसका मैं शतसः धन्यवाद समर्पण करता हुवा यह निवेदन करता हूँ कि अपने परमोपकारी विशाल ज्ञानी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुमहाराजने एक अनुपम लाभके निमित्त आप सर्व सद्भावानकों उत्तम सौभाग्य प्राप्त करवाया है इससें आप अपना अहोभाग्य समझते हुवे आचार्यश्रीके पवित्र वचन श्रवण कर अपनी आत्माका कल्याण कीजियेगा. तदनन्तर—

गुरुमहाराजः—अहो मेरे समस्त गुणानुपासकों ! यह जिनेश्वर प्रभुका पवित्र वश अनंत पुण्याईसें संप्राप्त हुवा है जो प्राणी निर्मलतासें पालन करता है वह अचिरात् मोक्ष पदके अनंत सुखोंकों अनुभव करता है और जो सक्ष अपने महा व्रतोंमें दोष लगाकर पवित्र चारित्रकों मलीन करता है वह आज्ञा विराधक भव २ में असह्य दुःखसें दग्ध होता है. आप महानुभाव इतना फरमांकर शान्तरसमें विश्रामित हुवे.

यह शब्द सुनतेही सर्व सम्मेलन चौंक पड़ा और दीनमुख होकर दोनो कर जोड़ मस्तक नमन करता हुवा यह प्रार्थना करता हैः—

सम्मेलनः—हे दयासागर ! हम अज्ञानियोंकों आपका अल्पाक्षरी बहूर्थीय सदुपदेश स्फुटतया समझमें नहीं आया, हमारा हृदय भीतरसें तड़फ रहा है कृपया खुलाशा तौरपर फरमाईयेगा.

गुरु महाराजः—महानुभावों! हमने यह श्रवण किया है कि पाठशालादि समस्त तथा दीक्षा अवसरमें ज्ञान खाते तथा साधारण खाते किती साहूकारके यहाँ द्रव्य अमानत रखाते हो पश्चात् अपनी इच्छानुसार खर्च करवाते हो; यह सत्य है क्या? इत्यादि विनयशील शिष्यने जो कुछ प्रार्थनाकीथी उसें खुलाशा तौर पर फरमान किया

सम्मेलनः—"दीन हीन होकर धूजता हुवा यह प्रार्थना करताहै" हे प्राणाऽऽधार! धर्मावतार!! भवोध्धारक कृपावतार!!! हम मुँह दिखलाने योग्य नही, हम वचन उच्चारण करने लायक नहीं, हमें चुल्लूभर पानीमें डूब मरना बहेतर है आप हमारे मनोगत भावको जाननेवाले तरण तारण नाथ है बस इतनेमे ही सर्व समझ लीजियेगा

गुरु महाराजः—अहो देवानुप्रिय! तुमारे दीन वचनो पर मुझे बडी ही दया आती है लेओ जरा दो शब्द सुनकर अपनी आत्माकों पवित्र करो

इस दुनियामे मुख्य दो वस्तु ही महा अनर्थकारी है एक कनक द्वितीय कामनी जिसने इन दोनोका संसर्ग मात्र छोड दिया है वे उत्तमोत्तम आचरण कर सकते है, वीर शासनका विजय करनेमें सामर्थ्य होसकते हैं तथा सासारिक झगडोसें तटस्थ होकर अपनी आत्माका कल्याण कर सकते है यद्यपि तुमलोग उसें अपने पासमें नहीं रखने न अपने खानपानमें लाते हो किन्तु उसका संसर्ग मात्रही जगत निन्दनीय व विश्व तिरसकरणीय है इसलिये मेरे प्यारे आत्मार्थियों! इस दुष्ट रिवाजकों नासिका मलवत् त्यागकर पट्साख द्वार प्रत्याख्यान अङ्गीकार अपने मानव भवकों कृतार्थ करो

सम्मेलनः—"इस रिवाजकों आचरण करनेवाले समस्त साधु साध्वी" दोनो करजोड मस्तक नमन करते हुवे यह प्रार्थना करते हैः—हे दीनानाथ! हम सर्व लोग आपकी पवित्र आज्ञाकों शिरोधार कर सहर्ष प्रतिज्ञा अङ्गीकार नेकों तत्पर हैं

गुरुमहाराजः—अपनी अगाध कृपाद्वारा इस प्रकार प्रत्याख्यान फरमाते हैः—

## ( प्रत्याख्यान )

अरिहन्तसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहूसक्खियं,
देवसक्खियं गुरुसक्खियं, अप्पसक्खियं धारणा
प्रमाणे अन्नथणा भोगेणं, सहस्सागारेणं,
महत्तरागारेणं, सव्वसम्माहिवत्तियागारेणं वोसीरई.

सम्मेलनः—वोसिरामि.

गुरु महाराजः—महानुभावों ! इस प्रत्याख्यानकी भाणोंसें भी अधिक यत्ना करना इन षट् साखोंमें सें एक भी साख तोड़नेवाला जीव अनेक भव भ्रमण करता है तो समस्त उल्लङ्घन करनेवालेका कथन ही क्या ? इसलिये दृढ़ श्रद्धायुक्त पालनकर अपने जीवनकों सार्थक करना.

सम्मेलनः—हे करुणानिधे ! जो प्राणी अपने गुरुमहाराजसें विपरीत चलता है वह जिनेश्वरकी आज्ञाका विराधक समझा जाता है और इस भवमें दुराचारोंसे कलङ्कित होकर निन्दनीय श्रेणीमे शुमार किया जाता है तथा पर भवमें दुर्गतिमें जाकर दुःसह्य दुःखोंसें दग्ध होता है. हे तीर्थस्वरूप ! आपकी अकुशः अनुज्ञा हमारे सदैव शिरोधार है आपसदृश भवोद्धारक गुरुमहाराजका शरण भवोभव होना यही आन्तरिक भावना है. हे अकारण बन्धो ! ऐसे घोरातिघोर प्रायश्चितसें विमुक्त करना आपहीके हस्तगत है.

गुरुमहाराजः—ज्ञानियोंका यह फरमान है कि त्रैलोक्यमें गुरुमहाराजके सदृश कोई उपकारी नहीं है इसलिये जहाँ तक मुमकीन हो तहां तक उनकी भक्तिमें लीन होना चाहिये क्यों ? तुम लोगोंकी भक्ति बढ़ती जायगी सों ? अपूर्व गुण प्रकट होते जांयगे ज्ञान, तत्व और सकल श्रेष्ठता गुरु सेवा सें ही प्राप्त हो सकती है. तुमारे भद्रिकताकी तर्फ हम सहानुभूति दिखलाते हैं कि तुम लोग बड़े ही सुयोग्यहो कि दुर्व्यवहारकों नासिका मलवत् त्यागकर गुरु आज्ञाको प्रेम पूर्वक शिरोधार किया.

सम्मेलनः—हे गुणनिधे! हम तुच्छ बुद्धिधारोंकी जो आपने प्रशंसा की यह केवल आपके बड़प्पनका ही परिचय है; हम किसी प्रकार योग्य नहीं है किन्तु सच है! गुणी पुरुष गुणके ही ग्राहक होते हैं

गुरुमहाराजः—प्यारे आत्मार्थियों! गुरुदेव सदैव तुमारा कल्याण करें

इस प्रकार विश्व प्रशंनीय विजयकों प्राप्त हुवे और सर्व साधु, साध्वी आचार्य महाराजकी आज्ञानुसार पृथक् २ क्षेत्रोंमें आनंद पूर्वक विहार कर गए

एक दिनका जिक्र है कि गुरुमहाराज गौचरीकों पधारे उनके साथ वह विनयशील शीष्य भी आहारके पात्र लेकर पूज्य आचार्य महाराजके साथ हो गया मार्गमें इस तमीजके साथ चलता है कि नतो आगे, न बरोबर औरन पीछे अर्थात् पीठे इस प्रकार चलता है कि जिससे किसी प्रकार आशातना न हो यहाँ तक कि उसके पेरोंकी उडी हुई रज भी गुरुमहाराजकों स्पर्श नहीं कर सकती थी इस प्रकार क्रमशः श्रावकके घरपर पहूँचे

पूज्य आचार्य महाराजने ४७ दोष टालकर उचित अहार ग्रहण किया जिसकी पवित्र विधि ग्रन्थ गौरवके भयसें यहाँ पर उध्धृत करनेकों मजबूर हैं केवल इतना ही निवेदन करते है कि जिस वख्त गृहस्थ वहेराताथा (आहार देताथा) उस वख्त शिष्य अपनी झोली (पात्र रखनका वस्त्र) सें पात्र निकालकर गुरुमहाराजकों समर्पण करता वे अपनी इच्छाऽनुसार भोजन वहेर लेते शिष्यके पास पात्र होने पर भी वहेरती वख्त गुरु महाराजकों अर्पण करना यह गुरु सत्कार है

इस प्रकार गौचरी लेकर अपने उपाश्रयमें पधार गए गोचरी करने वगेराकी शेष विधि पूर्ववत्

एक दिनका प्रस्ताव है कि उस विनयशील शिष्यकों बुलाकर गुरुमहाराजने आज्ञा फरमाई कि हे वत्स! पाँच सात साधुओंकों लेकर पवित्र मलव देशमें विहार कर जाओ वहाँपर अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे श्री संघका उपकार करो और वीरशासनका उद्योतकर अपने श्रमण पदकों सार्थक करो

इस हुकुमको सुनते ही शिष्य सविनय प्रार्थना करता है:—

शिष्यः—हे करुणारस भण्डार ! कौन ऐसा पुण्यहीन है कि जो अपने दिव्य उपकारी गुरुमहाराजसें विरह चहाता हो किन्तु आप नाथकी आज्ञाको पालन करना यह मेरा मुख्य कर्तव्य है. इसही लिये आपकी आज्ञानुसार विहार करनेको मैं हाजिर हूँ.

गुरुमहाराजः—मेरे प्यारे आज्ञानुयायी ! अमुक २ साधुओंको साथ लेकर कल विहार कर जाना.

शिष्यः—आज्ञा प्रमाण.

द्वितीय दिन ठीक प्रातःकालमे ही तैयार होकर सब अन्य मुनियोंके गुरुचरणोंमें हाजिर हुवा सादर वंदना नमस्कार करनके पश्चात् दोनो करजोड़ यह प्रार्थना करता है:—

हे मम प्राणाधार पूज्य गुरुमहाराज ! आज मुझे आपके चरणोंका विरह होता है जिस असह्य दुःखको में किसी कदर सहन नहीं कर सकता; हे स्वामिन् ! यह मनमोहन शान्त छवीके मुझे कब दर्शन होंगे; हे प्रभो ! मुझे इन पावन चरण सरोजकी सेवा कब प्राप्त होगी. हे नाथ ! मुझे इन पवित्र चरणोंका वारंवार शरण हो. आपकी जिस प्रकार अनुपम कृपा है इससें दिन दुगुनी और रात चौगुनी बढानेका अनुग्रह फरमावें. हे दयासागर ! आपकी शुभ दृष्टिसें मेरा सदैव कल्याण है इत्यादि नानाविध भक्तिभाव प्रदर्शित किया.

गुरुमहाराजः—प्यारे चरणोंपासक ! यदि तूं हजार कोश भी दूर है और तेरा हृदय भक्तिरसमें भरा हुवा है तो तुझे यथावत् फल हांसिल हो सकता है. यथाः—

## ( दोहरा )

जलमें वशे कमोदनी । चंदा वशे अकाश ॥
जो जाहूके मन वशे । तो ताहूके पास ॥ १ ॥

पुनरपि आप पूज्य आचार्य महाराज फरमाते हैः—ये जो तेरे साथ अन्य मुनिजन हैं इनकी जिस तरह हम प्रतिपालन करते हैं उसही तरह तुम विश्वासर्से रखना यह खास सूचना है उधर उन मुनियोंको यह फरमाते हैंः— प्यारे मुनियो! तुम इस विनयशीलकी उसही प्रकार सेवा करना कि जैसी मेरी करते हो और मुझे जिस पूज्य दृष्टिसें तुम अवलोकन करते हो इसही प्रकार इसें समझना आदि उपदेश देकर सर्वको यह फरमाया किः—समय आन पहूँचा है सानंद विहार कर जाओ गुरुदेव सदैव तुमारी विजय करें

सुनते ही इस पवित्र आशिर्वादके वे सर्व मुनिराज सहर्ष विहार कर गए.

ग्रमाऽनुग्राम अनेक क्षेत्रोंमें भव्य जीवोंका अनुपम उध्दार करते हुवे क्रमशः अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में पदार्पण किया वर्षाकालिक चातुर्मास शाघ्र ही अपने अवस्थानमें प्राप्त होनेकी इच्छा कर रहाथा, इस अवशरमें वहांके निवासी धर्मानुरागी श्रावक, श्राविकाओंने चातुर्मासके लिये अनहद विनती की जिस पर आपने यह फरमाया कि अगर गुरुमहाराजकी आज्ञा होगी और हमारी क्षेत्र स्पर्शना बलवान् है तो हमें कोई उजर नहीं

जैन मुनिराजका इतना कथन ही गोया उनकी मानसिक कबूलात है जो कि वर्त्तमान वचनोंसें सम्यग् विज्ञात हो सकता है निश्चय कथन करना यह जैनागमका फरमान नहीं चूंके छद्मस्थ लोग भावि फलका निश्चित स्वरूप नहीं जान सकते

समस्त नाग्रिक जैन भक्तोंने पट्टन शहर जाकर गुरुमहाराजसें अनेकविध प्रार्थना कर चातुर्मासकी आज्ञा-हांसिल की

गुरुमहाराजने यह फरमाया कि यदि उसकी क्षेत्र स्पर्शना है और सर्व तरह सुभिता हो तो हम सहर्ष इजाज़त बक्षीस करते है संघ इस अनुज्ञाको हाँसिलकर अपने स्थानपर वापिस लौट गया.

इधर उस विनयशील नामक मुनिराजने चातुर्मासके निमित्त अ महाराजसें इस प्रकार प्रार्थना भेजीः—

हे करुणारस भण्डार ! वर्षाकालिक चातुर्मास दौड़ता हुवा निकट आ-रहा है और यहांके श्री संघकी भक्ति लायकतारीफ के है तथा विनति भी जोरशोरसें कर रहे हैं एवम् शासनोद्योतकी भी पूर्ण संभावना है इसलिये सविनय प्रार्थना है कि इस अवन्तिकापुरीमें चार मास निवास करनेकी आज्ञा बक्षीस फरमांवें. इस हमारी दीन प्रार्थना पर गोर फरमांकर जो कुछ मुना-सिब समझें शीघ्रही सूचितकर आभारी बनाईयेगा ताके हमें आगामी व्यव-स्थाका अनुभवहो.

इस विनयरससें भरी हुई प्रशंनीय प्रार्थनासें विज्ञात होकर उत्तरमें इस प्रकार सानंद आज्ञा बक्षीस फरमांते हैंः—

तुमारी विनयोद्योतक प्रार्थना संप्राप्त हुई उत्तरमें सूचित करते हैं कि अ-गर तुमे वहांपर सुख पूर्वक निवास करना सम्भव हो तथा पठन, पाठन तप जप, ध्यानादि निराबाध होसके और आबहवा अनुकूल एवम् शासनोद्योत उत्तम तौरसें होनेका पूर्ण विश्वासहो तो हम सानंद आज्ञा बक्षीस करते हैं और सूचित करते हैं कि शासनाऽधीश्वर श्री वीर परमात्माके शासनकों तथा आसन्नोपकारी गुरुमहाराजके पवित्र नामकों देदिप्य करना-यह खास सूचना है.

इस प्रकार आज्ञा पानेपर आप मुनि रत्नने चातुर्मास कर श्री संघ पर अगाध उपकार किया जो कि सदैव स्मरणीय है. इसही तरह कितनेक वर्ष मालवदेशमें खूब परियटन कर विविध स्थलोंके श्री संघका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (**बीकानेर**) में अपने पूज्य गुरुमहाराजकी सेवामें प्रवेश हुवे गुरुभक्तों ! इस वख्तके समागमका आ-नंद अनुभवी लोग ही जान सकते हैं. अब आप पूर्ववत् अपने सकल कृत्यमें संलग्न हुवे.

वर्त्तमानके अधिकांश शिष्य वर्गका विनय गुण एक विचित्रही लीला प्रदर्शित कर रहा है जो कि पब्लिकमें जाहिर है तदपि प्रकरणवशात् इतना अवश्य कहूँगा कि आज्ञानुसार कार्य करनेका दावा रखनेवाले **ऋजुप्राज्ञ** वहीं तक गुरुमहाराजकी आज्ञाकों सहर्ष सादर शिरोधार करते हैं कि जहाँ-

तक उनके मनशाके मुताबिक बक्षीस कीजावे यदि किसी समय वास्तविक व हितकारी इस प्रकार आज्ञा बक्षीस कीजावे कि जो उनके रुचिसें प्रतिकूल है तो, यहांकसें मूंह-मोड़ अनेक कुयुक्तियों द्वारा अपनी अपूर्व भक्तिका अलौकिक दृश्य दिखलाते हैं

मेरे प्यारे गुरु भक्तों! आपकों इस छोटेसें "गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य" दृष्टान्तसे यह सम्यग् विदित होगया होगा कि वह विनयशील एक कैसा अपूर्व गुणधारी था. आचार्य महाराजके अन्य अनेक शिष्य थे किन्तु यह सबमें अधिक प्राणवल्लभ तथा इसही प्रकार शिष्य वर्गको अपने भवोध्धारक गुरुमहाराजका विनय करके निज अपने मानव भवकों सफल करना चाहिये

जब तक हमारे उन पूज्य गुरुमहाराजने शिष्यावस्थामें निवास किया तब तक विनयशील शिष्यके अनुसार उत्तम विनयका आचरण करते थे नहीं श इतना ही नहीं किन्तु इससें भी कइ गुणें अधिक विनयरससें आपका हृदय अपूरित था और जब की आप गुरु पदकों सुशोभित करते थे तब पूर्वोक्त आचार्य महाराजके सदृश दयासागर थे अहाहा! आप गुरुदयालका विनय गुण विश्व प्रशंसनीय व अनुकरणीय है.

९ वैयावच्च—किसी धर्मात्मा पुरुषकी सेवा करना अर्थात् सुश्रुषा करना उसें वैयावच्च कहते हैं

आप परम भक्त महानुभाव अपने गुरुमहाराजकी, मुनिरत्नोंकी ग्लानियोंकी तपस्वियोंकी और नूतन शिष्य वर्गादिकोंकी अहार, पानीसें, शरीर सुश्रुषासें तथा प्रतिलेखनादि क्रियाओंसें दत्तचित्त होकर इस प्रकार भक्ति करतेथे कि जिसका अनुकरण करनेसें प्राणी दृढ भक्तिवन्त हो सकता है

महानुभावो! शास्त्रकारोंने दस प्रकारकी वैयावच्च फरमाई है तद्यथा:—

## ( गाथा )

आयरिय उवाझाएथेर । तवस्सी गिलाणसेहाण॥
साहम्मी कुलगणसंघ । वैयावच्चं हवईदसहा ॥ १ ॥

भावार्थः—१ आचार्यः-जिससें धर्म प्राप्त हुवा हो उसकी सेवा करना २ उपाध्यायः-जिससें विद्या अभ्यास किया हो उसकी भक्ति करना ३ स्थविरः-ज्ञानवृद्ध, पर्यायवृद्ध और वयोवृद्ध इन तीनोकी खिदमत करना. ४ तपस्वीः-तपस्या करनेवाले महात्माकी सुश्रुषा करना. ५ ग्लानः-बीमारोंकी वैयावच्च करना. ६ सेहाणः-नवीन दीक्षित मुनिकी यथोचित सेवा कर चारित्र रङ्गमें गाढ रङ्ग देना. ७ स्वधर्मीः-अपन जिस प्रणालीसें जिस धर्मको पालन करते हैं उसही नियमाऽनुकूल धर्मको आचरण करनेवालेकी परिचर्या करना. ८ कुलः-एक कुलका जैसें चन्द्रादि कुलवालेकी उपसना करना. ९ गणः-एक गणवाले जैसे कोटिक प्रमुख गणधारीकी भक्ति करना. १० संघः-समुदायकी सुश्रुषा करना.

उपरोक्त दश प्रकारकी वैयावच्चसें भी अनेक सेवाएं हैं किन्तु ये मुख्य और अवश्य आचरणीय है. वैयावच्चके ही अतुल प्रतापसें बाहुबल स्वामीको इस कदर भुजाबल प्राप्त हुवाथा कि भरत चक्रवर्त्तिको पाञ्चोंही युद्धोंमें परास्त किये.

चक्रवर्तिके अतुल पराक्रमका एक छोटासा नमुना पाठकोंकी सेवामें दाखिल करता हूँ कि जिससें वैयावच्चका ठीक फल विदित हो जायगा.

जब भरत चक्रवर्त्ति सर्वसें बलवान् म्लेच्छ देशको विजय कर वापिस लौटे तब समस्त सेना अपने दिलमें अभिमान करने लगी कि हम बड़े ही सूरवीर हैं कि ऐसे दुर्जय म्लेच्छ देशको सर कर लिया. इस व्यवस्थाको जान भरत महाराजने विचारा कि चक्रवर्ति पदकी अनंत पुण्याईको न समझ सर्व सेना अहंकारमें चकचूर होरही है इस लिये अपने पराक्रमका कुछ चमत्कार बतलाना चाहिये:—

भरत महाराज एक आसन पर बैठ, दाहिने हाथमें पान लिये हुवे मुखके सन्मुख करके अपनी समस्त फौजको यह हुकुम फरमाते हैं:—

अहो मेरी समस्त सेना! आज तुमें एक कौतुक दिखलाते हैं तुम एक मजबूत लम्बी शृङ्खला लेआकर मेरी कनिष्ठ अङ्गुली ( चट्टी उङ्गुली ) में ठीक जखड़कर बांधदो और समस्त चतुर्ङ्गी सेना अपनी सम्पूर्ण ताकत द्वारा खींचो

आज्ञा पाते ही ३२ हजार मुकुटबंद्ध राजा ९६ क्रोड़ पैदल ८४ लक्ष हाथी ८४ लक्ष घोड़े ८४ लक्ष रथादि समस्त क्रमशः उस शृंखलामें जुड़कर अपनी अशेष शक्तिद्वारा आकर्षित की किन्तु वह अङ्गुली मनागपिनमुड़ी इस अवशरमें भरत महाराजने पाननोश करनेके लिये आहिस्तेसें जरा हाथको ऊँचा उठाया कि समस्त सेना दड़ादड़ जमीन पर आगिरी इस अपूर्व पराक्रमको देख सम्पूर्ण सेना चमक उठी और उनका अहंकार भयभीत होकर रसातलमें डूब गया कहनेका तात्पर्य यह है कि भरत चक्रवर्ति ऐसे बलवान् होने पर भी बाहुबल स्वामीने पराजय किये यह वैयावृत्तका ही विशाल प्रभाव है

कइ एक साधु साध्वी लौकिक लज्जासें या स्वार्थमय होकर अपनी अपूर्व भक्तिका अलौकिक दृश्य दिखलाते हैं वह ठारपर नीपनरूप फलको देनेवाली समझना चाहिये वे कृपावतार तो एक बार नहीं सो बार फिरकर उचित आहार पानीकी योगवाई करते तथा प्रति लेखनादि उनके मरजीके अनुकुल कर उन्हे प्रसन्न करते थे तथा शरीरकी शुश्रुषा ( चांपना दबाना ) तो इस प्रकार करते थे कि उनकी कलो २ खिल उठती थी इस प्रकार दिलोजानमें भक्ति करते थे कहां तक कहा जाय आपका वैयावच्च गुण सर्वाऽऽदरणीय है

( १० ) स्वाध्याय:—स्वकीय पठन पाठनादिको स्वाध्याय कहते हैं

वे पूज्य गुरु महाराज पञ्च प्रकारीकी स्वाध्यायकर अपने कर्मपटलको दूर हटाते थे. तद्यथा:—

# ( गाथा )

वायणा पुच्छणाचेव । तहायपरि अट्टणा ॥
अणुप्पेहा धम्मकहा । सज्झाओ होई पंचहा ॥ १ ॥

अर्थः—१ वांचना २ पृच्छना ३ परिवर्त्तना ४ अनुपेक्षा ५ धर्म कथा. इस तरह पांच प्रकारकी **सज्झाय** कही जाती है.

विवेचनः—१ वाचनाः—किसी योग्य पाठक के पाससें पढना तथा स्वयं ग्रन्थ अवलोकन करना एवम् किसीकों उपकार बुद्धिसें पढाना. २ पृच्छनाः—किसी स्थलपर किसी विषयमें यदि संदेह होजाय तो गुरुमहाराजसें अथवा ज्ञान स्थविर वगेरासें पूछकर निर्णय करना. ३ परिवर्त्तनाः—पूर्वमें पढे हुवे ग्रन्थोंकी पुनरावृत्ति करना. ४ अनुपेक्षाः—अर्थ चिन्तन करनाः ५ धर्म कथाः—अनेकविध धर्मोपदेश देकर अन्य प्राणियोंका उध्धार करना.

वे अप्रमत्त गुरुवर्य उपरोक्त पञ्च प्रकारकी उत्तम स्वाध्यायकों सम्यग् आचरण कर अपनी आत्माका उध्धार करते हुवे अन्यात्मा पर अविस्मरणीय उपकार करते थे जिसकी प्रकरणवशात् बहुत कुछ महिमा ज्ञान विषयमें लिख आए हैं. आप स्वाधायके एक श्लाघनीय सुरसिक थे.

(११) **ध्यानः**—मनके एकाग्र अवलम्बनकों अथवा सम्यक् चिन्तनकों **ध्यान** कहते हैं.

आप योगीश्वर आर्त्त, रौद्र ध्यानकों हटाकर धर्म ध्यानकी दृढ आराधन करते थे और यथाशक्ति शुक्ल ध्यानकी तीव्र लप करते थे ग्रन्थ गौरवके भयसें चारो ध्यानका खुलाशा न करते केवल धर्म ध्यानकी ही व्याख्या शुरू करता हूँः—

**धर्म ध्यानके चार भेद होते हैं. तथाहीः—**

## ( चौपाई )

आज्ञा विचय प्रथम दिलधार
द्वितीय अपाय विचय सुखकार ॥
विपाक विचय तीजा गुण धार
संस्थान विचयमे जय २ कार ॥ १ ॥

(१) आज्ञाविचयः—वीतराग देवकी आज्ञामें चिन्तन करना यथाः— हे आत्मन्! देवादि देव तीर्थंकर प्रभुने षट् द्रव्य, नौतत्व, सप्तनय, चारनिक्षेपे, सप्तभङ्गी, उत्सर्ग, अपवाद, सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप, चतुर्दश गुण स्थान और स्याद्वादि सरुप द्वारा धर्म कथन किया है यह यथार्थ है सदैव तेरे आदरणीय व अनुकरणीय है यह पवित्र धर्म तुझे इस भवमें, परभवमें और भवोभवमें सुखकारी, हीतकारी और आनदकारी होगा ऐसे शुभ विचारोंमें तन्मय होजाना वह प्रथम भेद कहा जाता है

(२) अपायविचयः—कर्मोंके कष्टका विचारना यथाः—हे आत्मन्! इस संसारमें कर्मोंके वश तू मलीन गिना जाता है तू स्फटिक रत्नसें भी अधिक उज्वल है कषायादिकोंके कारण ही मलीन हो रहा है जैसें जलका निर्मल स्वभाव है किन्तु कचरा वगेरा गिर जानेसें मलीन कहा जाता है तथैव तेरी दशा हो रही है इसलिये जरा सावधानीकों अखत्यार कर और निज निर्मल स्वरूपमें रमण कर जिससे अपूर्व आनदरस प्राप्त होगा ऐसे शुभ चिन्तनमें तल्लीन हो जाना वह द्वितीय भेद कहा जाता है.

(३) विपाकविचयः—कर्म भोगका अनुभव करना जैसें:—हे जीव! तूँ जितना ही सुख दुःख, हर्ष, शोक वगेरा देख रहा है यह सब कर्मराजकी विचित्रता है सुख आये जीवीतव्य वाँछता है दुःख आए मरण इच्छता है यह तेरा स्वभाव नहीं है जिस वख्त वेदनी या कोई आपदा प्राप्त हो उस वख्त तुझे २ शान्तता पूर्वक भोगना चाहिये क्योंकी बगेर भोगे तेरा हरगीज छुट-

कारा नहीं हो सकता तो फिर हाय २ कर क्यों प्रबल कर्मबंध करता है कौन ऐसा मुर्ख है जो उतरते हुवे कर्जमें दुःख मानकर उसें बढ़ानेकी अभिलाषा करे एवं सुखके प्राप्त होने पर भी हर्षित नहीं होना चाहिये यह केवल पुण्य प्रकृतीका फल है जिसें अनंती वार प्राप्त किया तोभी कुछ इष्ट सिध्धि हांसिल नहीं हुई तो ऐसे सुखमे आनंद मनाना यह भी तेरी एक मोटी भूल है इसलिये दुःखमें ग्लानी व सुखमें खुशियाली नहीं होना चाहीये तूँ तो वैसे सुखकों अङ्गीकार कर कि जो अक्षय, अविनाशी और सदैव अखण्ड रूप रहनेवाले हों. ऐसा शुध्ध उपयोग लगाना उसें तृतीय भेद कहते हैं.

(४) **संस्थानविचय**—क्षेत्र सम्बन्धी विचार करना. तथाहीः—हे अवधु! सात नरकके सात राज जिसमें एकसें एकमें अधिक दुःख रहा हुवा है* जिसकों कि सुनने मात्रसें हृदय धड़ २ ने लगता है तथा १८ सो जोजन तिर्यग्लोकमें एवम् उर्ध्व लोकमें द्वादशश देवलोक, नौलोकान्तिक, नौग्रेविक, पाच अनुत्तर विमान, सिध्ध शिला और सिध्धस्थानादि अनेकक्षेत्र हैं इन सर्व क्षेत्रोंके अन्दर नैरइये रूप, तिर्यंच, मनुष्य, देव और निगोद रूप सर्व चतुर्दश राज लोकमें अनंती वार पर्यटन कर आया है किन्तु अब तक संतोष पैदा नहीं हुवा इस लिये अब ऐसी उत्तम करणी कर कि जिससें पौद्गलिक समस्त पदार्थोंसे सर्वथा जुदा होजाय और अनंत सुखमय निर्मल सिध्ध स्थानमें संप्राप्त होकर निरंतर आनंदरसमें निमग्न हो जाय—ऐसा पवित्र विचार करना. वह चतुर्थ भेद कहा जाता है.

इस प्रकार धर्म ध्यानकों ध्याते हुवे पदस्थादि चार ध्यानोका भी प्रशंसनीय आराधन करते थे जिसका किञ्चित्स्वरूप इस स्थलपर उध्धृतकर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँः—

(१) **पदस्थः**—अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठिके निर्मल गुणोंका विचार करना. **तथाहीः—**

---

*देखिये चतुर्गतिके दृश्यमें और अनुभवकर आत्माकों उत्तम मार्गपर आरोपरण कीजिये.

श्री अरिहन्त देव; ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार दुष्ट घनघातिये कर्मोंको विनाश करनेवाले तथा केवलज्ञान, केवल दर्शन और यथाख्यात चारित्रको धारण करनेवाले एवम् चौतीस अतिशय, पेंतीस वाणी और अष्ट महा प्रातिहार्य विराजमान महागोप, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, जगद्वैद्य, तीर्थङ्कर, जिनेश्वर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, विश्वपते, विश्वोत्तम, जगन्नाथ, जगद्बंधु, जगत्तारण, अशरण शरण, भवभय हरण, शिवसुखकरण, तरणतारण, वीतराग, धर्मोपदेशक, धर्मरत्नादि अगण्य गुणगणां विभूषित तथाः—

श्री सिद्ध परमात्मा जन्म मरण दुःखरहित निरंजन, निराकार ज्योतिस्वरूप चिदानन्द, निसङ्ग, निरिच्छा, निष्कषाय, निष्काम, अखण्ड, शास्वत और अनन्त सुखोंमें तन्मय एवमः—

श्री आचार्य भगवान् सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी जेष्ठ, धीर, वीर, प्रवचनाधार, प्रवचन प्रकाशक, सारण, वारण, चोयण, पड़िचोयण कुशल, तीर्थङ्करोपम, बहुश्रुत क्रियाधार, समयज्ञ रसज्ञ, तत्वज्ञ, गच्छस्तम्भ पदधारी, शासनोन्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, सूत्रार्थधारी, ज्ञानभोगी, अनुभवयोगी आदि अनेक दिव्य गुणोपेत तथाः—

श्री उपाध्यायजी महाराज ज्ञान, दर्शन, चारित्र निधान, श्री आचार्य धर्म राजधानीमु प्रधान, सकल नय निक्षेप प्रमाणगर्भित द्वादशङ्गीवत्ता, दुर्बोधी शिष्य वर्गके सुबोधक, भव्यात्माओंके अशेष संशय निवारक, शिक्षक, दीक्षक, परीक्षक, श्रुतवृद्ध, परम पात्र, निर्मलगात्र, अप्रमादी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार और सिद्ध साधक आदि बहु गुणवरिष्ट एवमः—

पवित्र मुनि महाराज शान्त, दान्त, महन्त, संयमी, ज्ञानी, ध्यानी, परिसह जीपक, क्षमादि गुणसंपन्न, अप्रतिबन्धविहारी, रत्नावली कनकावली, मुक्तावली, गुणरत्न, सम्वत्सर प्रमुख दुष्कर तपाराधक, जिनाज्ञाराधक, सदैव उपासनीय, क्षमाभण्डार, दयासागर, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शसि समान सौम्य, सायरसम गम्भीर, भारण्डवत् अप्रमत्त, कल्पवृक्षवत् परोपकारी, पृथ्वीसम सहनशील, परमवैरागी, दुर्नयत्यागी, सकल गुणरागी, शास्त्रज्ञ, मर्मज्ञ, तत्वज्ञादि समस्त गुणगणालङ्कृत ऐसे परमपूजनीय इस प्रकार

इन पांचों उद्धारक पवित्र पदोंके अखिल गुणोंका आराधन करना· वह **पदस्थ** नामक प्रथम ध्यान कहा जाता है·

(२) **पिण्डस्थ:**—शरीरमें रहे हुवे चेतनके गुणोंका विचरना. यथाः—पदस्थ ध्यानमें अरिहन्तादि पञ्चपरमेष्ठीके जितनेही अनुपम गुण फरमाए हैं वे सर्व मेरी आत्मामें विद्यमान हैं किन्तु दुष्ट कर्मोंके आवरणसें ढके हुवे सर्व अदृश्य होरहे हैं; दुर्वार कर्मपटलसेंही मेरे अपूर्व निर्मल गुणोंका प्रतिभास नहीं होता; इसलिये उपरोक्त पञ्च परमेष्टिने जिन २ त्रैलोक्य प्रशंसनीय सद्मार्गोंको आचरण किये हैं उनका मैंभी अनुकरण कर अपनी आत्मकों पवित्र करूं. ऐसा निर्मल विचार करना; वह **पिण्डस्थ** नामक द्वितीय ध्यान कहा जाता है.

(३) **रूपस्थ:**—किसी आकार विशेषमें रहे हुवे आत्माके गुणोंकों विचारना. यथाः—मैं कर्म वश शरीर धारण करनेके हेतु कभी निगोदिया, कभी नैरइया, कभी, पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ और वनस्पती कभी बेन्द्री, तेन्द्री, चौरिन्द्रि, असन्नी और सन्नी पञ्चेन्द्री; कभी मनुष्य और कभी देवतादि अनेक नामोंसें पुकारा जाता हूँ किन्तु वस्तुतः मैं एक अमूर्त्त निर्मल, अभेद, शुद्धता रूप चिदानंद तत्वामृत, असङ्ग, अखण्डमादि गुण सहित सिद्ध स्वरूप हूँ—इस प्रकार चिन्तन करना; वह तृतीय **रूपस्थ ध्यान** कहा जाता है.

(४) **रूपातीत:**—अरूपी निर्मल आत्माका विचार करना. जैसें:—यह चेतन अनंत ज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अनंत चारित्रमयी, अनंत अव्याबाध सुखमयी, अनंत सुखविलासमयी, अनंत अगुरु लघुगुणमयी, अनंत अक्षय स्थितिमयी, अनंत वीर्यमयी, अनाद्यनंत नित्यानंद, अविनाशी, अवेदी. अनुपाधि, अजर, अमर, अव्यय, अकलङ्क, अरोगी, अक्लेशी, अयोगी, अचल, अमल, सहजानंदी, सहज स्वरूपी, पूर्णानंदादि अनंत गुणनिधान सिद्ध स्वरूप है. इस तरह केवल आत्मगुणोंमें रमण करना. यह चतुर्थ **रूपातीत ध्यान** कहा जाता है.

आप मुनीश्वर इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यानकर अपनी आत्माका कल्याण करते थे.

(१२) उत्सर्गः—किसी पदार्थके त्यागकों उत्सर्ग कहते हैं उसके दो भेद होते है प्रथम द्रव्योत्सर्ग और द्वितीय भावोत्सर्ग

प्रथम द्रव्योत्सर्गके चार भेद इस प्रकार हैं यथाहीः—

(१) गणोत्सर्गः—गच्छ ( समुदाय )का त्यागकर जिन कल्पादि काठिन्य मार्ग अङ्गीकार करना

(२) देहोत्सर्गः—अनशनादि व्रत लेकर शरीरका त्याग करना अथवा कायसग्ग ध्यानकर शरीरकों छोड़ना

(३) उपध्युत्सर्गः—कल्प विशेष उपधीका अलग करना

(४) अशुद्धभक्त—पाणोत्सर्गः—सदोष अशनादि चतुर्विध आहारका त्याग करना

भावोत्सर्गके तीन भेद होते हैं. तद्यथाः—

(१) कषायोत्सर्गः—क्रोध, मान, माया और लोभादि २५ कषायोंका दूर हटाना

(२) भवोत्सर्ग वा संसारोत्सर्गः—नरकादि भवके कारण भूत मिथ्यात्वादिकों जुदा करना

(३) कर्मोत्सर्गः—ज्ञानावर्णादि अष्ट कर्मोंके हेतु भूत ज्ञान विरोधकादि विषयोंकों दूर करना

उपरोक्त द्रव्योत्सर्ग और भावोत्सर्गोंमेंसें वे पूज्य गुरुवर्य कइ एक सराहनीय आचरण कर अपने उत्कृष्ट श्रमण पदकों सार्थक करते थे और कइ एक की तीव्र तप करते हुवे अपने मानव भवकों कृतकृत्य करते थे

इन द्वादश भेदोंके अतिरिक्त आप तीर्थ स्वरूप प्रातःकालके प्रतिक्रमणमें नित्य षट् मासिक तप का चिन्तन करते हुवे यथा शक्ति तपस्या अङ्गीकार कर

अपने कर्मोंकी निर्जरा करते थे. यद्यपि छमासिक तप प्रथम अनशन तपमें समावेश होसकता है किन्तु नित्य स्मरणीय होनेसें तथा समस्त बाल-गोपालकों विशेष लाभप्रद समझ **चेतन सुमति के प्रश्नोत्तरमें** संघटित करके पृथग् उध्दृत करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ.

## ( सर्वोपयोगी तप चिन्तन )

**सुमतिः**—हे चेतन महाराणा! राजग्रही नगरीके नालीन्दे पाड़ेमें शासनाऽधीश्वर **श्रीवीर परमात्मा**ने छमासी तपस्याकी आप भी उस पवित्र तपस्याकों आराधन करके अपना कल्याण कीजियेगा.

**चेतन**—प्रियसुमते! मैं षट् मासी तपस्याके शब्दतक सुनना नहीं चाहता, श्रवण करतेही मेरा हृदय तड़फता है मेरे सामने नाम तक मत ले.

सच है! भोजनका वियोग बड़ाही दुःसह्य है चेतनने षट्मासी तप जब नामन्जूर किया तब उस सुमतिने विचारा कि जो अनादि कालसें कुमतिके साथ प्रेम कर आनंद मना रहे हैं उन्हें,एकदम सुमार्गमें उपस्थित करना मुश्किल है इसलिये संतोष दे देकर सन्मार्गके अभिमुख करना उचित होगा; यह सोच पुनरपि चेतन राणाकों समझाती है:—

**सुमतिः**—हे प्राणपते! एक दिन कम षट् मास कर सकते हैं?

**चेतनः**—महानुभावा! नहीं कर सकता.

तथैव दो दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. तीन दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. चार दिन कम कर सकते हैं! नहीं कर सकता. पांच दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. छ दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. सात दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. आठ दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. इसही प्रकार एक२ दिन कम करते पन्दरह दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता तथैव एक२ दिन कम करते पचीस दिन कम कर सकते हैं? इसही तरह उन्नतीस दिन कम षट् मास प कर सकते हैं? नहीं कर सकता.

हे गुणनिधे! तीस दिन यानि एक मास कम ठ महिने अर्थात् पाच महिने तो स्वीकार कीजिये चूंके वार २ यह सुअवसर नहीं मिल सकता जरा उपयोग स्थिर कर विचार कीजियेगा इसमें आपका एकान्त कल्याण होनेवाला है

सज्जनो! मदोन्मत्त आत्माके कदाग्रहकों दूर करना दुःसाध्य है तदपि **पुरुपार्थ वलवान् है अस्तु.**

**चेतनः**—प्रिय पत्नि! पाँच महिनेकी तपस्या मै हरगीज़ नही कर सकता सुनने मात्रसें मेरा शरीर धूजता हे जिक्र तक करना छोड दे

इन शब्दोंकों श्रवणकर वह महानुभावा विचार करती है खैर और भी निच श्रेणीके तपका दरियाफ्त करना उचित है—यह सोच प्रेमपूर्वक कहती हैः—

प्यारे प्रभु! खैर यदि आप पाच मास नही कर सकते है तो कुछ परवाह नहीं किन्तु एक मास और एक दिन कम षट्मास तप कर सकते हैं? अर्थात् एक दिन कम पाच मास कर सकते है? नही कर सकता तथैव एक२ दिन कम करते उन्नतीस दिन कम पाच मास कर सकते हैं? नही कर सकता

हे प्रभुदेव! दो मास यानी साठ दिन कम ठ मास कर सकते है? अर्थात् चार मास तो अङ्गीकार कीजिये एक हिस्सा तो निकल गया केवल दो हिस्से ही शेष हैं घबराहटकों त्याग कर सन्तोष वृत्तिकों आदर कीजिये और मेरी प्रार्थनाकों कबूल करके अपने निज स्वरूपकों कृतार्थ कीजियेगा

पाठकवरों! कर्मरूप मदिराकों पान किया हुवा पागल चेतन बिलकुल अङ्गीकार नहीं करता केवल यह कहता है कि चातुर्मासिक तपस्या करनेकों मैं सर्वथा असमर्थ हूँ तू मौनकों अख्तियार कर ले तेरे इन "कर्णशूलवत्" शब्दकों मैं नहीं सह सकता बिचारी सुमता दिलगीर होकर पुनः कहती हैः-

हे प्राणाधार! दो महिने और एक दिन कम षट्मास अर्थात् एक दिन कम चार मास कर सकते हैं? तथैव एक२ दिन न्यून करते उन्नतीस दिन कम चार मास कर सकते हैं? नहीं कर सकता अस्तु तीन मास तो कबूल

कीजियेगा अब तो अर्धभागही रह गया है फिर आपको ऐसी अपूर्व सकाम निर्जराका कब सौभाग्य प्राप्त होगा.

**चेतनः**—प्रियसुमते! तेरा दुःखदाई कथन सर्वथा उपेक्षणीय है मैं किसी कदर अङ्गीकार नहीं कर सकता.

**सुमतिः**—लाचार होकर हे मेरे सदुपयोगी चेतन राणा! तीन महिने और एक दिन कम पट्मास यानी एक दिन कम तीन मास कर सकते हैं? तथैव क्रमशः एक २ वासर कम करते हुवे उनतीस दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता. अस्तु चार माह कम पट्मास तप यानी दो मासका तप तो कबूल करियेगा; स्वामिन्! पुनः २ यह मानव भव प्राप्त होनेवाला नहीं है समझना है तो समझ लीजिये; वर्ना फिर पस्ताना होगा.

**चेतनः**—प्यारी सुमते! तुमारा अनाचरणीय कथन बिलकुल अमान्य है विचारी कुमति मुझे सदैव सुखकारिणी है.

**सुमतिः**—**"मजबूर होकर"** हे मेरे प्राणवल्लभ! चार महिने और एक दिन कम अर्थात् एक दिन कम दो मास कर सकते हैं? इसही तरह एक २ अहन् कम करते उनतीस दिन पर्यन्त पूछकर अखीरमें विज्ञप्ति करती है कि अब तो म्हसो दिन कम हो गये केवल तीस दिनही की प्रार्थना है. कृपा कर स्वीकारता फरमाईयेगा.

**चेतनः**—प्राणवल्लभे! चाहे वह तुमारी निगाहमें ठीक हो हमतो सदैव खिलाफ ( AGAINST ) हैं. तुम इस कथनको सर्वथा छोड़ दो.

**सुमतिः**—प्राणपतेः—यदि आपकी मास क्षमणकी समर्थ्य नहीं है तो पाञ्च मास और एक दिन कम षट्मास यानी एक दिन कम मास क्षमण कर सकते हैं? इसही तरह एक २ दिन कम करते तेरह दिन तक पूछती हुई प्रार्थना करती है कि हे नाथ! मेरी चिरकालीय प्रार्थनाको अब तो कृपाकर सफल कीजिये!

**चेतनः**—प्राणप्रिये! मै सुनता२ थक गया कइ वार मौनका हुकुम वक्षीस किया किन्तु अब तक तूँ अपनी हटकों नहीं छोडती है

**सुमतिः**—दिलमें सोचकर "**भला करते भी वुरा होता है**" खेर कोई हर्ज नहीं पुनरपि सहामिक होकर-प्राणनाथ! **चौतीसभत्त*** कर सकते है? नहीं कर सकता वत्तीसभत्त कर सकते है? नहीं कर सकता तीसभत्त कर सकते है? नही कर सकता; इसही प्रकार दो २ भत्त कम करते १० भत्त यानी अष्ट कर्म निकन्दनके हेतु एक अठाई तो कीजियेगा! नही कर सकता तथैव दो २ भत्त कम करते अष्ट भत्त यानी ज्ञान, दर्शन, और चारित्रकों उज्वल करनेवाला एक तेला कर अपूर्व सुखका अनुभव कीजियेगा! नही कर सकता

षट्भत्त कर सकते है? नही कर सकता चार भत्त यानी उपवास व्रतकों तो अङ्गीकार कीजियेगा! नही कर सकता महा माङ्गलिक आचाम्ल (आयँविल) कर सकते हैं? नही कर सकता तथैव नीविगय, एकल ठाणा, दात, एकासन कर सकेंगे? नही कर सकता वे आसन कर सकेंगे? नही कर सकता इसही तरह अवड्ढ, पुरिमड्ढ, साढपोरसी, पोरसी कर सकते है? देखिये अब तो केवल ३ घटेकीही प्रार्थना है क्या अब भी स्वीकारनेमें हिचकायगें हे स्वामिन्! कृपया अब तो मेरी इच्छाको सफल कीजियेगा

**चेतनः**—प्रिय कान्ते! तीन क्लाककी क्षुदा मुझसें सहन नही हो सकती

**सुमतिः**—दिलमें विचारकर SOME THING IS BETTER THAN NOTHING यानी बिलकुल नहीसें तो कुछ होना अच्छा है ऐसा खयाल कर दुःखपूर्वक रुदन करती हुईः—हे प्राणाधार! कुमतिकी निरतर प्रार्थना मन्जूर करते हो तो अब मरी अन्तिम नौकारसीकी प्रार्थना तो कबूल कीजिये!

* चार भत्तका एक उपवास, छ भत्तका एक बेला, अट्ठमत्तका एक तेला तथैव जितने उपवास हों उनके द्विगुने कर दोभत्त अधिक मिला देना यह भत्तका नियम है लिहाजा चौतीस भत्तके सोल्ह उपवास होते हैं तथा कहीं पर केवल द्विगुनेसेंही भत्तका नियम प्रमाण किया गया हे ये दानोंही नियम श्री भगवतीसूत्रमें फरमाये हैं

**चेतनः**—प्रिये! क्या रो कर मुझे मराती है मैं नौकारसी भी नहीं कर सकता। चूंके मूझे सूर्योदयके प्रथम चाहपानी वगेर नहीं चलता, कभी कहना है मुझे चलम–सिगरेट पीये वगेर, कभी कहना अफयूम खाए वगेर दस्त नहीं लगता, कभी कहता माजुम, भङ्ग वगरा सेवन किये विडन आफरा चड़ जाता है. इत्यादि अनेक दुर्व्यसनोंके वशीभूत हुवा इस प्रकार कथन करता है–तूँ ब्रम्ही ही पगला है अनेकवार रोकनेपर भी नहीं मानती. **खवरदार आइन्दा पूरा** खयाल रखना वर्ना तेरे हक्कमें बुरा है.

**सुमतिः**- मनमें विचार कर "**अब हाथ जोड़ीमें काम चलने-वाला नहीं, रोए राज कभी मिलना नहीं बहादुरीकों धारण कर उपदेश देना उचित होगा.**" प्राण प्यारे! क्या आपकों इनकार करते लज्जा नहीं आती! घिसते २ सिलपर भी निशान हो जाता है किन्तु आपके वज्र हृदयपर कुछ भी असर न पहूँचा. धन्य है! आपके अनंत ज्ञानादि चतुष्टय गुणोंकों और, धन्य है! आपके शुद्धउपयोगकों तथा कृत पुण्य है! आपकी प्रशंसनीय पवित्रताकों और मुबारिक है आपकी भवोध्दारक सत् सङ्गतकों एवम् शतसः धन्य है आपके चैतन्य लक्षणकों; क्या ही अच्छा होता कि यदि आप चैतनकेवजाय **जड़** नामसें मशहूर होते. आप मेरे इन शब्दोंपर बुरा नमानियेगा मैं सदैव आपका भला चाहनेवाली एक किङ्करा हूँ; इसलिय इस प्रकार जां वेजां शब्द कहती हूं–अब भी आप मेरी प्रार्थनापर गौर फरमाइये और मेरी दिली आशाकों पूर्ण कर अपना कल्याण कीजियेगा.

**चेतनः**–अत्यन्त आग्रहके हेतु दाक्षिण्यता वश होकर विचारता है. "अस्तु इसका भी सन्मान रखना चाहिये कुछ दिन हजमाईस कर अवलोकन करना चाहिये यदि सानंद निर्वाह हो जायगा तो हमेशांके वास्ते पावंदी कर लेंगे." ऐसा विचार कर–प्रिय सुमते! अच्छा अब आजसे तुमारी प्रार्थनाऽनुसा **नौकारसी** करेंगे.

**सुमतिः**—हे प्राणेश्वर! आप मेरे स्वामी हैं, आप मेरे नाथ हैं; आपही प्राणाधार हैं. यदि आप मेरी प्रार्थनाकों सफल न करें तो अन्य कौन करेगा. इस प्रकार अनेकशः स्तुती की.

अनादि कालमें कुमतिके वशीभूत हुवे चेतनकों उपकारिणी सुमति देवीने सन्मार्गमें प्रवृत्त किया

इसतर कितनेक दिन-सौ वर्ष नरकाऽयुष तोडनेवाली नौकारसीका अभ्यास कराकर हजार वर्ष नरक आयुष्य तोडनेवाली महरसी अङ्गीकार करवाई तथैव क्रमशः साढ महरसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, बेआसन, एकासन, एकल ठाणा, दात, नीविगय, ऑयंबिल और यावत् उपवास पर्यन्त उत्तम मार्गपर पहुँचा दिया अब अविस्मरणीय उपकारिणी सुमति कहती हैः—

**सुमतिः**—प्राणवल्लभ! क्या आपकों आनंदरसका अनुभव हुवा

**चेतनः**—प्राणप्रिये! तेरा अवर्णीय उपकार हरगीज नहीं भूल सकता दुष्ट कुमतिने मुझे फँदमें फसाकर अनादि कालसें दुःसह्य दुःखसें दग्ध किया. इस आनद रसका आस्वादन पामर प्राणी नही पा सकते अनुभवी लोगही इस अपूर्व आनदकों लूँट रहे हैं–इसही तरह बेला, तेला यावत् अठाई, पक्ष क्षमण, मासक्षमण, दोमास, चार मास और छ मास पर्यन्त तपस्या कर अपने निज स्वरूपमें तन्मय हुवा

एक दिनका जिक्र है कि चेतन सुमतिसें पूछता हैः--

**चेतनः**—हे प्राणवल्लभे! बेला, तेला आदि इकठी तपस्या करनेवालेकों कुछ अधिक लाभ होता है या पृथक् २ दो उपावास, तीन उपवासादि करनेवालेकों और एक दमसें बेले, तेले वगरा करनेवालेकों सदृशही फल होता है

**सुमतिः**—प्राणेश्वर! यह तो अनुभवसें ही प्रकट सिद्ध है कि जुदा २ उपवास करनेमें इकत्रित करनेवालेकी विशेषतः इच्छानिरोध होसकती है ज्यों २ पौद्गलिक पदार्थोंसें इछा विशेष हटनी जाती है त्यों २ आत्म अनुभव प्रकट होता जाता है इधर शास्त्रकारोंने इकठी तपस्याका पश्चगुणा फल फरमाया है जिसे श्रवणकर उत्तम पुरुषोंके भाव एकदम उल्लसित होजाते हैं हेनाथ! उमही तपश्चर्याके **अनुपम महात्म्यकों** ध्यानपूर्वक श्रवण करनेका अनुग्रह कीजियेगा

# ॥ इकट्ठी तपस्याका महा फल ॥

## ( नूतन प्रणाली )

| नं० | ॥ तपश्चर्या ॥ |
|---|---|
| १ | एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है. .... .... |
| २ | दो उपवास इकठे करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है .... |
| ३ | तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ४ | चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ५ | पांच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ६ | छ उ० इ० करे तो ३ हज़ार १२५ उपवासोंका फल होता है. |
| ७ | सात उ०इ० करे तो १५ हज़ार ६२५ उपवासोंका फल होता है. |
| ८ | आठ उ०इ० करे तो ७८ हज़ार १२५ उपवासोंका फल होता है. |
| ९ | नव उ०इ० करे तो ३ लक्ष ९० हज़ार ६२५ उ० फल होता है. |
| १० | दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फल होता है .... .... .... .... .... .... |
| ११ | ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हज़ार ६२५ उ० फल होता है .... .... .... .... .... .... |
| १२ | बारह उ० इ० करे तो ४ क्रोड़ ८८ लक्ष २८ हज़ार १२५ उ० फल होता है .... .... .... .... .... |
| १३ | तेरह उ० इ० करे तो २४ क्रोड़ ४१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ० फल होता है .... .... .... .... .... |
| १४ | चौदह उ० इ० करे तो एक अर्ब २२ क्रोड़ ७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ० फ० .... .... .... .... .... |
| १५ | पन्द्रह उ० इ० करे तो ६ अर्ब १० क्रोड़ ३५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ० फ० .... .... .... .... .... |

| | |
|---|---|
| १६ | सोलह उ० इ० करे तो ३० अर्ब ५१ क्रोड़ ७५ लक्ष ७८ हज़ार १२५ उ० फल होता है .. .. . , ... |
| १७ | सतरह उ० इ० करे तो १ खर्व ५२ अर्ब ५८ क्रोड ७८ लक्ष ९० हजार ६२५ उ० फ० . . |
| १८ | अठारह उ० इ० करे तो ७ खर्ब ६२ अर्ब ९३ क्रोड़ ९४ लक्ष ५३ हज़ार १२५ उ० फ० .. |
| १९ | उन्नीस उ० इ० करे तो ३८ खर्व १४ अर्ब ६९ क्रोड़ ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ० . .. .. .. |
| २० | बीस उ० इ० करे तो १ नील ९० खर्ब ७३ अर्ब ४८ क्रोड ६३ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ० - . |
| २१ | एकवीस उ० इ० करे तो ९ नील ५३ खर्ब ६७ अर्ब ४३ क्रोड़ १६ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ० फ० |
| २२ | बाईस उ० इ० करे तो ४७ नील ६८ खर्ब ३७ अर्ब १५ क्रोड ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ० . |
| २३ | तेवीस उ० इ० करे तो २ पद्म ३८ नील ४१ खर्ब ८५ अर्ब ७९ क्रोड़ १० लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ० फ० |
| २४ | चौवीस उ० इ० करे तो ११ पद्म ९२ नील ९ खर्ब २८ अर्ब ९५ क्रोड ५० लक्ष ७८ हज़ार १२५ उ० फ० |
| २५ | पचीस उ० इ० करे तो ५९ पद्म ६० नील ४६ खर्ब ४४ अर्ब ७७ क्रोड ५३ लक्ष ९० हज़ार ६२५ उ० फ० |
| २६ | छबीस उ० इ० करे तो २ सङ्ख ९८ पद्म २ नील ३२ खर्ब २३ अर्ब ८७ क्रोड़ ६९ लक्ष ५३ हज़ार १२५ उपवासोंका फल० |
| २७ | सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ सङ्ख ९० पद्म ११ नील ६१ खर्ब १९ अर्ब ३८ क्रोड ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल० |
| २८ | अठावीस उ० इ० करे तो ७४ सङ्ख ५० पद्म ५८ नील ५ खर्ब ९६ अर्ब ९२ क्रोड ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल० |
| २९ | उनतीस उ० इ० करे तो ३७२ सङ्ख ५२ पद्म ९० नील २९ खर्ब ८४ अर्ब ६१ क्रोड़ ९१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उप० फल० |

| | |
|---|---|
| ३० | तीस उ० इ० करे तो एक हज़ार ८६२ मङ्क ६४ पद्म ५१ नील ४९ खर्व २३ अर्व ९ क्रोड़ ५७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ० फ० |
| ३१ | एकत्तीस उ० इ० करे तो ९ हज़ार ३१३ सङ्ख २२ पद्म ५७ नील ४६ खर्व १५ अर्व ४७ क्रोड़ ८५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ० फ० |

## ( प्राचीन प्रणाली )

| नं० | ॥ तपस्या ॥ |
|---|---|
| १ | एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है. .... .... |
| २ | दो उपवास इकठ करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है. .... |
| ३ | तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ४ | चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ५ | पांच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है. .... |
| ६ | छ उ० इ० करे तो ३ हज़ार १२५ उपवासोंका फल होता है.... |
| ७ | सात उ० इ० करे तो १५ हज़ार ६२५ उपवासोंका फल होता है. |
| ८ | आठ उ० इ० करे तो ७८ हज़ार १२५ उपवासोंका फल होता है |
| ९ | नव उ० इ० करे तो ३ लक्ष ९० हज़ार ६२५ उप० फल होता है. |
| १० | दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हज़ार १२५ उप० फल० .... |
| ११ | ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हज़ार ६२५ उप० फल०. |
| १२ | बारह उ०इ० करे तो ४ क्रोड़ ८८ लक्ष २८ हज़ार १२५ उ०फ० |
| १३ | तेरह उ० इ० करे तो २४ क्रोड़ ४१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ०फ० |
| १४ | चौदह उ०इ० करे तो १२२ क्रोड़ ७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ०फ० |
| १५ | पन्दरह उ०इ० करे तो ६१० क्रोड़ ३५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ०फ० |

| | |
|---|---|
| १६ | सोलह उ० इ० करे तो ३ हजार क्रोड ५१ क्रोड ७५ लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फल होता है ... |
| १७ | सत्तरह उ० इ० करे तो १५ हजार क्रोड २२८ क्रोड़ ७८ लक्ष ९० हजार ६२५ उप० फल० . |
| १८ | अठारह उ० इ० करे तो ७६ हजार क्रोड २९३ क्रोड़ ९४ लक्ष ५३ हज़ार १२५ उप० फल० . |
| १९ | उन्नीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष क्रोड ८१ हज़ार क्रोड ४६९ क्रोड ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ० |
| २० | वीस उ० इ० करे तो १९ लक्ष क्रोड़ ७ हज़ार क्रोड़ ३४८ क्रोड ६३ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ० |
| २१ | एकवीस उ० इ० करे तो ९५ लक्ष क्रोड ३६ हजार क्रोड ७४३ क्रोड १६ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ० |
| २२ | बावीस उ० इ० करे तो ४ क्रोड़ाक्रोड ७६ लक्ष क्रोड़ ८२ हज़ार क्रोड ७१५ क्रोड ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ० . . . |
| २३ | तेवीस उ० इ० करे तो २३ क्रोडाक्रोड ८४ लक्ष क्रोड़ १८ हजार क्रोड़ ५७९ क्रोड़ १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ० |
| २४ | चौवीस उ० इ० करे तो ११९ क्रोडाक्रोड २० लक्ष क्रोड ९२ हजार क्रोड ८९५ क्रोड़ ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ० |
| २५ | पच्चवीस उ० इ० करे तो ५९६ क्रोडाक्रोड़ ४ लक्ष क्रोड़ ६४ हजार क्रोड ४७७ क्रोड ५३ लक्ष ९० हजार ६२५ उप० फल० |
| २६ | छवीस उ० इ० करे तो दो हजार ९८० क्रोड़ाक्रोड २३ लक्ष क्रोड़ २२ हजार क्रोड ३८७ क्रोड ६९ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल० |
| २७ | सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ हजार ९०१ क्रोडाक्रोड़ १६ लक्ष क्रोड ११ हज़ार क्रोड ९३८ क्रोड ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल० |
| २८ | अठावीस उ० इ० करे तो ७४ हज़ार ५०५ क्रोड़ाक्रोड ८० लक्ष क्रोड ५९ हजार क्रोड ६९२ क्रोड ३८ लक्ष २८ हज़ार १२५ उप० फल० |

| | |
|---|---|
| २९ | उनतीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष ७२ हज़ार ११२९ क्रोड़ाक्रोड़ दो लक्ष क्रोड़ ९८ हज़ार क्रोड़ ४६१ क्रोड़ ९१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उप० फल होता है. .... .... .... .... |
| ३० | तीस उ० इ० करे तो १८ लक्ष ६२ हज़ार ६४५ क्रोड़ाक्रोड़ १४ लक्ष क्रोड़ ९२ हज़ार क्रोड़ ३०९ क्रोड़ ५७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उप० फल० .... .... .... .... .... |
| ३१ | इकतीस उ० इ० करे तो ९३ लक्ष १३ हज़ार २२५ क्रोड़ाक्रोड़ ७४ लक्ष क्रोड़ ६१ हज़ार क्रोड़ ५४७ क्रोड़ ८५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उपवासोंका फल होता है. .... .... .... |

मेरे प्यारे गुणानुरागियों! आपकों उपरोक्त इकठी तपस्याके महा फलकों पढ़कर यह जलीव प्रकार सुविदित होगया होगा कि ऐसे अपूर्व रत्न खजानेकों लूँटना कौन न चाहता होगा? हमारे आत्मार्थी जव्यात्मा अवश्य इस तर्फ ध्यान देकर महा निर्जराजूत दिव्य तपास्यका आचरणकर अपनी आत्माका कल्याण करेंगे ऐसा सुदृढ़ विश्वास है. देखिये इस प्रताप शाली दिव्य तपस्यासें इस प्रकार अनुपम गुणोंकी सुप्राप्ति होती है:—

## ( श्लोक )

यस्माद्विघ्न परंपरा विघटते दास्यं सुराःकुर्वते।
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याण मुत्सर्पति ॥
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसंचयः कर्मणां ॥
स्वाधीन त्रिदिवं शिवंच जवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥१॥

जावार्थः—जिस अतुल प्रतापी दिव्य तपद्वारा परंपरानुगत विघ्न एकदमसें विनाश हो जाता है और विनय श्रेष्ठ देवता दासपना करने लग जाते

है तथा दुर्जय कामदेव तत्काल उपशान्त हो जाता है और चंपल इन्द्रीय समुदाय एकदम स्वाधीन हो जाती है एवम् महामङ्गल वर्तने लग जाता है तथैव विपुल वैभव सम्प्राप्त होता है इसही प्रकार घोर कर्म शत्रु तत्क्षण विध्वंस हो जाते हैं अन्तिममें स्वतन्त्रता पूर्वक सामान्यतया उत्तम देवलोकके अपूर्व सुखोंको भोगता है और विशेषतया अचिरात् मोक्षपदको पाकर अनंत सुखोंका अनुभव करता है सज्जनो ! क्या यह **उग्र तप** श्लाघनीय नहीं है ? किन्तु अवश्यही त्रिजगत प्रशंसनीय व अनुकरणीय है

हमारे वे महा तपस्वी पूज्य गुरु पुङ्गव इस प्रकार तपस्याका आचरण करते हुवे अपनी आत्मामें रमण करते थे अहाहा ! आपकी **तप महिमा** जगत् प्रशंसनीय व विश्व-अनुकरणीय है. वैराग्य रसिकों ! अब मैं आपकी निर्मल भावनाका किञ्चिद् विवरण प्रदर्शित करनेका सहास करता हूं:—

## ॥ निर्मल भावना ॥

शुभ विचारोंद्वारा सन्मागत रहे हुवे आत्मगुणोंका आविर्भाव करना: उसे **भावना** कहते हैं

वे पूज्य गुरुवर्य विशाल विस्तीर्णरूपसें निम्नलिखित चार भावनाओंको भाते हुवे अपने कर्म वृन्दको विध्वंस करते थे जिसका किञ्चित् स्वरूप पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूं—

### ॥ चौपाई ॥

प्रथम मैत्री निर्मल गुणधार।
प्रमोद हृदय विकशित सुखकार ॥
कारुण्य दया रस आतमसार।
माध्यस्थ भावना जय २ कार ॥१॥

प्यारे पाठकवरों ! कितनेक महानुभावोंके हृदयमें ये अवश्य उपङ्गलहरें

उत्पन्नहीं होगी कि मैत्री माताके अन्दर ऐसा क्या गौढ दिव्य गुण है कि जिससें प्रथम पद विभूषित कर रही है; उत्तरमें इतनाही निवेदन काफी होगा कि यावत् क्षेत्र शुद्धि न होगी सर्व यत्न निष्फल हैं अर्थात् जब तक हृदय पवित्र गुण करके विभूषित न हो तब तक सिद्धयर्थ दुःसाध्य है इतनाही नहीं किन्तु सर्वथा असंभव है और वही गुण इस मैत्री मातामें विद्यमान है; अतः यह प्रथम पदसें विभूषित होरही है अब मैं अपने निज **मैत्री माताका** दिव्य स्वरूप रोशन करता हूँ:—

## ॥ मैत्री भावना ॥

अशेष प्राणियोंके साथ मित्रता रखना उसें **मैत्री भावना** कहते हैं.

यह प्रकट लोकोक्ति है कि "**संप जहा जंप**" अर्थात् संप है वहां अवश्य विजय है एक्यता ( UNITY ) एक ऐसी पवित्र वस्तु है कि जिसके जरिये प्राणी शीघ्रही अपनी इष्टता संप्राप्त कर सकता है इसही मैत्री महाराणीके प्रभावसें निर्बल भी सबलकों अपने कबजेंमें कर सकता है जैसें छोटे२ तन्तुओंसें बुनी हुई रस्सी एक मदोन्मत हस्तिकों गिरफतार कर सकती है यह **एक्यता** का ही महा प्रभाव है.

इधर एक्का ( संप ) एक ऐसा बलवान् है कि बादशाह तककों भी परास्त कर देता है. शायद आपने तास ( PLAYING CARDS ) का खेल देखा होगा कि उसमें रहा हुवा एक्का कितना बलीष्ट होता है.

डरीपर तिरी गेरनेसें तिरीवाला जीत जाता है तथैव तिरपर चौकी, चौकीपर पञ्ची; इसही प्रकार क्रमशः नौलीपर दशी गेरनेसें दशीवाला विजयकों प्राप्त होता है उपरोक्त नवों पत्रोंपर यदि बादशाहका गुलाम आजावे तो सर्वको शिकस्त देता है उसपर भी यदि बादशाहकी बेगम आजावे तो गुलाम तककों दबा देती है इसपर भी यदि खास बादशाह सलामत तसरीफ ले आवें तो डरीसें दशीतक व गुलाम तथा बीवीकों भी जय कर लेते हैं मगर मेरे प्यारे पाठकों ! यदि **एक्का महाराणा** पदार्पण करे तो सर्वकों त-

त्काल पराजय कर देता है अर्थात् विजयको संप्राप्त होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि तासका तमासा भी हमें यह नसीहत करता है कि एकसे बढकर कोई पदार्थ नहीं इसकी उत्कट कोशीस करना प्रत्येक प्राणियोंका अव्वल धर्म है.

इस संप महाराणाके न होनेसें कुसप देवने भारतवर्षको बरबाद कर दिया अर्थात् सत्ताहीन बना दिया जिसमें भी जैन जातीकी दशा बडीही सोचनीय है इसपरभी हमारे कितनेक भव्य धर्म नेतागण परस्पर विरोध करके पवित्र जैन धर्मको उज्ज्वल कर रहे हैं हम नहीं समज सकते कि वे हमारे पूज्य महात्मा कुसंपदेवके प्रेम रसमें किस प्रकार निमग्न हो रहे हैं वे धर्म धुरंधर धर्मावतारादि अलङ्कारोसें अलङ्कृत होनेपर भी इस प्रकार अधम कृत्यमें कदम रखकर अपनी उच्चताका दृढ परिचय दे रहे हैं महानुभावों! हमारे वे माननीय महोदय उसही प्रकार दमक रहे हैं कि जैसें काक अपनी उज्वल दिव्य कान्तिसें विभूषित होता है धन्य है! हमारे कृपावारों! आपको पुनः २ नमस्कार है!! आप सदश नर रत्नों सें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है

इधर हमारे कितनेक शासन प्रेमी भव्यात्मा इस पवित्र जैन जातिकी इस प्रकार दुर्दशा देखकर खेदातुर होते हुवे अपने नेत्रोंसें अश्रुओंका अविरल धारा बहार रहे हैं और परम परमात्मासें यह दिली प्रार्थना कर रहे हैं कि इस जैन समाजका शीघ्रही उध्धार हो हमें एक वख्त फिर भी वह सौभाग्य संप्राप्त हो कि जैन शासन मारतण्ड अपने दिव्य प्रकाशसें इस पृथ्वी मण्डलको प्रकाशितकर भव्यात्मके हृदयरूप कमलोंको विकाशित करता हुवा हमें दर्शन दे ताके हम अपने प्यासे नेत्रोंको शान्तरसमें निमग्न करें

आपको यह बखूबी रोशन है कि जब तक प्राणियोंका विचार परस्पर न मिलता है तब तक कोई कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती अथवा यों कहिये कि जब तक प्राणियोंका प्रेमरस एकमेक न हो जाय दिली आशाए नहीं फल सकती इस आनंदरसको संमिलित करना मैत्री माता के ही आधीन है देखिये:—

जब तक कषाय अलग न होगा. समकीत बीज हरगीज़ नहीं ठहर सकता जैसे यह कहावत मशहूर है कि **"चीकटे घड़े न लागे ढांट"** रूपान्तरसे यह अनुभवमें आइयेगा कि जैसें कोई मनुष्य बादामादि की चक्कियें जमाता है तो अव्वल थालमें घृत लगा देता है ताके उसमे बिलकुल न चिपट सके यहां तककी एक अंश भी उसमें नहीं रह सकता इसही तरह जब तक कषायरूपी चिकट हृदयरूपी थालमें लग रहा है तब तक **समकीतरूपी बरफी** कभी नहीं ठहर सकती. तात्पर्य यह है कि जब तक द्वेषाग्नि नष्ट न हो शान्तरस प्राप्त नहीं हो सकता समकितके जहाँ सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्यता ये पाँच लक्षण बताए गए हैं वहां पर आदि सोपान (सीढ़ी) **सम** रखा गया है "**सम**" अर्थात् चतुराष्ट लक्ष जीवा योनी पर समान परिणाम रखना इस पदको सिद्ध किये बग़ैर सम्यक्त्वका यथार्थ गुण प्रकट नहीं हो सकता भावार्थ यह है कि समकितको प्राप्त करानेवाली भी हमारी **मैत्री माता** ही है.

हमारे वे **पूज्य गणाधिपति** इस प्रकार मैत्री भावनाका आराधन करते हुवे अपने कर्मपटलको विध्वंस करते थे. **तद्यथाः—**

हे आत्मन्! अपने समुदायमें जितने साधु साध्वियें हैं उन सर्वसें मित्रता रखना चाहिये चूंके तू और ये सर्व एकही गुरु महाराजकी निश्राइमें रहने वाले हो अर्थात् एकही परमोपकारीके उपासक हो जिस प्रकार एक माताके गर्भसे उत्पन्न हुवे भाईयोंके गाढ स्नेह होता है इसही तरह तुझे भी प्रीतिभाव रखना चाहिये; इतनाही नहीं किन्तु समस्त **खरतर गच्छीय चतुर्विध संघ** के साथ संप रखना उचित है कारण की तूं और ये सर्व एकही गच्छाधिपति **पूज्यपाद श्री जिनेश्वरसूरीश्वर**की आज्ञामें चलनेवाले हो अर्थात् उनके फरमान के मुआफिक क्रिया काण्ड करनेवाले हो इतने पर ही संतोष करना तुझे योग्य नहीं किन्तु **चौरासी गच्छवाले सकल मन्दीर आम्नायके अनुयाईयों**सें एक्यता रखना चाहिये चूंके अपन सर्व **पूज्यपाद श्रीउद्योतनसूरीश्वर**के आज्ञानुयाई हैं तथा अपने षडावश्यकादि खास विधियोंमें कुछ भी तफावत नहीं है इतना ही नहीं किन्तु अनेक आचार विचार सदृश है इतने पर ही सब्र करना तुझे

लाज़िम नहीं किन्तु बाईस समुदाय व तेरह पंथवालों में भी प्रीतिभाव रखना उचित है चूंके वे भी श्वेताम्बर जैन धर्मकी शाखाए हैं अपने व उनके कितने ही सबजेक्टस् ( विषय ) मिलते हुवे हैं इतनेपर ही आनंद मनाना योग्य नहीं किन्तु जैन धर्मकी मूल दो शाखाओंमेंसे एक शाखा जो दीगम्बर जैन धर्मकी है उनसे भी मित्रता रखना चाहिये कारण की अपन सर्व एक ही चौवीस तीर्थङ्करोंके उपासक है इतनाही नहीं किन्तु कइ एक व्यवस्थाए समान है कहनेका तात्पर्य है कि जैन पद से जो २ महानुभाव विभूषित हो रहे हैं उन सर्वसें मित्रता रखकर अपना कल्याण करना चाहिये

प्यारे चेतन! इतनेमें ही हर्ष मनाकर आनंदित न होना किन्तु षट् दर्शनियों में भी मिलाप रखना चाहिये चूँके अपने व उनके बहुतसें तात्विक विषय (PHILOSOPHY) समान है यथा जैन धर्मका मूल सिध्धान्त "अहिंसापरमोधर्म." है इसें सबही धर्मवाले तसलीम करते हैं तथैव मृषावाद, स्तेय, मैथुन और परिग्रह धारण करना महा दुःखदाई है इन्हे भी सर्व दर्शनवाले सादर शिरोधार करते हैं इसलिये षट् दर्शनोंके साथ भी मित्रता रखना समुचित है

हे अवधु! इतनेमें ही संतोषित मत हो जाना किन्तु मनुष्य मात्र (पुरुष, स्त्री ओर नपुँसक मात्र ) सें सप रखना चाहिये कारण की जातित्वेन उनके साथ स्वधर्मता है अर्थात् इनसानियत के कर्त्तव्य उनके व अपने बरोबर है तथैव देव, तिर्यंच और नारकीके जीवोंसें निरन्तर बंधु भाव रखना चाहिये चूके इन्द्रियत्वेन अपने स्वाधर्म्य हैं जिन पञ्चन्द्रीयको अपनोंने धारण कर रख्खी है वेही पञ्चन्द्री उनके भी मौजुद है, अतः उनसे मित्रता रखना योग्य है

हे जीव! यहीं पर विश्रामित मत होना किन्तु विकलेन्द्री (बेन्द्री, तेन्द्री और चौरिन्द्री) में भी भ्रातृभाव रखना चाहिये कारण की त्रसत्वेन अपनके सदृश धर्मी हैं त्रस संज्ञा उन्हे भी है व वही त्रस संज्ञा अपनेको भी है तथैव सत्व भूत प्राणियोंसें ( पृथ्वी, अप्, तेज और वायु, वनस्पति ) व सूक्ष्म पाँचो स्थावर अर्थात् सूक्ष्म निगोदियोंसें भी उचित है चूंके शरीरत्वेन

तथा चेतन लक्षणत्वेन अपन व वे सर्व एक ही हैं अर्थात् औदारिक शरीर अपने भी है व उनके भी है तथाच जैसें चेतनके खास षट् लक्षण अपने हैं तैसेही उनके भी हैं इतना नहीं ही किन्तु कइ एक संज्ञादि विषय भी मिलते हुवे हैं लिहाज़ा उनसें मित्रता रखना समुचित है. जीवके षट् लक्षण **तद्यथाः**—

## ( गाथा. )

**नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ॥**
**वीरियं उव उगोय एवं जीवस्स लखणं ॥ १ ॥**

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये छ लक्षण जीवके होते हैं.

हे सुज्ञ चेतन ! मेरे समस्त कथनका रहस्य यह है कि चतुराशि लक्ष जीवा योनीसें मैत्री भाव रखकर तुझे आनंदित होना चाहिये.

प्यारे पाठकवरों! इस प्रकार वे **पूज्य महर्षि** मैत्री भावनाका दिली आराधन करते हुवे अपने **चारित्र रत्न** कों दिन दिगुना उज्वल करते थे इतना ही नहीं किन्तु कर्म पटलकों विध्वंसकर अपने निर्मल आत्म गुणोंका आविर्भाव करते थे **धन्य है ! गुरुवर्य आपकृत पुण्य हैं.** सज्जनो! अब मैं आपके प्रमोद भावनाका किंचिद् दृश्य दिखलाता हूँः—

## ( प्रमोद भावना )

प्राणीमात्रकों यथावत् सुखी देखकर प्रमुदित ( प्रसन्न ) होना उसें **प्रमोदभावना** कहते हैं.

आप यह सहज़ ही समझ सकते हैं कि बगैर मैत्री माताकी सेवा किये प्रमोद मातेश्वरीका आराधन होना मुश्किल है. यह प्रकट विख्यात है कि

शत्रुको देखकर कभी आनंद नहीं होता और मित्रको देखकर एकदम चित्त हरा भरा हो जाता है देखिये जब कभी कोई अपने शत्रुकी यश कीर्ति अथवा सत्कार सन्मानादि श्रवण करता है तब हृदयमें दुःख ज्वाला धग २ ने लगती है और यदि यही व्यवस्था अपने मित्रकी श्रवण करता है तब आत्मा एकदममें शीतल हो जाती है अर्थात् समस्त अङ्ग आनंदरससे आपूरित हो जाता है और हृदय मन्दिरमें उङ्ग लहरें उछलने लग जाती हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि मैत्री माताके अगाध कृपामें ही प्रमोद माताकी सेवाका सौभाग्य समाप्त हो सकता है इसही लिये यह द्वितीय पदको विभूषित करती है

प्यारे पाठको ! जब तक प्रमोद माताकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक चिन्ता पिशाचनी हृदयगत आनंदको बरबाद करती है और अपना साम्राज्य जोर शोरसे प्रवर्त्ताती है इसके निवारसे शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनो व्यवस्थाएँ अस्त व्यस्त हो जाती हैं जिसके दुःखसे शरीर जर्जरीभूत हो जाता है वचन कलाप नष्ट भ्रष्टता में नमग्न होता है मन महाराणा मामाोल करने लग जाता है अर्थात् निरंतर अनेक संकल्प विकल्पोंसे आर्त्त-रौद्र ध्यानमें ग्रसित हो जाता है इतना ही नहीं किन्तु जिन्दे रहने पर भी मृतक मनुष्यवत् दुःख प्राप्त होता है यानी चिन्तामें निवास करना गोया साक्षात् चितामें ही दग्ध होना है देखिये किसी महानुभावने ठीक कहा हैः—

( दोहरा. )

चिन्ता डाकन मन वशी चुट २ लोही खाय ॥
रती विरती कर संचरे तोला २ जाय ॥ १ ॥

तथैव और भी कहा हैः—

( दोहरा. )

चिन्ता चिताका एक रस इसमे अन्तर एह ॥
चिता जलावे मृतक जन चिन्ता जीवित देह ॥ २ ॥

आपको उपरोक्त हर दो दोहरोंसें यह सम्यग् विज्ञात होगया होगा कि चिन्ता एक कैसी दुर्धरा वैरिणी है इसें पराजय कर आनंदरसमें झिलाने वाली हमारी **प्रमोद माता** ही हो सकती है.

वर्त्तमानमें प्रमोद माताकी सेवा एक विलक्षण ही प्रतीत होती है महानुभावोंको छोड़कर बहुतसें प्राणी किसीको धनाढ्य बहु कुटुम्बी और निरोगादि देखकर आर्त्त रौद्र ध्यान करते हैं और यह विचारते हैं कि देखो यह तो इस प्रकार सुखी है और हम महान् दुःखी हैं इसकी भी सब तरह दुर्दशा हो जाय तो बहुत अच्छा है तथैव दीन दुःखियोंको देखकर बड़े ही प्रसन्न होते हैं और यह विचारते हैं कि यह हीन दशामें ही रहें तो अत्युत्तम है क्यों कि हमें कभी आक्रमण नहीं कर सकेगा हे ईश्वर ! यह कभी सुखी मत हो वो इत्यादि अनेक विटम्बना करते हैं मगर क्या सज्जनो ! **"बिल्लीके कहनेसें कभी छीका टूट सकता है"** अर्थात् यह उसही प्रकार असंभवित है कि जिस प्रकार आकाश मण्डलमें पुष्पोंका खिलना गैरमुमकीन है तदपि दुष्ट पुरुष अपनी आदतसें बाज़ नहीं आते.

इधर बुद्धिशील पुरुष गुणीजन, ज्ञानीजन तथैव उत्तम पुरुषोंके शुभ कार्योंको देखकर उनका सत्कार, सन्मान करते हैं तथा उनके उत्तम कार्योंपर हर्षित होते हैं; इतना ही नहीं किन्तु चतुराशि लक्ष जीवा योनीमें रहे हुवे समस्त जीवोंके उचित गुण देखकर प्रसन्न होते हैं. यह **प्रमोद माता** का ही सुप्रताप है. महानुभावो! **वे तीर्थ स्वरूप** इस प्रकार प्रमोद भावना भाकर अपनी आत्माका कल्याण करते थे. **तद्यथा:-**

हे आत्मन् ! तुझे भवतारक तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय और मुनिराज एवं चक्रवर्ति, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और बलदेव तथैव अशेष सम्यक्त्वधारी जीवोंको सुखी देखकर आनंदित होना चाहिये कि अहा धन्य हो! इन उत्तम जीवोंको कि इन्होंने किस क़दर उच्च पुण्याई उपार्जन की है तथा

उसके द्वारा कैसी उत्तम रीतिसे निर्जराकर अपने जवको सार्थक कर रहे है अहो! इन मेरे समस्त बधुओंको सुखी देखकर मेरा हर्ष हृदय आनंद सीमासे बाहिर हो रहा है इत्यादि

कृतार्थ है! गुरुदेव आपका जव्य श्रमणजव मुहुर्मुहुः कृतार्थ है!! गुणानुवासको! अब मै आपके कारुण्य जावनाकी किञ्चिद्विवक्षा करता हूँः—

## ( कारुण्य जावना )

सत्व, भूत, प्राण और जीव अर्थात् प्राणीमात्र पर यथोचित दया लाना उसें **कारुण्य जावना** कहते हैं

यह तो प्रकट ही है कि जिन प्राणियोंके उत्तम आचार व उन्हे सुखी देखकर प्रमोद होता है तो उन्हीके दुष्कृत तथा उन्हे दुःखी देखकर करुणाका होना अवश्य ही सम्जव है, अतः प्रमोद जावनाके पश्चात् कारुण्य जावनाने अपना तृतीय पद विभूषित किया

दीन दुःखी प्राणीको देखकर यह करुणा आना कि अररर! इन बिचारोंने कैसे क्लिष्ट कर्म उपार्जन किये है कि जिससें ये रुचिकर खान पानसें तथा वस्त्राभूषणोंसें एव हाट हवेलियोंसें वञ्चित होकर अनेकशः कष्ट उठा रहे है इन्होने अवश्य ही पूर्व जवमें सुपात्र तथा अनुकंपादि दान नहीं दिये तथा देनेकी इछावालेको अपनी दुर्बुद्धि द्वारा मिथ्यात्वोपदेश देकर तथा कत्रिम सामर्थ्य द्वारा निषेध कर महद्दानान्तराय उपार्जन किया है एव देनेवालेकी तर्फ तिरष्कार जेजके अपने कुलीन कुलका व उत्तम धर्मका गाढ परिचय दिखलाया है.

शारीरिक व्यथासें दुःखि प्राणियोंको देखकर यह विचार करना कि अहो! इन जीवोंने पूर्व जवमें जीव दया नहीं पालन की तथा अनेक जीवोंको नानाविध कष्ट दिये हैं वा अन्यसें दिलवाये हैं एव देते हुवे की अनुमोदन कर खुशयाली मानी है इसही लिये बिचारे ये पामर प्राणी असह्य दुःखसें दग्ध हो रहे हैं

महा ऋद्धिवान् चक्रवर्ति, राजा, महाराजा, शेठ और साहूकार तथैव अशेष पदाधिकारियों को हिंसा करते, झूठ बोलते चोरी करते व्यभिचार सेवन करते तथा परिग्रहकी अत्युत् कण्ठा करते देखकर पृथक् २ इस प्रकार दयामय विचार करना—

उफ! कर्मकी गति विचित्र है ये इस प्रकार उत्तम पदवीसें विभूषित होने पर भी क्रिमा तथा कौतुकके लिये एवं अपने पराक्रमको विख्यात करनेके हेतु बिचारे निरापराधी शेर, सूर, चित्ते, रींछ ओर अजादि जानवरोंको प्राणोंसे रहित करके वज्र लेपसा कर्मोपार्जन करते हैं ये अपने दिलमें ज्ञानका भी पूरा २ गौरव रखते हैं किन्तु वस्तुतः वह ज्ञान नहीं नितान्त अज्ञान ही है ये भद्रिक लोग इतना भी नहीं समझते की पूर्व भवमें अनेक जीवोंको सुख दिया है इस ही लिये मेरी हज़ारों लोक मान्यता करते हुवे सेवा भक्ति कर रहे हैं और जिन जीवोंने अन्य प्राणियोंको दुःख दिया है वे प्रकटतः दुःखी हो रहे हैं इसही तरह मुझे भी अवश्य दुःखी होना पड़ेगा.

तथैव मृषावादियोंको मृषा द्वारा विश्वास घातादि अनर्थोंको सेवन करते देख यह विचारना कि अहो! इन लोगोंको तनिक भी लज्जा नहीं आती कि हम इस प्रकार असत्य भाषण कर विश्व विश्वासपात्र कैसें बनेंगे अहा! सत्यवक्ता हरिश्चंद्र राजाने बारह वर्ष पर्यन्त किस प्रकार संकट सेवन किये थे किन्तु लेशमात्र भी दुःखातुर न हुवे और अपने अखण्ड सत्य व्रत पर कटिबद्ध रहे अहो! बिचारे इन दीन असत्यवक्ताओंका जन्म कैसे सफल होगा.

चौर लोगोंको चौरी करते देख अथवा चौरीके कटुक फलको कारागृह (जेलखाना) मे प्रत्यक्ष भोगते हुवे देख यह खयाल करना कि संसारमें अनेक जीव अनेक उपचारोंसें उदरपूरणा कर रहे हैं और ये निगम्म कर्मी बग़ैर परिश्रम ही आनंद करनेकी वाँछा करते हैं यह इनकी अज्ञताका पूर्णोदय है मुझे बड़ी ही भाव दया आती है कि किसी प्रकार ये दुःखसें स्वतन्त्र हो जाँय तो उत्तम है.

वेश्या गमन करनेवाले व परस्त्रीके लम्पटियोंको देखकर यह भावना लाना कि हा! ये पामर प्राणी किस प्रकार दुष्टाचरणको सेवन कर रहे हैं

जिससें कुलकी, जातिकी और खानदानकी लज्जा मस्थानकर रही है तथा राजा, महाराजा एव देव, गुरु और धर्मसें लज्जा विहिन हो रहे है और जिससें मोक्ष मार्ग दूर भग रहा है यहा तककी इस भवमें मत्यक्ष जेलखानेकी हवा खाना पडती है और आगामी भवमें घोर नरकादिके असह्य दुःखसें दग्ध होना पमता है * तो भी ये व्यभिचारी लोग अपने विश्व निंदनीय कर्त्तव्यसे बाज नहीं आते हे ईश्वर! इन विचारे क्षुद्र माणियोंका किसी तरह शुध्धाचार होजाय तो अच्छा है

परिग्रहके अति लोभियोंको देखकर यह विचारना कि:—अहा! दुनियाकी कैसी विचित्र लीला है बहुधा समस्त जगत आँख बंद कर चारों तर्फ पैसेके लोभसें मारा २ फिर रहा है सैकडापति यह चाहता है कि मै हजारपति होजाऊं तथैव हजारपति लक्षपति एवं लक्षपति क्रोडपति होनेकी इच्छा करता है किन्तु यह बिलकुल विचार नहीं करते कि चक्रवर्ति सदृश ऋध्धिवान् भी जब अपनी समस्त ऋध्धि छोडे परलोककों रवाना हुवे तो समुद्रमें बिन्दुवत् मेरी लक्ष्मीका क्या? अब तो मुझे अवश्य ही सतोष महाराणेका अवलम्बन करना चाहिये किन्तु बजाय इसके रात दिन दौडधाम मचा रहे है बिचारे इन प्राणियोंकों किसी मकार संतोष वृत्ति हो जाय तो अच्छा है ताके परमानंदमें निमग्न हों

मान्यवरों! हमारें चरित्र नायक पूज्यपाद गुरुवर्य इस मकार काहएय भावना भाते थे:—

हे आत्मन्! ससाररूपी विचित्र नाटककों जरा पलक उठाकर देख कि ये बिचारे विचित्र कर्मधारी पामर माणी किस कदर उलट पुलट काम करते हुवे कर्म फासमें फसनेका उत्कट मयत्न कर रहे हैं कइ माणी निरपराधी जीवोंकों विनाशकर आत्मीय बलकों धन्य मानते हैं तथा अपने कुलकों उत्तम समझते है, कइ एक माणी मृषावाद द्वारा लोगोंकों धोका बाजी देकर वञ्चित (ठगाई) करते हुवे अपनेको बुध्धि कुशलमान रहे हैं! कइ एक मनुष्य पर धन हरण

* इसका विशेष खुलाशा देखनेकी अभिलाषा हो तो देखो हमारा बनाया हुवा सप्त व्यसन निषेधका चौथा व सप्तम व्यसन.

करके अपनी ठकुराइका गौरव समझ रहे हैं; कइ एक वैश्या और पर स्त्रीमें आनंद मानते हुवे अपने जन्मको सफल गिन रहे हैं और कइ एक लक्ष्मी वर्धन करनेमें दत्तचित्त होकर अपने पुरुषार्थको कृतकृत्य मान रहे हैं इतना ही नहीं किन्तु अनेक अनर्थ दण्डोंको सेवन कर अपनेको धन्य २ समझ आनंद समुद्रमें निमग्न हो रहे हैं. हे प्रभो ! इन विचारे अज्ञ प्राणियोंकी वर्त्तमानमें क्या गति हो रही है तथा भवान्तरोंमें किस प्रकार दुर्गतिके घोर दुःखोंको भोगकर अपने कठिन कालको व्यतीत करेंगे. हे ईश्वर ! इन विचारे प्राणियोंकी मति सुधर जाय तो उत्तम है. अररररर ! ये विचारे गरीब भयंकर दुःखोंको कैसे सहन करेंगे. हे जगत्तारक ! किसी प्रकार इनका छुटकारा हो जाय तो श्रेयस्कर है.

प्यारे दयानुरागियों ! इस तरह नाना विध भाव दया भाते थे और अपने हृदयको दया रससे आपूरित करते हुवे कर्म निर्जरा कर भव भ्रमणका विध्वंस करते थे. धन्य है गुरुदयालु ! आप दयासागरको मुहुर्मुहु धन्य है. सज्जनो ! अब मैं आपकी माध्यस्थ भावनाका संक्षिप्त विवेचन लिख दिखाता हूँ:—

## ( माध्यस्थ भावना )

मित्र और शत्रु पर समान परिणाम रखना अर्थात् इष्ट और अनिष्ट अशेष वस्तुओं पर समभाव रखना उसे **माध्यस्थ भावना** कहते हैं.

प्यारे वैरागियों ! जब तक प्राणियोंके विभिन्नता रहती है तब तक अपनी इष्ट पदार्थों पर ही अटूट कृपा होती है किन्तु अनिष्ट पर क्रूर दृष्टि ही बनी रहती है मगर जब कारुण्य माताकी सेवामें कटिबद्ध हो जाते हैं तब इष्टानिष्ट सर्व पर समान दयाभाव हो जाता है इसही कारुण्य मातेश्वरीके महत् कारणसें माध्यस्थ माताकी सेवा संप्राप्त हो सकती है अतः कारुण्यके पश्चात् सिद्ध स्थानपर पहूँचानेवाली माध्यस्थ भावना अपने दिव्य स्वरूपको प्रकाशित करती हुई स्वकीय निज स्वरूपमें रमण कर रही है

सज्जनों ! यह तो निसन्देह ही प्रकट है कि अनेक प्राणी अनेक कर्तव्योंमें

निपुण है यहा तकको जगतमें सर्वसें अति वल्लभ प्राण तकको स्वामीके लिये न्योछावर कर देते है किन्तु सम रस यानी माध्यस्थ वृति रखनेवाले विरले ही पुरुष दृष्टि गोचर है; देखिये एक विद्वान् वैरागीका कथन हैः—

( श्लोक )

दृश्यन्ते वहवः कलासु कुशलास्ते च स्फूरत्कीर्तये ।
सर्वस्वं वितरन्ति ये तृणमिव क्षुद्रैरपि प्रार्थिताः ॥
धीरास्तेऽपि च ये त्यजन्ति झटिति प्राणान्कृते स्वामिनो—
विरलास्तेतुनरा मनः समरसं येषां सुहृद्वैरिणोः ॥१॥

भावार्थः—इस दुनियाके अन्दर बहुतसे ऐसे लोग है जो कि अनेक कलाओंमे कुशल है तथा कइ एक लोग दीन दुःखीके प्रार्थना पर अपने वैभवकों विस्तीर्ण कीर्तिके लिये तृणके सदश खर्च कर देते है और कइ एक ऐसे वाहादुर लोग है कि अपने स्वामीके लिये तत्काल प्राण अर्पण कर देते है किन्तु प्यारे वैरागियों! मित्र और शत्रुमें समरस रखनेवाले दो तीन विरले ही पुरुष होंगे

जिज्ञासु सज्जनों! जो प्राणी माध्यस्थावस्थामें निवास करते है वे सदा सर्वदा अपनेकालकों निराबाध आनंदपूर्वक निर्गमन करते है इसलिये माध्यस्थ भावनमें विराजमान योगीश्वर अनेक दिव्य गुणोंसें विभूषित होते है उन्हमेंसें कितनेक गुण इस स्थल पर उध्धृत कर प्रदर्शित करता हूं:—

( श्लोक )

आक्रोशेन न दूयते न च चटु प्रोक्त्या समानंद्यते ।
दुर्गंधेन न बाध्यते न च सदा मोदेन संप्रीयते ॥
स्त्रीरूपेण न रज्यते न च मृत श्वानेन विद्विष्यते ।
माध्यस्थेन विराजितो विजयते सोप्येष योगीश्वरः ॥१॥

भावार्थः—वेही महानुभाव सम्यग् ज्ञानी समझे जाते हैं कि जो कठोर वचनोसें कदापि दुःखी नहीं होते और खुशामदके शब्दोंसें कभी आनंदित नहीं होते तथा दुर्गंधसें हरगीज़ बाधित नहीं होते और सुगंधसें कभी प्रसन्न नहीं होते एवं कामिनीके दिव्य स्वरूपसें कदापि रंजित नहीं होते और मृतक श्वान ( कुत्ता ) सें हरगीज़ द्वेष नहीं करते. इस प्रकार **माध्यस्थ स्वरूपमें विराजमान वे ही योगीश्वर** विजयकों संप्राप्त होते हैं.

इतना ही नहीं किन्तु मित्र और शत्रु आदिसें रागद्वेषकों दूर कर माध्यस्थ वृती रखते थे. यथा किसी महात्माका ठीक कथन हैः—

( श्लोक )

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वैरातुरो जायते ।
भोगे लुभ्यति नैव नैव तपसि क्लेशं समालम्बते ॥
रत्ने रज्यति नैव नैव दृषदि प्रद्वेषमापद्यते ।
येषां शुद्धहृदां सदैव हृदयं ते योगिनो योगिनः ॥ २ ॥

भावार्थः—वेही आत्मार्थी पुरुष कहे जाते हैं कि जो मित्रके अन्दर कभी आनंदित नहीं होते और चुगलखोरोंमें कभी वैरभाव नहीं रखते तथा भोगमें कदापि नहीं लुभाते और तपस्यामें क्लेशातुर नहीं होते एवं रत्नादि ज़वाहिरातों में हरगीज़ दील चस्वी नहीं लाते और कङ्करमें कदापि द्वेष नहीं लाते ऐसे जो शुद्ध हृदयवाले महानुभाव हैं उनके पवित्र हृदयमें उपरोक्त कोइ विषय संप्राप्त नहीं होसकता; वेही योगिराज योगीश्वर पदवीसें विभूषित होते हैं.

महानुभावों ! उपरोक्त दो श्लोकोंसें आपकों सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि माध्यस्थ वृत्तिवाले किस उच्च श्रेणीसें विभूषित होते हैं. हमारे वे प्राणाधार इस प्रकार माध्यस्थ भावनाकों भावन करते थेः—तद्यथाः—

हे आत्मन्! जब तक तूं इस वज्रलेप रागद्वेषसें पृथक् न होगा हरगीज़ सुखी नहीं हो सकता यथा शत्रु गृहके अन्दर रहे हुवे प्राणीकों अनेकजातिके रसवती भोजन खिलाए जाँय, उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोसें विभूषित किया जाय किन्तु कभी सुखी नहीं हो सकता चूंकें वह यह समझता है कि मुझे अवश्य ये दुष्ट दुःखमें दुःखी करेंगे तथैव तूं इन मूल दो शत्रुओंके वश पडा हुवा अनेक क्रियाकाण्ड करने पर भी हरगीज़ सुखी नहीं होसकता है इस लिये इन दुष्ट शत्रुओंकों पराजय करके अपने निज स्वरूपमें रमण कर

इस प्रकार माध्यस्थ भावना भाते हुवे घोर शत्रु रागद्वेषकों निर्बल कर निज आत्मीय स्वरूपकों प्रकट करनेमें एक अनुठेही प्रयत्नशील पुरुष ये धन्य है गुरु पुङ्गव! आप सदृश नर रत्नोसें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है पाठकवर्गो! अब मैं आपके "अप्रतिबद्धताका विशाल प्रभाव" इस विषयका किञ्चिद्विवरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

## ॥ अप्रतिबद्धता का विशाल प्रभाव ॥

प्रतिबन्ध रहित यानी परतन्त्रता रहित अर्थात् स्वतन्त्रतासें प्रत्येक कार्यमें कुशलतापूर्वक विहार (गमन) करना उसें "अप्रतिबंधता" कहते है

सज्जनों! यह तो प्रसिद्ध ही है कि "पराधीन स्वपने सुख नाहीं देख विचार करो मन मांही" जो प्राणी यावत् परतन्त्र रहता है तावत् इच्छित कार्य करनेकों सर्वथा असमर्थ है, मनशासें विरुद्ध किसी प्रतिबंधनामें रहना सासार महा दुःख स्पष्टतः (दृष्टिगोचर) है

स्वतन्त्र महात्मा जन इच्छित समय पर अपने निज नियम करते हैं अर्थात् इच्छा हो तब जाग्रित होते हैं इच्छा हो तब शयन करते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, भोजन करते हैं, जलपान करते हैं, स्वाध्याय ध्यानादि निर्जरा करते हैं

और दयावश परोपकारमें संलग्न रहते है तथैव खासकर आत्मिक स्वरूपमें निमग्न रहते हैं. कहनेका तातपर्य यह है कि सदा सर्वदा अपने इच्छित टाइमपर सकल कार्य करते रहते हैं.

यहां पर कोई जिज्ञासु महात्माका प्रश्न है की स्वतन्त्रता ही यदि आनंदकारी है तो व्यावहारिक व धार्मिक दोनो ही व्यवस्थाएं नष्ट भ्रष्ट होकर सकल जीव निर्पति वेल (सांड) के मुआफिक घूमते फिरेंगे और नाना प्रकारके अनर्थ करने लगेंगे और इस अवस्थामें पुत्रको पिताकी आवश्यकता तथा शिष्यको गुरु महाराजकी जरूरत नहीं होगी अतः यह त्रिकल्परूप दृढ नियम स्वीकृत श्रेणीमें कैसें संघटित हो सकेगा.

प्यारे जिज्ञासु महाशय ! आपका यह कहना अवश्य ही विचारणीय है इतना ही नहीं किन्तु अनुमोदनीय भी है. देखिये थोडे ही शब्दोंमे निवेदन कर देता हूः—

मैं पहिले ही प्रकट कर चुका हूँ कि **"मनशाह से विरुद्ध किसी प्रतिबद्धतामें रहना सरासर महा दुःख चस्पदीद है"** इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञानियोंकी दृष्टिमें हितकारी उपादेय साधनोके हेतु पर तन्त्रताका होना स्वतन्त्रताही में शुमार है हमने यहांपर उसही परन्त्रताका निराकरण किया है कि जिससें अनेक दुःख प्राप्त होते हैं. विद्वज्जनेषु किमधिकम्.

खासकर गृहस्थोंके जगद्जाल अर्थात् दाक्षिण्यतासें पृथक् रहना चाहिए कारण की ज्यों २ गृहस्थोंके प्रपञ्चोमें खुशियाली मनाते हैं त्योंही त्यों शुद्ध क्रियासें अधिकाधिक विमुख होना पडता है इतनाही नहीं किन्तु हमारे गुरु भाई व शिष्य वर्गसें भी कइवार कटाकटी उठाना पडती है. अफसोस ! आजकल अधिकांश मुनिवर्ग गृहस्थोंकी किस प्रकार दाक्षिण्यता रख रहे हैं कि जिसें देख दृढ धर्मानुरागी धर्मरूपी मैदान पर खडे हुवे थरायर थर्रा रहे हैं. आज इस निंदनीय दाक्षिण्यता (लिहाज़) ने इतना

जुलुम किया है कि कइवार हमारे पवित्र गुरुमहाराजकी निर्मल आज्ञाको नष्ट भ्रष्ट कर खुशामदी और मालदार मनुष्योंके पीछे २ घुमाती है देखिये:—

किसी मुनिराजको जब अपने रागाधकी प्रार्थना आती है उस वख्त समयज्ञ गुरुवर्य कितना भी रोकटोक क्यो न करें किन्तु वे गृहस्थोंके अनुयायी उसका सर्वथा उपेक्षण कर यह प्रकट करते है कि हमारे अमुक श्रावक वगैर नहीं चल सकता उनका दिलता रखना ही पड़ेगा चाहे आप खुश होकर इजाजत दे या नाराज होकर हमें तो जाना ही होगा इत्यादि

'हायहाय' कितना जुलम कितना अन्याय, कितना गजब

इस प्रकार निर्लज्ज शब्दोंको उच्चारण करते तनिक भी शरम नहीं आती हम नहीं समझ सकते कि इस प्रकार दुराचरण करते हुवे अपने मुनि पदको किस प्रकार उच्च शिखा पर पहुँचा सकेंगे इस कुत्सित व्यवहारके दृढानुरागी महात्मा लोग तीर्थंकर व गुरुमहाराजकी आज्ञाका उल्लंघन करते हुवे गृहस्थके पीछे दौड़ पड़ते है वहा जानेपर कइ एक प्रकारके सदोषी वस्त्र, पात्र, शयनादि वस्तुएं उपयोगमें लाते है तथा आधाकर्मी आदि हलाहल ज़हरसे भरा हुवा आहारपानी खाकर दुर्गतिका निगरू बंधन करते है—बहारे वाह कलिकाल तेरी बलिहारी है अहा! धन्य हो मुनिराजों!! आपको मुहुर्मुहु धन्य हो!!! आपने अपने नरभव रत्नका खूब ही सदुपयोग किया

भव्य मुनिराजोंका तो कुछ आचरण ही और है वे महानुभाव धनवान् और गरीबको समान समझ कर तथा खुसामदी और तद्भिन्नको सदृश मानकर इसही सिद्धान्त पर निर्भर रहते हैं कि **"सुनना सबकी करना दीलकी"** इसही तरह हमारे चरित्र नायक गुरुवर्य गृहस्थकी दाक्षिण्यताको सर्वथा हटाकर स्वतन्त्रता पूर्वक अहर्निश सानंद विहार करते थे, इससे आपको कइ एक ऐसे २ उत्तमोत्तम गुण प्राप्त हो गए थे कि जो हमारे लेख सामर्थ्यसे बाहिर हैं तदपि उसमेंका एक सुन्दर नमुना पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करता हूं:—

## ॥ भविष्य वाणीका साक्षात् प्रभाव ॥

किसी एक समयका प्रस्ताव है कि रात्रीके पिछले प्रहरमें आप गुरुवर्य निर्भर निद्रामें शयन किये हुवे थे उस समय उत्तम गुणशाली स्वप्नमें देखते क्या हैं कि एक दिव्य श्वेत वर्णवाला गइयोका गोकुल मनोहर वाटिकामें फिर रहा है उसमें कइ एक गइयोंके छोटे २ सुन्दर बछुड़े प्रेम पूर्वक अपनी माताओंके शरीरमें लिपट रहे हैं इस गो समुदायमें कइ एक शान्त मुद्राधारी वृध्धा, कइ एक दिव्य कान्तिवाली तेजस्विनी युवा गइयें थीं और कइ एक जगतजन प्रिय अति सुन्दर बछड़ियेंथीं देखते ही देखते इस सुन्दर शोभाके गुरुवर्यके नेत्र खुल पड़े अर्थात् एकदम जाग उठे. जागृत होते ही बराबर आप दिल ही दिलमें विचारते हैं कि इस उत्तम स्वप्नका क्या रहस्य है. थोड़ी ही देरमें आप ने अपने ज्ञान बलसें उचित अर्थ स्थिर कर अपनी निस क्रियामें प्रवृत्त हो गये.

प्रातःकालमें जिस समय उद्योत श्रीजी ( जिसका कि जिक्र हम प्रकरण वशात् ऊपर कर आए हैं ) वंदनार्थ आये उस समय सविनय वंदना व्यवहार करनेके पश्चात् आप गुरुवर्यने अपनी सेवामें स्थिरता करनेका हुकुम बक्षीस किया. साध्वीजी आज्ञा पाते ही पूज्यपाद गुरुवर्यके सन्मुख दोनो करजोड़ मस्तक नमन कर बैठी हुई हैं इस अवस्थामें उन दोनोके परस्पर स्वप्न सम्बंधि जो २ वार्त्तालाप हुवा उसें प्रश्नोत्तरमें समुध्धृत कर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूं :—

**गुरुमहाराजः**—उद्योत श्रीः ! हमें गत रात्रीमें एक बड़ा सुन्दर स्वप्न संप्राप्त हुवा.

**साध्वीजीः**—स्वामिन् ! कृपापूर्वक फरमाईयेगा.

**गुरुमहाराजः**—ध्यान पूर्वक श्रवण करना.

**साध्वीजीः**—जी साहब ! फरमाईयेगा.

**गुरुमहाराजः**—हमने गत रात्रीके ब्रह्म मुहूर्तमें एक मनोहर श्वेत गईयोंका गोकुल देखा इत्यादि. आपने बड़े ही मधुर शब्दोंमें सविस्तार वह स्वप्न फरमाया.

**साध्वीजीः**—"सम्पूर्ण विपयको सुनकर मनही मनमे "अहाहा!" कैसा विचित्र सुन्दर स्वप्न है इसका गंभीर आशय क्या होगा इस अभिलापामें"—हे करुणारस भण्डार! अनुग्रह पूर्वक इसका फलितार्थ फरमाईयेगा.

**गुरुमहाराजः**—भद्रे! तुमही अपनी बुध्धि अनुसार कह सुनाओ

**साध्वीजीः**—हे मतापशाली पूज्य गुरुवर्य! मै तुच्छ बुध्धिधारका आप समान अद्वैत ज्ञानवन्त मुनि रत्नके सामने कथनको उतनी ही असमर्थ हूं कि जिस तरह चक्रवर्त्तिके सन्मुख पामर प्राणी कथन करनेको अशक्य होता है आनंद रसमें झिलानेवाले हे पूज्य गुरुवर्य! आपही अपनी अमृत वाणी द्वारा उपदेश कर कृतकृत्य कीजियेगा यही हार्दिक प्रार्थना है

**गुरुमहाराजः**—"दया लाकर"—हे विनयशीले! दत्त चित्त होकर श्रवण करना

**साध्वीजीः**—तहत्त स्वामी फरमाईयेगा

**गुरुमहाराजः**—पुण्यवते! गुरुदेवकी अतुल कृपासें तुमारी शिष्या समुदाय विस्तीर्ण रूपमें प्रफुल्लितावस्था अवधारण करती हुई प्रकट होगी पवित्र वीर शासनरूपी मनमोहन बगीचेमें विनय रसमें भरी हुई सुदीक्षित साध्वियें विचरती हुई दृष्टिगोचर होंगी उनके अनेक आबाल ब्रह्मचारिणी छोटी २ सुमनोहर दीक्षित बाल शिष्याएं शोभाको संप्राप्त होंगी तथैव गुणशालिनी सौभागिनी ( सधवाएं ) साध्वियें एव शान्तरस धारिणी कइ एक पुण्यात्मा वैधाए होंगी इस विध नाना प्रकारकी विचित्र साध्वियोंसें यह शासनरूपी सुन्दर बगीचा खिल उठेगा इत्यादि विस्तार फरमाया

पाठकवरों! वे महानुभावा शासनोद्योतकारी तथा अपने असीम उपकारी गुरुवर्यका उज्वल यशः विस्तीर्णकारी एवं अपनी पुण्याईका तीव्रोदय

समझ इस प्रकार आनंद सागरमें निमग्न हुई कि हर्ष नीरसें नैन गद २ भर आये इस समय आनंदका पारावार नहीं था. इस हर्षित अवस्थामें साध्वीजी दोनो कर जौड़ सविनय प्रार्थना करते हैं:—

साध्वीजीः—धर्म धुरंधर, धर्मावतार, **भूत भविष्य और वर्त्तमानके उचितवेत्ता हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर! आप हमेंशां जयवन्ता वर्त्तो,** आपके मुखकमलमें अमृत रस सदैव निवास करो; आपका उत्तम गुणशाली स्वप्न शीघ्र ही फल फूलोंसें खिल ऊठो. हे नाथ! आपका पवित्र नाम इस अखिल संसारमें चिरकाल स्थित रहो. हे स्वामिन्! आपने जो कुछ फरमान किया है वह मेरे समस्त अङ्गोपाङ्गके अशेष अवयवोंमें भ्रमण कर गया है आपके फरमानानुसार यह उत्तम सौभाग्य अवश्य ही संप्राप्त होगा ऐसा मुझे सुदृढ़ विश्वास है हे पूज्य गुरुवर्य! मुझमें यह सामर्थ्य नहीं की आपके अगण्य गुणोंको प्रदर्शित कर सकूं. हे **प्रभो! आप पर मुहु-मुहु धन्यवादकी अविरल वर्षा करती हुई चरण शरण रूपी आनंद सागरमें निमग्न होती हुं.**

इस प्रकार आनन्दित वार्त्तालाप होनेके पश्चात् विनय पूर्वक वंदना नमस्कार कर साध्वीजी अपने स्थान पर प्रस्थान कर गए.

सज्जनों! आपके अपूर्व स्वप्नके **महत्फल रूपी भविष्य वाणी** आज़ हम साक्षात् अनुभव कर रहे हैं कि आपके पवित्र समुदायमें **उद्योतश्रीजीकी शिष्या सन्तान**क रीब २ ंफ्रेंसोकी संख्यामें विभूषित हो रही हैं. वे महानुभावाएं पवित्र गुरु आज्ञासें विभूषित हुई २ शासनमें चारों ओर अपने ज्ञान द्वारा हजारों भव्यात्माओंका उध्दार कियाव कर रही हैं. **यह उनही महात्माका अतुल प्रताप है**—इस छोटेसे दृष्टान्तसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप पूज्य गुरुवर्य अवश्य ही एक विशाल ज्ञानी थे. अहाहा धन्य है! गुरुवर्य आपकी **प्रतापशालिनी वाणी** पुनः २ धन्य है.

वीर पुरुष महानुभावों ! इतने पर ही सतोष न कीजियेगा किन्तु आप स्वतन्त्र विचारोंमे ऐसे दृढ़शील थे की चाहे कितने ही उपसर्ग क्यों न आक्रमण करें, कितने ही संकट क्यो न सहना पडे किन्तु लेश - मात्र भी, चलविचल नहीं होते थे महानुभावों ! दृढताके ऊपर इस स्थलपर मुझे एक **कुतुहली व्यावहारिक दृष्टान्त** स्मरण होता है जो कि हमें दृढशील बनानेमें एक परमोपयोगी होगा वही रसिक कथा पाठकोंके अभिमुख करनेमें प्रयत्नशील होता हुवा दत्तचित्त होकर पढनेकी सूचना करता हूँ:--

## ॥ कुतुहलमें गुणाकर ॥

किसी एक विशाल शहरमें एक प्रतिष्ठित साहूकार रहता था धन धान्यादिसें परिपूर्ण पूरित था किन्तु सन्तानकी अप्राप्तिके हेतु खिन्न चित्त रहा करता था दैवयोगसें उसके वृद्धावस्थामें एक पुत्र प्राप्त हुवा जन्म महोत्सवादि बडे ही समारोहसें किये

एक समय साहूकारने यह विचार किया कि बच्चेको मधुर रस प्रायः हानिकारक होता है अतः इसें इस समय कतई रोक देना उचित है, होंशियार हो जानेके बाद कुछ हर्ज नहीं यह सोच उस बच्चेको ऐसा भय डाल दिया कि **"बच्चे मीठा खानेसें मनुष्य मर जाता है अत. तूं मीठा कभी सेवन मत करना"** यह मेरी हित शिक्षा दृढता पूर्वक अङ्गीकार करना पुत्र उसही तरह आचरण करने लगा जब कभी कोई उसें कहे कि बच्चे यह मीठा खाले तब वह ठीक यही उत्तर देता है कि **"मीठा खानेवाला मर जाता है"** अतः मै हरगीज़ नहीं खाता सज्जनों ! इस प्रकरणको यही पर छोड द्वितीय प्रस्तुत विषया भिन्न प्रकरणका विवेचन करता हूँ

सेठने यह विचारा कि मेरी वृद्धावस्था है इस लिये पुत्रका शीघ्र ही विवाह कर बेटे बहुका सौभाग्य अनुभव कर लेना चाहिये यह सोच बाल्यावस्थामें ही किसी एक प्रसिद्ध नग्रमें आबरूदार धनाढ्य सेठके यहा विवाह कर दिया अब ये सर्व सानंद निवास करते हैं

काल सर्व भक्षीकी उपाधीसें उपमित होनेके कारण उस पुत्रके मातापिताओंको भी अपने ताइनातमें किये अर्थात् वह सेठ और सेठानी दोनोने भवान्तरमें कूच किया पुत्रकों मीठा खानेकी रोंकटोंक की थी उस असावधानावस्था हीमें रखकर प्रस्थान कर गए. अस्तु अब यह बालक और इसकी स्त्री दोनो ही रह गए समयानुसार यह सेठ पदवीकों प्राप्त कर अपने अनेक सेवकोंके साथ सुख पूर्वक निवास करता है.

एक समयका प्रस्ताव है कि इस सेठकी स्त्री अपने पितृगृह (पीयर) कों गई हुई थी इस वख्त इसें अपने घर लानेकी प्रबल इच्छा प्राप्त हुई अतः अनेकाडंबरसें अपनी अपनी पत्निकों लेनेके लिये श्वसुर गृह (सुसराल) कों जा पहुँचा प्रिय वाचक वृन्दों! अब दामाद (जमाई) जीकी किस २ प्रकार आगत स्वागत होती है इस विचित्र लीलाकों सावधान होकर पढियेगा.

यह लोक प्रसिद्ध है कि दामादके लीये अनेक प्रयत्न कर मिष्टानादि विविध प्रकारके मनमोहन भोजन बनाये जाते हैं चाहे अमीर हो चाहे गरीब हो, इसही तरह यहां पर भी उन जमाइजीके लिये अनेक रसवती भोजनोंकी तैयारी की गई उसमें अति स्वादिष्ट केरीपाक (आम्रमुरब्बा) भी था.

जिस समय वे भोजन करने आसन स्थित हुवे उसही वख्त सर्व भोजनकी दरियाफ्त की. पत्नि भ्राता (शाला) ने सर्वके नाम कथन करते हुवे सर्व प्रकारके मिष्ट भोजनोंकों मात्र मीठेके नामसें ही व्यपदेश किया सुनते ही प्राहुणेजीने हुकुम फरमाया कि मीठा २ सर्व दूर कर लो शेष भोजन रहने दो.

शालेने बहुत कुछ समझाया किन्तु अपने निज़ हठमें दृढीभूत होनेसें कुछ भी स्वीकार न किया तब उनके कथनानुसार सर्व मिष्टान निकाल लिया, किन्तु केरीपाक विशेष रस संयुक्त होनेसें उसका कितनाक रस थालमें ही लिपटा रह गया दामादजीने अनुक्रमसें भोजन करना शुरु किया **"होनहार सदैव बलीयशी है"** इस न्यायानुसार उसका हस्त कमल उस रसमें जा गीरा भोजनके प्रवृत्ति नियमानुसार अङ्गुलिया चाटने लगा रसास्वादन होते

ही अपूर्व आनंद वश होकर मन ही मनमें विचारता हुवा भोजन कर अपने मुकाम पर विश्रामित हुवा

रात्रीके समय अपने शयन गृह ( सोनेका कमरा ) में पहूँचा वार्त्तालाप करते २ सेठजीने अपनी पत्निसे पूछा कि आज भोजनमें चित्तको एकदम तृप्त करने वाली कौनसा रसवत्ती पदार्थ थी मुझे वही अमृत भोजन इस ही वख्त लाकर समर्पण कर

**पत्नि:**—स्वामीनाथ ! वह माधुर्य रसा पूरित केरी पाक था जब आपको इतनी इच्छा है तो उस वख्त भाइ साहेबने बहुत मनुहार की थी तब आपने क्यों न स्वीकार किया अब मै वह पदार्थ इस वख्त कहासें लाऊ रजनी व्यतीत हो जाने पर आपकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूंगा

**पति.**—अरे प्रिये ! सचमुच ही मेरा पिता शत्रु था कि जिसने बाल्यावस्थासें ही मुझे ऐसे मनमोहन रसवती भोजनसें वञ्चित रक्खा प्रिय पत्नि ! यदि तू ला दे तो उत्तम है वरना मुझे वह स्थान बता दे मैं अपनी इच्छाके प्रबल वेगको रोकनमें सर्वथा असमर्थ हूँ

**पत्नि:**—प्राणनाथ ! मै तो लज्जावश उस स्थान पर इस समय नहीं जा सकती देखीये भोजन गृह ( रसोडा ) में एक छीका लटकर रहा है उस पर एक मिट्टीकी स्वछ हन्नी केरी पाकसे आपूरित हो रही है उस्मेंसें जितनी इच्छा हो पानकर अच्छी तरह तृप्त हो जाईयेगा किन्तु भोजन गृहके बाहिर ही मेरे मातपिता वगेरा शयन किये हुवे है उनका पूर्ण खयाल रखियेगा

सज्जनों ! इच्छा एक ऐसी चीज है कि जो आगे पीछे कुछ भी नहीं सोचन देती इस वख्त अर्द्ध रात्री अपने निज स्थान पर समारूढ़ हो रही है वह केरी पाककी प्रबल इच्छावाला एक लाठी लेकर भोजन गृहमें जा पहुँचा हे पाठकगणों ! देखिये ज़रा इस विचित्र घटनाको सावधानतया पढियेगा

वहा पर देखते क्या हैं की माला बहुत ऊँचा है हस्त पहुँचनेका असंभ

लक्षण सम्मुख उपस्थित हो रहा है तब आपने करकमलस्थ लकड़ीसें हंडीके नीचे शुराक कर दिया अब मुंह पसारे हुवे रसपान कर रहैं हैं जब की आप पूर्ण तृप्त हो गए तब हन्डीसें अपनी मातृ भाषामें कहने लगे "**हाँमोजी बस करो ने बस करो**" इस प्रकार दो तीन वार कहा किन्तु हण्डी क्या समझ सकती थी अतः उसकी रसधारा वदस्तूर प्रचलित रही. अनेक वार कहने पर भी जब रस प्रवाह शमन न हुवा तब एकदम तमोगुणसें प्रज्वलित होते हुवे अपनी प्रबल शक्ति द्वारा हण्डी पर दण्ड प्रहार किया कि जिसमें हंडी छिन्न भिन्न हो गई और उस्मेका समस्त रस उसके शरीरपर आ लिपटा.

इस समय शरद ऋतु अपनी प्रचण्ड शक्तिकों इस प्रकार विस्तीर्ण कर रही थीं कि सात २ पुट स्फोटन कर हृदय विहूल दशाकों संप्राप्त करती थी इस अवस्थामें वे जमाईजी जिसके कि केरीपाकका रस चारों ओर लिपटा रहा है जाडेके कारण एक रूई गृहमें जालेटे अर्थात्त एक रूईके कोठेमें दपट कर सो गए **यद्भावितद्भवत्येव**" इस न्यायके अनुसार कितनेक तस्कर रूई चुराने आ पहुँचे त्वरावश बडी २ गठडियें बांधकर कूंच हुवे उनमेसें एक गठडीमें आप हज़रत भी बंध गये थे किन्तु रूईकी गर्मीकें कारण कुछ भी भान न हुवा.

चोर लोग गठडिये लेकर ज्यों ही शहरके वाहिर हुवे की पोलिस आ पहुँची उन चोर लागोंने जहां की कसाईकी गडरियें चर रही थीं वहां गठडिये फेंक दी और अपनी २ जान लेकर भाग पडे चौरोंकों भगे हुवे जान पोलिस वापिस लौट गई.

प्रातःकालमें जिस वख्त कसाई भेडियोंको लेने आया उस वख्त क्या देखता है कि एक मनोहर श्वेत वालवाला सुन्दर भेडिया लेट रहा है—महानुभावों ! यह वही भेडिया है कि जिसका शरीर केरीपाकके रससें संलग्न हो रहा है तथा उस पर चोतर्फ श्वेत रूई लिपट रही है—देखते ही इस सुन्दर भेडियेके कसाईने तत्काल गोदमें उठाकर कूंच किया इस समय उन सेठजीकी निद्रा पृथक् होनेसें जागृतावस्थाकों संप्राप्त हुवे कसाईके सर्व चिन्ह देखकर

एकदम घबराते हुवे कहते हैं हे जाई! जरा दया करना मै जेमिया नहीं हू किन्तु मनुष्य हूँ इस पामर जीवकी रक्षा करना इस कथनपर कसाईने गोर कर उसे मुक्त किया

अब यह दामादजी शर्मिन्दे होते हुवे तालावमें स्नान मज्जनकर स्त्रीके पास पहुँचे स्त्रीने पूछा हे स्वामिन्! रात्रीजर कहा व्यतीत किया लज्जावश कुछ जी उत्तर नहीं देता है किन्तु पत्निके अत्यन्ता ग्रहसें अपनी गुजरी हुई नौवत सर्व कह सुनाई स्त्रीने वहुत कुछ उपहास किया अव ये दोनो दम्पति वहासे प्रस्थान कर अपने शहरमें संप्राप्त हुवे

महानुजावों! इतनी तकलीफ होने पर जी इसने यह दृढ किया चाहे सो हो किन्तु केरीपाक नामक मीठा अवश्य खाना चाहिये इतना ही नही किन्तु अव यह इस कदर शोकीने हुवा कि अपने सुसरालसें मिव्वे जर श केरीपाक मंगवाता है और खूव आनंद पूर्वक अपना काल निर्गमन करता है गुणानुरागियों! ज़रा देखिये एक और जी कौतुक अनुजव कराता हूँ

कालान्तरसें उस साहूकारकी स्त्री पुनरपि उसके पितृहकों गई और उसही तरह पीछेसें यह लेनेकों गया तथा तथैव जोजन सामग्री तैयार हुई उस्में श्रीखण्ड (शीखरणी) नामक मिष्टान जी विद्यमान था यद्यपि यह मिष्ट पदार्थका प्रेमी हो गया था किन्तु सर्व मिष्टानोका तो अव तक जी अप्रेमी ही था अतः सर्व मीठा थालमेंसें निकलवा दिया पूर्ववत् इसें श्रीख-ण्डका किञ्चित् स्वाद आया तव प्रथमावस्थावत् अपनी स्त्रीको केरीपाकके अनुसरि श्रीखण्ड लानेका कहा किन्तु त्रपावश उसकी इनकारी पर वह खुद रवाना हुवा इस वख्त जमाईजीके नेत्रोंमें कुछ रातिदा (रात्रीमे नहीं दिखना) आने लग गया था वास्ते उसका स्त्रीके कथनानुसार पगडीका एक पल्ला अपने सोनेके पलङ्गपादसें बाध दिया व दूसरा करकमलमें लेकर रवाना हुवा और क्रमश उसही स्थान पर जा पहुँचा.

प्यारे पाठकों! शयनगृह और जोजन गृहके अन्तर एक गली पडती

थी दैव योगसें उस गलीमें निकलती हुई एक भेस पगड़ीके मध्य भागको निगल गई. जब वह दामादजी श्रीखण्डमें पूर्ण तृप्त होकर वापिस लौटने लगे कि पगड़ीका टूटा पल्ला हाथमें आ गया दिलमें बड़ा भारी दुःख हुवा किन्तु किया क्या जाय विचारा लकड़ीका सहारा लेकर चलने लगा. भोजन गृहसें बाहर निकलते ही पेरमें इस प्रकार ठोकर लगी कि सासूजीके छाती पर धाकसा जा गिरा.

सासूजी एकदम चमक कर चिल्लाने लगी **"दोड़जो रे दोड़जो चौर है २ चौर है"** यह घबराहटका शब्द श्रवण कर सर्व कुटुम्ब जाग ऊठा अब अंधेरे ही अंधेरेमें जमाईजीको पकड़ कर उलटी मुसकीयें बांध एक स्तम्भसें जकड़ दिये अब ऊपरसें **धड़ाधड़ दण्ड प्रहार** करने लगे जमाईजीके तो देवता कूंच हो गये अर्थात् होंस हवाल बिगड़ गए घोर दुःख पूर्वक चिल्लाने लगा **" अरे मैं थांको जमाई हूँ, बापरे मत मारोरे, छोड़ोरे, मरूंरे, हाय २ मने मारेरे "** आदि अनेक विलापात करने लगा लेकिन वहां कौन सुनता है वे तो अविछिन्न तया धड़ाधड़ मार रहे हैं इस दुषमावस्थामें जमाईजीकी खाटली हो गई अर्थात् हड्डी २ टूट गई.

प्रातःकाल होते ही सब लोगोंने देखा और यह कहने लगे अहो ! ये तो अपने जमाईजी हैं गजब हो गया अब क्या किया जाय सब लोगोंने मिल कर क्षमा माङ्गी. प्यारे पाठकों ! जमाईजी तो **मरण तुल्य** हो गए इधर एक तर्फ तो सबको दुःख होता है दूसरी तर्फ इतनी हंसी छूटती है कि उदरमें समाती नहीं **मारे हंस २ कर लोटपोट हो रहे अस्तु.**

दामादजीका माकुल इलाज़ कर वाया गया पुण्योदयसें शारीरिक व्यथा दूर हुई. स्वास्थ्य ठीक हो गया इस समय ये दोनो दम्पति पूर्ववत् अपने गृह पर संप्राप्त हुवे अब आप खास कर केरीपाक और श्रीखण्डको खूब सेवन करते हैं इतना ही नहीं किन्तु सर्व प्रकारके मिष्ट भोजन सेवन करते हुवे आनंदपूर्वक निवास करते हैं.

प्यारे मुमुक्षुओ! आपको इस कौतुकी लघु दृष्टान्तसे यह सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि वह साहूकारका लड़का उन मिष्ट पदार्थोंमें किस प्रकार आसक्त हुवा था कि जिससे अनेक प्रकारके कष्ट* गुजरने पर भी वह उन उत्तम भोजनोंके सेवनसे विमुख न हुवा

इसही प्रकार प्राणी मात्रको सामायक, पौषध, प्रतिक्रमण, देशव्रत, महाव्रत, नौकारसी, एकाशन, निविगय, आँयबिल, उपवासादि तपस्या; पठन पाठन, देव दर्शन, गुरु दर्शन, स्वोपकार, परोपकार, ज्ञान, ध्यान और योगाभ्यासादि क्रियाओंसें कदापि स्खलित नहीं होना चाहिये इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक उचित कार्योंमें ऐसा सुदृढ रहना चाहिये कि चाहे प्राण भी क्यों न चले जाय किन्तु स्वीकृत नियमसें स्वप्नमें भी च्युत न हों **महान् पुरुषोंका यही विजयकर अटल सिद्धान्त है.**

गुणशीलों! इसही प्रकार हमारे वे पूज्यपाद अपने अप्रतिबद्ध विहारमें इस प्रकार सुदृढ़ थे कि इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र भी उन्हे चलविचल करनेमें सर्वथा असमर्थ थे

अहाहा! धन्य हो मुनि पुङ्गव! इस पञ्चम कालमें चतुर्थ कालका किञ्चित् रसास्वादन करने व करानेमें आप भी एक **अनुठेही मुनि रत्न** प्रतीत होते है आपका **जगत प्रिय अप्रतिबद्ध विहार बुद्धिजन प्रशंनीय है** इतना ही किन्तु **विश्व अनुमोदनीय व अनुसरणीय भी है.**

महानुभावों! आपने अपने पवित्र मानव भवको सार्थक करते हुये अनेक भव्यात्माओंका अकथनीय उपकार किया आपने मुनि पद धारण कर ज्ञान, दर्शन और चारित्रको इस प्रकार उज्ज्वल किये कि जिसकी बराबरी विरले पुरुष ही कर सकते होंगे आपकी **भव्य शान्त मुद्रा** चिरकालीय क्रोधरूपी

* अनेक कष्टोंमेंसे एक दो इसमें उद्धृत भी करा दिये गए हैं। शेष अन्यत्र स्थानमें जानना चाहिये.

हलाहल विषको तत्काल नष्ट भ्रष्ट कर देती थी आपका गाम्भीर्य गुण जगत जनको बलात् आनंद सागरमें निमग्न करता था इत्यादि. सज्जन पाठको! **अनेक दिव्य गुण विभूषितये भवोद्धारक** ३६ वर्ष ४ माह १४ दिवश निर्मल चारित्र पालन कर भूतलमें अपना मनमोहन पवित्र नाम चिरकालीय कर इस संसार ( भव ) से चलबसे.

## ॥ भवान्तरमें उत्तम प्रस्थान ॥

**वे धर्मावतार इस पृथ्वी मण्डलपर अपने प्रशस्त गुणोंका विशाल प्रभाव विस्तृत करते हुवे** वीर सम्वत् २४१२ विक्रम सम्वत् १९४२ माघ कृष्ण शुभ चतुर्थी शनिश्चर वार बमुजिब तारीख २३ जान्यूआरी सन् १८८६ के प्रातःकाले शुभ योगमें मरुस्थलके विशाल शहर योधपुर राज्यान्तरगत सुप्रसिध्द नगर फलवर्द्धि ( फलोदी ) में अपनी देहको त्याग कर चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, और देहादि समस्त पदार्थोंका त्रिविध २ त्याग कर **परलोक पधार गए.**

अररररर! जिस प्रकार जगदाधार वीर परमात्माके मोक्षपधारने पर हमारा भवोध्दारक मार्तण्ड अस्त हो गया जिससे चारों ओर अन्धकार छा गया था तथैव हमारे अत्यासन्नोपकारी पूज्य गणाधीश्वरके परलोक पधार जानेसे **हमारा समुदायरूपी पृथ्वीतल घोर अन्धकारसे पूर्ण आच्छादित हो गया था** इतना नहीं किन्तु जैन समाजके अधिकांश हिस्से रूपी भूमण्डलमें एकवार तो अन्धकारने अवश्य ही अपना विकराल रूप पसारा था इस असह्य दुःखावस्थामें गुणानुरागी लोग शोक सागरमें चारो ओर गोता मारने लग गए थे, आपकी वियोगावस्थाके खास समयमें **अकथनीय दुःखका होना** यह तो स्वभाविक ही सिध्द है किन्तु **आज भी जब हम अपने उन पूज्य प्राणाधारके वियोगावस्थाका दिलि चिन्तन करते हैं कि तत्काल ही हमारे नयन युगल गद २ भर आते हैं**

और उनमेंसे अश्रुपातोंकी अविरल धाराए छूटने लगजाती हैं इसमें संदेह नही कि एक बार तो भक्त जनोको वैसा ही सदमा पहुँचा कि जैसा वीर परमात्मोके लिये गौतम स्वामीको पहुचा था यह प्रसस्त प्रेमका ही प्रभाव समझा जा सकता है

हमें प्राण वियोगसे भी असीम दुःखके साथका साथ ही अथाह हर्ष भी प्राप्त हो रहा है कि पूज्य महर्षि अपने अनूठे जीवनको कृतार्थ कर पृथ्वी तलको पवित्र करते हुवे अनेक अपूर्व गुण रत्नोका भरपुर भण्डार लेकर भवान्तरमें पधार गए

यह तो स्वतः सिद्ध है अर्थात् दृढ अनुमान है कि ऐसे अद्वैत योगीश्वर जघन्यमें उत्तम वैमानिक पदसे विभूषित हुवे होंगे तथा उत्कृष्टतः महा विदेहमें परम परमात्मा अर्हन् देवके चरण शरण हो गए होंगे और वहा उनकी निश्राईमें अपने आत्म गुणोंमें रमण करते हुवे शीघ्र ही निष्ठितार्थ पद ( सिद्ध पद-मोक्ष ) को संप्राप्त कर अजर, अमर, अविनाशी निरञ्जन निराकार ज्योति स्वरूपमें रमण करते हुवे अनन्तकाल पर्यन्त अनंते दिव्य सुखोमें झीलते रहेंगे

महानुभावों! मैंने आन्तरिक भक्ति वश होकर अपने अल्प बुध्यानुसार स्वकीय आत्म लाभार्थ तथा अन्य भव्यात्माओंके हितार्थ ऐसे पूज्य गुणशाली गुरु महाराजके " संक्षिप्त जीवन चरित्र " को रचना कर अपने मानव भवको कृतार्थ किया

हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर! आपके दिव्य अगण्य गुण इस प्रकार विस्तृत हैं कि जिसका पारा वार नहीं मैं अल्पज्ञ तो क्या किन्तु सर्वज्ञ भी यदि अनेक मेंढ़ महा पारा पार पाना चाहे तो सर्वथा असमर्थ है यथाहि:-

## ( श्लोक )

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे ।
सुर तरुवर शाखा लेखनी पत्र मुर्व्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं ।
तदपि तव गुणाना मीश पारं न याति ॥१॥

भावार्थः—हे स्वामिन्! यदि अथाह समुद्र रूपी पात्र बनाकर उसमें सुमेरु पर्वत जितना कज्जलका ढेर किया जाय और पृथिविके बरोबर पत्र पर कल्प वृक्षकी प्रधान शाखा लेखनी ग्रहण यदि सरस्वती अपनी प्रबल शक्ति द्वारा समस्त कालमें लिखती ही रहै किन्तु तदपि आपके अगण्य दिव्य गुणोंका पार नहीं पा सकती है. अर्थात् आपके अद्भुत गुण अपरंपार हैं.

प्यारे सज्जनों! हमें यह सुदृढ विश्वास है कि हमारे साहित्यानुरागी पाठक श्रेष्ठ ऐसे उत्तम योगीश्वरके इस संक्षिप्त जीवन चरित्रकों पढकर मनन पूर्वक गुण ग्रहण करेंगे और उनके अनुसार आचरण करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण करेंगे.

प्यारे पाठक वरों! यह चरित्र पूर्ण करनेके साथ ही साथ मैं यह शुभ भावना भाता हूँ कि आप नाथका पवित्र नाम इसपृथ्वी तलमें सदैव जयवन्ता वर्त्तो

## ॥ शुभम् भूयात् ॥

ज्ञान रसिकों! अब मैं आपके प्रभावशाली जयन्तीका किञ्चिद्विवरण पाठकोंके अभिमुख करता हूँ आशा है कि आप सज्जन गण प्रेम पूर्वक पढ़ेंगे.

## ॥ प्रभावशाली गुरु जयन्ती ॥

निर्वाण कल्याणक ( काल प्राप्तक शुभ दिवस ) वा जन्म कल्याणकके शुभ तिथि पर प्रतिवर्ष अनेक प्रयोगोंसे दिव्य गुणोंकी प्रभावना करते हुवे शासनके उद्योतके साथही साथ आप खुद तपादि विशिष्ट गुणोंको अवधारण करे तथा अन्य भव्य प्राणियोंको नानाविध व्रत प्रत्याख्यान करवा कर उन के मानव भवको कृतार्थ करावें एवम् आराधन करनेवालेकी अनुमोदना करते हुवे वह पवित्र दिवस महोत्सव पूर्वक निर्गमन करे उसे **"जयन्ती"** कहते है

प्यारे पाठकवरों ! हमारे महान् अन्तराय कर्मके प्रबल उदयसें यह अपूर्व सौभाग्य आपके भवान्तर पधारनेके सत्ताइस वर्षोंके पश्चात् हमे संप्राप्त हुवा अर्थात् वीर सम्वत् २४४० विक्रम सम्वत् १९७० में आपके काल प्राप्तके निज स्थान ( **फलोदी** ) पर प्रथम जयन्तीका सुअवसर संप्राप्त हुवा

द्वितीय जयन्ति महोत्सव वीर सम्वत २४४१ वि सं. १९७१ में बड़े ही समरोहके साथ सुप्रसिद्ध शहर **विक्रमपुर ( बीकानेर )** में हुवा

तृतीय जयन्तीका पवित्र सौभाग्य वीर स २४४२ वि सं १९७२ में राजपूतानेके केन्द्रस्थान सुप्रसिद्ध **अजमेर** में बड़ेही समारोहके साथ संप्राप्त हुवा इसमें संदेह नहीं की यह दृश्य एक अवश्य ही दर्शनीय था

तीनो ही जयन्तियों में यथोचित पूजन प्रभावना, रथ यात्रादि उत्सव बड़े ही समारोहके साथ हुवे तथा, उपवास, आंबिल, एकाशन, रात्री भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, सामयक पौषध, प्रतिक्रमणादि नानाविध प्रत्याख्यान सेंकड़ों भव्यात्माओंने अवधारण करे अपनेमानव भवको कृतार्थ किये

यह प्रभावशाली जयन्ती दिन बदिन तरक्कीको प्राप्त हो रही है प्रथम जयन्तीमें द्वितीय अधिक उत्सवके साथ आराधन की गई तथा द्वितीयसें तृतीय विशेष महोत्सवके साथ आराधन कर अपना मानव भव पवित्र किया

गुरुदेवसें अहर्निश सविनय यही प्रार्थना है कि उन पूज्यपाद गणाधीश्वरकी जयन्ती प्रति वर्ष विशाल दिव्य स्वरूपमें वृद्धिगत होती रहे.

वाचक वृन्दों! अब मैं चरित्रनायक पूज्यपद गणाधीश्वर **श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब शासनाधीश्वर परम परमात्मा श्री महावीर स्वामीकी शुद्ध परंपरामें** किस प्रकार संलग्न हैं इसें प्रकाशित करनेके हेतु **शुद्ध गुर्वावली** संक्षिप्त रूपेण पदर्शित करता हूँ इसके साथही साथ पूज्य गुरुवर्यकी शीतल छायामें निवास करनेवाला **सुन्दर समुदायका** भी किञ्चित् परिचय देनेमें प्रयत्नशील होता हू.

## ॥ मोहन गुर्गावली ॥

जगत्पूज्य, जगद्गुरु, जगन्नाथ, जगदाधार, परम प्रभु, सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, पूर्ण ब्रह्म, त्रिकाल स्मरणीय चतुर्विंशतितम तीर्थंकर, अर्हदेव **"श्रीमन् महावीर परमात्मा"** हुवे.

तत्पदे चतुर्ज्ञानधारी, चतुर्दश पूर्ववेत्ता, द्वादशाङ्गी रचयिता, सम्यक्त्व रङ्ग-रङ्गिता, आत्म भावन परायणादि गुणैर्विभूषित **"श्री गौतमस्वामी"** किन्तु उनके समस्त शिष्य केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये अतः उनकी परंपरा नहीं चली इसही लिये वीर परमात्माके फरमानानुसार आपके **'पद पर श्री सौधर्मस्वामी"** हुवे ॥ २ ॥

तत्पट्टे **"श्री जम्बूस्वामी"** हुवे–आपके मोक्ष पधारनेके पश्चात् १ मन पर्यवज्ञान २ परमावधि ज्ञान ३ पुलाकलब्धि ४ आहारका शरीर ५ क्षपक श्रेणी ६ उपशम श्रेणी ७ जिनकल्प मार्ग ८ परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र ९ केवल ज्ञान १० सिद्धिमार्ग ये दश वस्तुए विछेद हुई॥३॥

तत्पट्टे **"श्री प्रभवस्वामी"** ४। तत्पट्टे दशवैकालिक कर्त्ता **"श्री**

शर्ममन्नवसूरी " ५। तत्पट्टे "श्री यशो भद्रसूरि" ६। तत्पट्टे श्री सम्भूतिविजयजी ७। तत्पट्टे उपसर्गहर स्तोत्र, आवश्यक निर्युक्ति, कल्प सूत्रादि अनेक ग्रन्थ कर्त्ता चतुदर्श पूर्वधारी द्वितीय लघु भ्राता "श्री भद्रबाहूस्वामी" हूवे ८। तत्पट्टे कोशा वैश्या प्रतिबोधक, प्रचण्डशील व्रतपालक "श्री सुस्थितसूरि" ९। तत्पट्टे श्री आर्य महा गिरी १० । तत्पट्टे द्वितीय लघु भ्राता श्री आर्यसुहस्तिसूरि हुवे ॥ ११ ॥

तत्पट्टे क्रोम्बार सूरि मन्त्रका जाप करनेवाले श्री स्थितसूरि हुवे जैन संप्रदायमें आप महानुभावसे कौटिक गच्छ सुप्रसिद्ध हुवा ॥ १२ ॥

तत्पट्टे श्री इन्द्रदिनसूरि १३ तत्पट्टे श्री दिन्नसूरि १४ तत्पट्टे जाति स्मरण ज्ञानवान् श्री सिंहगिरीजी १५ ॥

मध्यमें श्री वृध्दवादीसूरिके एक असाधारण न्यायाचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर हुवे आप श्रीने सुमनोहर मालव देशमें उज्जयनी नगरीके अन्दर माहाकाल नामक मन्दिरमें प्रभाविक श्री कल्याणमन्दिर स्तोत्रकी रचना की और उसके द्वारा शिवलिङ्गको स्फोटनकर परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथस्वामीका दिव्य बिम्ब प्रकट किया तथा राजा विक्रमको सदुपदेश देकर पवित्र जैन धर्मी बनाया—आप पूज्यने अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर जैन समाज पर परमोपकार किया है

तत्पट्टे बाल्यावस्थासें ही जाति स्मरण अवधारण करनेवाले श्री वज्रस्वामी हुवे आपके पश्चात् दशम पूर्व और चतुर्थ संहननादि विछेद हुवे आप बुद्धि विचक्षणासें वज्र शाखा प्रचलित हुई १६ ॥ तत्पट्टे श्री वज्रसेनाचार्य १७ तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि हुवे आप प्रभावशालीसें चन्द्रकुल स्थापित हुवा १८

तत्पट्टे श्री समंतभद्रसूरि १९ तत्पट्टे श्री देवसूरि २० तत्पट्टे श्री प्रद्योतन

सूरी २१ तत्पट्टे शान्तिस्तव कर्त्ता श्रीमान् देवसूरि २२ तत्पट्टे भक्तामरादि कर्त्ता श्रीमानतुङ्गसूरि २३ तत्पट्टे श्री वीरसूरि २४ ॥

इसके अन्तरमें लोहितसूरिके प्रखर विद्वान शिष्य **परम पूज्य श्रीमान देवर्द्धिगणि क्षमाक्षमण हुवे** आप विशाल ज्ञानीने **वल्लभी नगरीमें** समस्त आचार्यादिकोंको एकत्रितकर वीर निर्वाणके ९८० वर्ष पश्चात् **सर्व शास्त्र लेख प्रवृत्तिमें प्रचलित किये**—आप पूज्यका यह महानुपकार अखिल जैन समाजको चिर स्मरणीय है.

तत्पट्टे जयदेवसूरि २५ तत्पट्टे श्री देवानंदसूरि २६ तत्पट्टे श्री विक्रमसूरि २७ तत्पट्टे श्री नरसिंहसूरि २८ तत्पट्टे श्री समुद्रसूरि २९ तत्पट्टे श्रीमान देवसूरि ३० तत्पट्टे श्री विबुधप्रभसूरि ३१ तत्पट्टे श्री जयानंदसूरि ३२ तत्पट्टे श्री रविप्रभसूरि ३३ तत्पट्टे श्री यशोभद्रसूरी ३४ तत्पट्टे श्री विमलचन्द्रसूरि ३५ तत्पट्टे **श्री देवसूरि** आपसें **सुविहितपक्ष** प्रसिध्ध हुवा. ३६ तत्पट्टे श्री नेमिचन्द्रसूरि ३७ ॥

तत्पट्टे **श्री उद्योतनसूरीश्वर** हुवे. आपने **चौरासी गच्छोंकी स्थापना** कर श्री वीर शासनका अनुपम उद्योत किया. देखियेः—

आप महानुभावको एक अद्वैत विद्वान् समझकर अन्यत्रवासी मुनिराजोंके ८३ शिष्य आपकी सेवामें पठनार्थ हाज़िर हुवें अब ये सर्व छात्र सज्जन आगमोंका अभ्यास भलीव प्रकार करते हैं क्रमशः मालव देशके श्री संघके साथ पवित्र **तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी**की यात्रा कर अपने मानव भवको कृतार्थ किया, **ऋषभ जिनेश्वर**को वंदना नमस्कारकर वापिस लौटते समय **सिद्धवड़**के नीचे रात्रीमें स्थित रहे. मध्य रजनीमें आप क्या देखते हैं कि रोहणी नक्षत्रके विमानमें बृहस्पति प्रवेशकर रहा है यह शुभ अवशर देख आपने फरमाया कि इस वख्त ऐसा उत्तम योग है कि जिसके मस्तक पर हस्त स्थापन किया जाय वह बड़ी ही प्रसिद्धताको अवधारण करेंगा. यह

सुवचन सुनके ८३ ही शिष्योंने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप हमारे विद्यागुरु है हम आपहीके सेवक है कृपया हमारे पर ही हस्त स्थापन कीजियेगा तब सूरीश्वरजीने फरमाया वासक्षेप लेआवो उन शिष्योंने तत्कालही काष्ट व कन्मेका चूर्ण कर हाजिर किया गुरुमहाराजने उस चूर्णको मंत्र कर उन ८३ योंके मस्तकपर प्रक्षेप किया पश्चात् आपश्रीने अपनी अल्पायुष्य जान प्रातःकालमें ही अनशनकर स्वर्गवास पधार गए तदनन्तर आपके वासक्षेपीय शिष्य क्रमशः आचार्य पद पाकर विचरने लगे इस प्रकार आपके निज शिष्य श्रीवर्धमान सूरीश्वर सहित ८३ मिलाकर चौरासी गच्छ प्रचलित हुवे आप श्री उद्योतन सूरीश्वर चौरासीही महा प्रभावशाली आचार्योके सद्गुरु थे ३८ ॥

तत्पट्टे श्री वर्द्धमानसूरि हुवे आपने अपनी शक्ति द्वारा धरणेन्द्रको आराधन किया और श्री सिमन्दिरस्वामिके पास भेजकर सूरि मन्त्र शुद्ध करवाया. ॥ ३९ ॥

तत्पट्टे महा प्रभावशाली खरतर पद विरुदधारी जैन गगन मार्त्तण्ड श्री जिनेश्वरसूरि हुवे. आपका कितनाक निबन्ध यहां पर उध्दृत करता हूं:

एक समय आप अपने भ्राता बुद्धिसागरजी सहित मरुस्थलसे विहार कर गुर्जर देश ( गुजरात ) अणहिलपुर पट्टणमें पधारे वहा पर दुर्लभ राजा का पुरोहित शिवशर्म्मा ब्राह्मण जो कि आपका पूर्व मातुल ( मामा ) था उसें एक शब्दों में ही चमत्कार दिखलाकर उसके घर सानद निवास करते रहे

आपका शुभागमन सुनकरके चैत्यवासी ( शिथिलाचारी ) घबरा उठे उन्होंने यह सोचा कि ये धर्म चारी ज्ञानवान् और क्रियावान् है इन्हे किसी तरह निकलवा देना चाहिये वर्ना अपनी बड़ी दुर्दशा होगी यह विचार दुर्लभ राजाको जा जिमाया कि महाराज ! आपके पुरोहितके यहा चौर लोग

दिल्लीसें आकर रहे हुवे हैं उन्हे निकलवाना चाहिये सुनते ही राजाने तत्काल उस पुरोहितकों बुलाकर पूछा कि तुमारे घरमें चौर हैं ऐसा सुना जाता है उसने उत्तर दिया स्वामिन् कहनेवाले ही चौर हैं वेतो परम संवेगी, परम त्यागी, ध्यानी योगीश्वर हैं यह सुन राजाने उनके शुद्धाचार विलोकनार्थ उन महात्माकों बड़े ही सत्कारके साथ पदार्पण करवाया गुरुमहाराजने राज सभामें पधारते ही रजोहरणसें भूमि प्रमार्जन कर इर्या पथिक प्रतिक्रमी और अपनी कम्बली बिछाकर बिराज गए.

राजा इस श्लाघनीय आचारकों देखकर आनंदित होता हुवा कहने लगा कि अहाहा ! सद्गुरु इसही प्रकारके होते हैं चैत्यवासियोंके पतिताचार देख आप पूज्यपादकों प्रार्थना की कि हे जगत्पूज्य ! सद्गुरुका आचारोपदेश कहियेगा गुरुमहाराजने फरमाया राजन् ! मैं अपने मुखसें क्या कहूं तुमारे सरस्वती भण्डारमें सर्व मतके स्वरुप प्रकाशक ग्रन्थ विद्यमान हैं अतः यदि तुमारी इच्छा है तो निर्मल जलसे स्नान की हुई कुमारी कन्या द्वारा मङ्गवाना समुचित होगा. राजाने उसही तरह कुमारीकों सरस्वती भण्डारमें भेजी अनायास दशवैकालिक सूत्र ही उपलब्ध हुवा मान्यवरों ! वगेर बतलाए हुवे ही अचानक साधु आचारका ग्रन्थ मिलना यह भी आपका एक सुप्रभाविक चमत्कार है.

राज सभामें ग्रन्थ आते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि यह इन चैत्यवासियोंके हाथमें देकर इनहीसे बचाया जाय. अब वे लोग बाँच रहे हैं किन्तु साधुओंके सदाचारवाले पत्रके पत्र छोड़ने लगे यह विलक्षण घटना देख गुरु महाराजने फरमाया राजन् ! तुमारी सभामें दिनकों ही चौर निवास करते हैं इत्यादि सुन राजाने कहा आपही वांचियेगा. गुरुमहाराजने फरमाया इस अवसरमें मेरा वांचना उचित नहीं तुमारे निष्पक्षपाती विद्वान् ब्राह्मणोंसे ही बचाओ.

ब्राह्मणोंने यथार्थ वांचकर सभाकों श्रवण कराया सकल समाज सहित

सुनतेही राजाने अति प्रसन्न होकर कहा "**अतिखराएते**" ये बड़े खरे हैं (**विशुद्ध दृढ हैं**) इसही वख्तसें अर्थात् वीर सम्वत् १५५० विक्रम सं. १००० में **दुर्लभ महाराजाकी महा सभामें** पराजय हुवे चैत्यवासियोंकों "**कुंवला**" नामसें व्यपदेश हुवा और **परम पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् जिनेश्वरसूरिश्वरकों खरतर विरुद महा पदसें** विभूषित किये ॥४०॥

तत्पट्टे **श्री जिनचन्द्रसूरि** आपने दिल्ली शहरमें बहुतसे श्रीमालियोंकों व कइएक राजवंशियोंकों प्रतिबोध देकर शासनकी प्रभावनाकी जिन राज वंशियोंकों आपने श्रावक बनाये उनका **महतियान् गौत्र** स्थापन किया इस अवसरमें पद्मावती देवी प्रकट होकर प्रार्थना करने लगी कि हे पूज्य गुरुवर्य! "**जिनचन्द**" यह नाम बड़ाही प्रभावशाली है अतः आपकी शुद्ध परम्परामें चौथे पट्ट पर अवश्य देते रहियेगा ॥ ४१॥

तत्पट्टे आप महानुभावके लघु भ्राता महा प्रभावशाली **श्री अभयदेवसूरीश्वर** हुवे आपने शासन देवीकी प्रार्थनासें **प्रभाविक जयतिहुण स्तोत्र**की अपूर्व रचना कर स्तम्भनक महा तीर्थ प्रकट किया तथा **नौ अङ्गोकी अपूर्व संस्कृत टीका** कर जैन समाजपर अविस्मर्णीय उपकार किया आपने प्राकृत और संस्कृतके अनेक ग्रंथोंकी रचना की है ॥४२॥

तत्पट्टे **श्री जिन वल्लभसूरि** हुवे आपने संघ पट्टादि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की अनुमान दश हजार बागड़ियोंकों प्रतिबोध देकर श्रावक बनाए चित्रकूट नगरमें **चामुण्डा देवी**कों प्रतिबोध दिया आपके सदुपदेशसें अनेक जिन भुवनोंमें यह पृथ्वी विभूषित हुई इस प्रकार प्रभाविक समझ शासन देवीने पूज्य गुरुवर्यसें यह प्रार्थना की कि अबसे आपकी पट्ट परंपरासें आचार्यके नामके पूर्व प्रभावशाली "**जिन**" शब्द अन्वित करते रहियेगा

आप कृपावतारसें **"मधुकर खरतर शाखा"** प्रचलित हुई. **यह प्रथम गच्छ भेद हुवा.** ॥ ४३ ॥

तत्पट्टे चौरासी गच्छ शृँगारहार जंगम युगप्रधान भट्टारक दादासाहेब **श्री जिनदत्तसूरिश्वर हुवे.** उन प्रतापशाली वीर पुरुषका संक्षेपतः विवरण इस स्थल पर उध्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँ:—

धंधुका नगर निवासी हुंबड़ गोत्रीय वाछगमन्त्री पिताके कुलमें वाहड़-देवी मातेश्वरीके रत्न कुक्षीसें वीर सं. १६०१ विक्रम सं० ११३१में **सोमचन्द** नामक सुपुत्र समुत्पन्न हुवे. आपने परम वैराग्यतासें वीर सं० १६११ वि०सं० ११४१ में धर्मदेव उपाध्यायजीके पास दीक्षा अङ्गीकार की

एक समय सारङ्गपुर नगरमें आप गुरुवर्यने कुंअरपाल उपाध्यायजीकों अनशन करवाया जिसके प्रतापसें वे देव पदकों संप्राप्त हुवे आचार्य पदवीके प्रथम ही उस देवने प्रकट होकर कहा कि सोमचन्द्रको आचार्य पदवी प्राप्त होगी उसके तीन मुहूर्त हैं प्रथम मुहूर्त्तमें मृत्युका योग है द्वितीयमें गच्छ भेद है और तृतीय अति श्रेष्ठ है यह कहकर अदृश्य होगया. **"यद्भावितद्भवत्येव"** इस न्यायसे भ्रमवश द्वितीय मुहूर्त्तमें ही वीर सं० १६३९ वि० सं० ११६९ में चित्रकुट नगरमें श्री देवभद्राचार्यजीने सूरि मन्त्र देकर आप श्रीको **आचार्य** **पदसें** विभूषित किये और **"श्री जिनदत्तसूरीश्वर"** इस नामसें अलङ्कृत किये. आप प्रतापशालीकों द्वितीय मुहूर्त्तमें आचार्य पद संप्राप्त होनेसें देवव-चनानुसार वीर सं० १६७४ वि० सं० १२०४ जिन शेखराचार्यसें **रुद्रपल्लीय खरतर शाखा** प्रचलित हुई. **यह द्वितीय गच्छ भेद हुवा.** आप पूज्य-पाद गुरुवर्यने अनेक प्रभावशाली कार्य किये जिनमें कितनेक नमुने इस स्थान पर उध्धृत करनेका प्रयत्न करता हूं:—

एक समय आप पूज्य सूरीश्वरने अपने मन्त्र शक्ति द्वारा चित्रकूट नगरमें

देवगृहके वज्र स्तम्भमें रहा हुआ अनेक मन्त्रों की आम्नायका पुस्तक तथा उज्जयनीयमें महाकाल मन्दिरके स्तम्भमें रहा हुआ श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका **विद्याग्रन्थ** ग्रहण किया

एक दिनका प्रस्ताव है कि आप उज्जैनमे व्याख्यान बाँच रहे थे उस समय श्राविकाओंका रूपकर चौपठ **योगिनियें** छलनेके लिये आई इन्हे श्रावकोंसे उपयोग किये हुवे ६४ पट्टो पर आप गुरुवर्यने मन्त्र द्वारा खीलदी उस वक्त उन्होने अति प्रसन्न होकर **सप्त वरदान** दिये तथा सातोंही उनके प्रयोग दिखलाए-**तद्यथा**:—

## ॥ सप्त वरदान ॥

(१) प्रत्येक ग्राममें खरतर गच्छीय श्रावक दीप्तिमान् होंगे
(२) खरतर श्रावक प्रायः निर्धनन होंगे
(३) संघमें कुमरण नही होगा
(४) अखण्ड शील व्रत पालन करनेवाली साध्वी ऋतुमति नहोंगी ( Monthly cource )
(५) खरतर संघको शाकिन्यादि नही छलेंगी
(६) जिनदत्तसूरीश्वरका नाम स्मरण करनेमें विद्युत ( विजली ) वगेरा पतनादि उपसर्ग न होगा
(७) खरतर श्रावक सिंधु देशमें जानेसे धनाढ्य होंगे

## ॥ सप्त वरदानके सप्त प्रयोग ॥

(१) सिंधु देशमें जानेसे गच्छ नायकको पञ्च नदी साधना चाहिये
(२) सूरि पद धारकको नित्य दोसो बार सूरि मन्त्रका जाप करना चाहिये
(३) मुनिराजको नित्य दो हजार नमस्कार मन्त्रका जाप करना चाहिये
(४) खरतर श्रावकको दोनो काल सप्त स्मरणका पाठ करना चाहिये

(५) श्रावकको प्रति दिवस तीन खिचड़ी ( एक मनके पर एक नमस्कार और एक उपसर्ग हर स्तोत्र ) की माला गिनना चाहिये.

(६) खरतर श्रावकको एक मासमे दो आचाम्ल करना चाहिये.

(७) खरतर मुनिको सति सामर्थ नित्य एकाशन करना चाहिये.

सातों वरदानोके फलितार्थ उपरोक्त सप्त प्रयोग बतलाकर प्रस्थान करते समय यह कहकर रवाना हुई कि दिल्ली, अजमेर, भरुअछ, उज्जैन, मुलतान, उच्चनगर और लाहौर इन सप्त नगरोंमें पूर्ण शक्ति रहित खरतर गछनायकको रात्री निवास नहीं करना चाहिये.

एक समय अजमेर नगरमें पाक्षिक प्रतिक्रमणमें बिजली वार २ उबकती हुई बाधा पहुँचा रही थी उसही वख्त गुरुदेवने जलपात्रसें उसें दबा दी. प्रतिक्रमणके बाद पात्र उठाया विद्युतने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि आपका नाम जपनेवाले पर मैं कदापि न गिरूंगी.

एक समय आप बृध्द नगरमें पधारे जैन शासनकी प्रभावनाको नहीं सहने वाले ब्राह्मणोंने मृतक गा **जिन मंदिर**मे पटककर हल्ला मचाया कि जैनियोंके देव हिंसक होते है इत्यादि. श्रावकोंके आग्रहसें गुरुदेवनें व्यन्तरद्वारा उसें जीवित कर दी जिससे वह **गौ शिव मूर्त्तिके ऊपर जा गिरी** यह विशाल प्रभाव देख ब्राह्मणोंकी बड़ी भारी हंसी हुई इससें वे लज्जित होकर गुरुदेवसें प्रार्थना करने लगे कि आजसे आपकी परंपरावाले कोई भी आचार्य आवेंगे उन्हे परम महोत्सवसें हम नगर प्रवेश करावेगें इत्यादि. जैन धर्मकी विशाल प्रभावना हुई.

एक समय भरुअच नगरमें आप पूज्य गुरुवर्यने मांस भक्षण बन्द करवाकर मुगल पुत्रको व्यन्तर द्वारा ७ मास जीवित रक्खा.

एक दिनका प्रस्ताव है कि नागदेव ( अंबड़ ) श्रावकने गिरनार पर्वतपर

अष्टमतपकर अंबिकादेवीकों आराधनकी और यह पूछा कि हे देवी! इस वख्त भरतक्षेत्रमें **युग प्रधान** कौन है मै उन्हें अपना गुरु करना चाहता हूँ देवीने तत्काल उसके हस्त पर एक श्लोक लिख दिया और कहा कि इसें जो पढ़ देवही **युग प्रधान** समझना—

वह श्लोक अनेक आचार्यो कों बताया किन्तु कोइ भी न वाच सका अखीर परिभ्रमण करता हुवा पाटण नगरमें गुरु दयालके पास आन पहुँचा गुरु महाराजने उसके हाथ पर वासक्षेप करके शिष्यकों वाचनेकी आज्ञा बक्षीस की अतुल प्रतापी गुरुवर्यके आज्ञानुसार उसने उस श्लोककों वाचकर स्पष्टार्थ तत्काल प्रदर्शित किया यह सुन वह श्रावक परं श्रध्दावान् हुवा इस प्रकार आप परम पृज्य युग प्रधान निर्मल पदसें विभूषित हुवे वह अनुपम श्लोक यह है

## ( श्लोक )

दासानुदासाइव सर्वदेवा यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरु' सजीयाद्युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १ ॥

एक वख्त आप श्री व्याख्यान वॉच रहेथे उस समय आपके एक परम भक्त श्रावकने अपनी जहाजेंकों समुद्रमें डूबती हुई जान आप गुरुदेवका स्मरण किया-तत्काल ही आपने अपने दीर्घोपयोगसें जान पक्षीका रूप बनाकर उसकी समस्त जहाजें तिरा दी-यह श्रवण कर समस्त जन समाजने जैन शासनकी महती प्रभावना की-**आपश्री बहुरूपी विद्याके पूर्ण अनुभवि थे.**

एक वख्त आप गुरु देव मुलतान नगरमें बडेही उत्सवसें प्रवेश हुवे उस समय पट्टननगर निवासी **खरतर विरोधी अंबड** श्रावकने कहा कि हमारे अणहिलपुर पत्तनमें इस प्रकार पधारें तो आप चमत्कारी समझे जाय

वरना "**मिट्टीके नक्कारे और घरके बजानेवाले—खूब कूटते रहो**" गुरुमहाराजने फरमाया हम तो बेशक उसही तरह आवेंगें किन्तु उस समय तूं निर्धनावस्थामें नमक तैल लेकर सन्मुख मिलेगा.

ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे बड़े महोत्सवसें पत्तन नगरमें प्रवेश हुवे सन्मुख वही निर्धन अंबड़ आया देखते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि क्यों अंबड़ **अहंकारका फल तूझे** मिल गया ? यह सुन अंबड़ शर्मिन्दा हुवा अब क्रोधवश होता हुवा कपट धारी खरतर श्रावक बनकर उन पूज्यका सन्मान करने लगा और बड़ाही भक्त बना.

एक दिन उस द्वेषी अंबड़ने ज़हर मिलाकर गुरुवर्यकों मीठा जल वहरा दिया आप पूज्यने उसमें विष जान शीघ्रही भणशाली गौत्रीय **आभू नामक श्रावकसें** विष पहार मुद्रिका मङ्गवाकर निर्विष बनाया यह घटना सुन सब लोगोंने अंबड़की बड़ीही कदर्थना की क्रमसें वह काल करके व्यन्तर हुवा वहांपर भी द्वेषवश गुरुवर्यका रजोहरण (ओघा) हरणकर लिया इस वख्त गुरुमहाराज कुछ खिन्न चित्त हुवे इसपर आभू श्रावकने उस व्यन्तरकों कहाकि गुरुदेवकों प्रसन्न करों मैं मेरा समस्त कुटुम्ब तुमकों अर्पण करूंगा इस वख्त गुरुदेवने अपने ज्ञान बलद्वारा रजोहरण ग्रहणकर सकल कुटुम्बकी रक्षा की, व्यन्तर इस व्यवस्थाकों देखकर भग गया.

एक वख्त विक्रमपुर (उज्जैन) में मरकीका उपद्रव ( हेज़ा ) जोरशोरसें चल रहा था उस समय गुरुमहाराजका वहां पदार्पण हो गया आपने जैनियोंका रोग उपशान्त किया तब माहेश्वरियोंने प्रार्थना की कि हे पूज्य गुरु वर्य ! हमारे पर भी कृपा कीजियेगा हम आपके **श्रावक बन जावेंगे** जो श्रावक न होगा वह **अपने पुत्र पुत्रियोंका चौथा भाग आपके चरण कमलोंमें भेट करेगा.** यह सुन गुरुदेवने उनका उपसर्ग निवारण किया. इस समय बहुतसे माहेश्वरी श्रावक हुवे जो न हुवे उन्होने अपने पुत्र पुत्रियोंकों चढ़ाया

धन्य है गुरुदयाल ! आपने पांचसौ पुत्र व सातसौ पुत्रियोंको दीक्षा देकर उनकी आत्माका कल्याण किया.

इसही तरह बहुतसे नगरोंमें नाहटा, राखेचा, भणशाली, नवलखा, डागा, लूणिया वगैरा गोत्र स्थापन किये करीब एक लक्ष तीस हजार जन समाजको प्रतिबोध देकर श्रद्धावन्त जैन श्रावक बनाये.

आपने हाथी शाहलुणियाको मुलतान नगरमें महा मङ्गलकारी "अजितशान्ति जिन स्तोत्र" अणहिल्लपुर पट्टणमें बोथरा गौत्रीय श्रावकको "उवसग्गहरं स्तोत्र" प्रदान किया

आपने पञ्च नदी पर पच पीरोंको साधन किये; आप पूज्यने संदेह दोहलावली, तजयत्त, मयरीउ, सिघमवहर स्तोत्र वगैरा अनेक ग्रन्थकी रचना कर संघ परमहदुपकार किया

आप परम पूज्य गुरुवर्य आषाढ शुक्ला एकादशी वीर,सं १६८१, वि. स १२११ अजमेर नगरमें अनशन करके प्रथम सौधर्म देव लोकमें पधारे आप पूज्यपाद बड़े दादासाहेबके नामसे प्रख्यात हुवे ॥ ४४ ॥

तत्पट्टे मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे–आप श्रीमाल गोत्रमें शाह रासलदे पिता और देल्हणदेवी मातासे वीर सं· १६६७ वि सं ११९७ के भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको अवतरित हुवे. अजमेर नगरमें वीर,स०, १६७२ वि. सं. १२०३ का फाल्गुन कृष्ण ९ को श्री जिनदत्तसूरीश्वरसे दीक्षा अङ्गीकार की तथा इन्ही प्रतापशालीने आपको वीर सं १६८१ वि.स १२११ वैशाख शुक्ल ६ को आचार्य पदवी प्रदान की

एक समय आपश्री संघके आग्रहसे दिल्ली नगरमें पधारे वहा सघ पर अनहद उपकार किया एक दिन आपने अपना आयुष्य निकट समझ कर

मदनपाल श्रावकको कहा कि मेरे मस्तकमें मणि है वह अग्नी संस्कारके समय उड़ेगी वास्ते एक निर्मल दुग्धका कटोरा पास रखना उसमें आगिरेगी. यह बात एक बुद्धिवान् योगीने भी सुन ली थी. इस तरह फरमांकर आप महानुभाव वीर सं० १६७३ वि० सं० १२२३ भाद्रपद कृष्ण १४ कों अनशन कर देव लोक पधार गए.

सर्व श्रावक लोग मिलकर गुरुमहाराजकी मण्डी माणक चोक तक ले आए और वहां विश्राम लिया बाद मण्डी वहांसे न उठ सकी बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सर्व निष्फल गए चमत्कार समस्त शहरमें फैल गया तब बादशाह भी वहां आया और हुकुम दिया कि **यह देव बड़ाही प्रभावशाली** है इनका स्थान यहीं पर होना चाहिये. सुनते ही सर्व श्रावकोंने गुरुमहाराजकी देहका अग्नी संस्कार वहीं पर किया अब इस समय वह **मणि फड़ाका करती हुई उड़ी** किन्तु वे सेठजी तो दुग्धका कटोरा लाना भूल गए और वह योगी जिसनेकी सुन रक्खा था एक तर्फ दुग्धका कटोरा लेकर खड़ा था उसके कटोरेमें धड़ाकसें आगिरी योगी लेकर अपने मकानपर चला गया बाद में सेठको विज्ञात हुवा उस समय सकल संघने उसें उपालम्भ दिया अस्तु आप प्रभावशालीका अब तक दिल्लीके बीचो बाजार स्थान मौजुद है बादशाह वगेराने बहु मान किया. अब तक भी आप **द्वितीय दादा साहब**के नामसें मशहूर हैं. ॥ ४५ ॥

तत्पट्टे **श्री जिनपतिसूरि** हुवे. एक दिन आसापुरमें श्रीमाली हाजीशाहने जिन मन्दिर बनवाया उसकी प्रतिष्ठा आपके हाथसे हुई प्रतिष्ठाके समय उस मणिके ग्रहण करनेवाले योगीने प्रतिमाजीकों भीतर प्रवेश करवाते समय स्तम्भित कर दिये. आपने गुरुदेव **श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरकों** स्मरण किये गुरुमहाराजने प्रकट होकर उन्हे वासक्षेप प्रदान किया उससें जिनपतिसूरिने प्रातःकालमें प्रतिमाजी पर वह वासक्षेप प्रक्षेप किया कि प्रतिमाजी शीघ्रही उठकर अपने आसनारूढ़ हो गये यह चमत्कार जान उस योगीने वह मणि वापिस समर्पण कर दी. आदि अनेक प्रभावशाली कार्य किये.॥४६॥

तत्पट्टे श्री जिनेश्वरसूरि हुवे आपके वख्तमें श्री जिनसेनसूरिसें वीर सं० १८०१ वि० स० १३३१ में **लघु खरतर शाखा** प्रचलित हुई यह तृतीय गछ भेद हुवा ॥ ४७॥ तत्पट्टे श्री जिनप्रबोधसूरि ॥ ४८ ॥ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि हुवे आपने चार राजाओंको प्रतिबोध दिया तबसे आप **कलिकाल केवली** पदसें विभूषित हुवे इसही समयसें **खरतर गच्छ राजगच्छ**के नामसें प्रसिद्ध हुवा आप एक विशाल प्रभावशाली आचार्य थे. ॥ ४९॥

**तत्पट्टे प्रत्यक्ष प्रतापी श्री जिनकुशलसूरीश्वर हुवे..** सिवाणे नगरमे छाजेड गोत्रावतंसी मन्त्रि जील्हागर पिताके कुलमें जयतश्री माताके रत्न कुक्षीसें वीर सं० १८०० वि० सं० १३३० में अवतरित हुवे वीर सं० १८१७ वि० सं० १३४७ में इस असार संसारको त्यागकर भवोध्दारक निर्मल चारित्र ग्रहण किया वीर सं० १८४७ वि० स० १३७७ जेष्ठ कृष्णा ११ को शुभ मुहूर्तमें श्री **राजेन्द्राचार्यजीसें आचार्य** पद संप्राप्त की पाटण निवासी शाह तेजपालने तथा दहेली निवासी महतीयाण गोत्रीय विजय सेन श्रावकने बहु द्रव्य खर्चकर नंदी महोत्सव किया

वीर स० १८५० वि० सं० १३८० में शाह तेजपाल श्रावकके संघमें **पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धाचलजी**की जियारत करके खरतर वीसी में सत्ताइस अङ्गुल प्रमाण श्री **आदिनाथ प्रतिमा**की प्रतिष्ठा की भीमपल्लि नगरे भुवनपालका वनाया हुवा बहुत्तर देव कुलसें मण्डित **वीर चैत्य**, जस लमेर नगरे जश धवलका निर्माण कराया हुवा **चिन्तामणि-पार्श्वनाथ चैत्य**, जालोर नगरे श्री **पार्श्व जिन चैत्यादि** अनेक जिन बिंबोंकी प्रतिष्ठा करवाई.

आगरा श्री संघके अत्यन्ताग्रहसे श्री **शत्रुंजय तीर्थराज**की यात्रा करके भाद्रपद कृष्ण ७ को पाटण नगरको पवित्र किया आप पूज्य प्रभावशालीके **बारहसो मुनिराज** तथा **एकसो पाँच साध्वियोंके** संप्र-

दाय हुई. आप पूज्य गुरुवर्यने विनयप्रभादि सुशिष्योंकों उपाध्याय पदवी प्रदान की इन्हीं विनयप्रभोपाध्यायने अपने निर्धन भ्राता "सोभा" के लिये सिद्धार्थय मन्त्र गर्भित गौतम रासकी रचनाकर उसका दरिद्र दूर किया. इस प्रकार इन पूज्य प्रभावशाली कुशलसूरीश्वरने अपने विशाल ज्ञानद्वारा जिन शासनका अनुपम प्रभावनाकर अनेक श्रावक बनाये.

आप अपने पवित्र जीवनकों सार्थककर देरावर नगरमें अष्ट दिवसका अनशन कर वीर सं० १८५९ वि० सं० १३८९ फाल्गुन कृष्ण अमावश्याके दिन स्वर्गवास पधार गए अपने देव गति जानेके पश्चात् पूर्णिमा सोमवार कों प्रथम दर्शन दिये अतः यह दिवस विशेष आराधनीय है आप प्रतापशाली तृतीय दादा साहब के नामसें मशहूर हुवे. ॥ ५० ॥

तत्पट्टे श्री जिनपद्मसूरि ५१ तत्पट्टे श्री जिनलब्धसूरि ५२ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ५३ तत्पट्टे श्री जिनोदयसूरि हुवे. आपके वक्तमें वीर-सं० १८९२ वि० सं० १४२२ में बेगड़ खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह चतुर्थ गच्छ भेद हुवा ५४ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि ५५ तत्पट्टे श्री जिनभद्रसूरि आपके वक्त श्री जिनवर्ध्यनसूरिसें पिप्पलिया खरतर शाखा जारी हुई. यह पञ्चम गच्छ भेद हुवा. ५६ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ५७ तत्पट्टे श्री जिनसमुद्रसूरि ५८ तत्पट्टे श्री जिनहंससूरि. आपके समय मरुस्थल देशमें आचार्य शान्तिसागरजीसें आचार्य खरतर शाखा प्रकट हुई. यह षष्टम गच्छ भेद हुवा. ५९ तत्पट्टे श्री जिनमाणिक्यसूरि हुवे ॥ ६० ॥

तत्पट्टे अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे. मरुस्थल देशकें वड़लु ग्राममें रिहड़ गौत्रके अन्दर श्री वन्त पिताके कुलमें, सिरीया देवी माताने वीर सं० २०६५ वि० सं० १५९५ में जन्म दिया और वीर सं०२०७४ वि० सं० १६०४ में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा वीर सं० २०८२ वि०सं० १६१२ भाद्रपद शुक्ला नौमीकों जेशलमेरमें आचार्य पदवीसें विभूषित हुवे.

एक समयका प्रस्ताव है कि आप संवेग रङ्गसें रङ्गे हुवे जैन शासनकी अनेक विध प्रभावना कर रहे थे कि मन्त्री कर्मचन्द्रने बादशाहके रूबरू आपकी बड़ी भारी तारीफ की इससें पतशाह दर्शनार्थ प्राप्त हुवा आप गुरुवर्यने लाहोर नगरमें पधारकर अकब्बर बादशाहकों **"अहिंसा परमोधर्म"** का प्रभावशाली उपदेश दिया इस समय उसें महदुपदेशका इतना असर पहुंचा कि **महा पर्वाधिराज श्री पर्यूषण पर्वमें** आठों ही दिन सकल देशमें कोई भी हिंसा न कर सके यह फरमान पत्र समर्पण किया तथा अति प्रसन्न होकर गुरुमहाराजकों **'युगप्रधान"** पदसें भूषित किये

एक वख्तका जिक है कि अकब्बर बादशाहने अपने पूज्य समज यह आर्जु किया-कि छत्र, चामारादि राज चिन्ह स्वीकार कीजियेगा चूंके, आप राजगुरु ( हमारे गुरु ) पदसें सुशोभित है—गुरुवर्यने प्रत्युत्तरमें फरमाया कि हम फकीर ( साधु ) हैं हमें ये चीजें उतनी ही अशोभनीक हैं कि जैसें **चक्रवर्तीके सुवर्ण कण्ठमें हड्डियोंकी माला.** इस लिये बादशाह ! श्रमण भव कलङ्ककारी भवोभव सुखहारी इस परिग्रहमयी वस्तुओंका संसर्ग तक करना अधमाचार समजते हैं—आपके इन साहसिक वचनोंकों सुनकर बादशाहकों खामोसी अखत्यार करना पड़ी

बादशाहने श्री संघ सहित आपके शिष्य **श्री जिनसिंहसूरिकों** अत्याग्रह द्वारा दाक्षिण्यताके सुजालम डाल सर्व राज चिन्होसें अलङ्कृत कर दिये—आप श्रीको मजबूर होकर यह महति अङ्गीकार करना पड़ी—इस वख्त सर्व वस्तुएं श्रावक वर्गके ही स्वाधीन रहती थीं आपश्रीका इसमें लेश मात्र भी संसर्ग नहीं था—बस यहांसें श्री **पूज्यपन** ( सपरिग्रह श्रमणलिङ्ग ) प्रगट हुवा—

तदनन्तर शनैः २ परिग्रहका संसर्ग बढता गया कभी कम कभी ज़ियादे किन्तु हीन दशाका साम्राज्य विशाल विस्तीर्ण रूपमें फैल गया—आज हमें श्री पूज्य व यतियोंकी हालत ( कतिपय महा भागोंकों छोड़कर ) देख कर

शोक सागरमें वलता डूवना पड़ता है—हमारा यह कथन औचित्य पंक्तिसें वाहिर न होगा की ये लोग सद्गृहस्थोंकी सभ्य श्रेणीसें असंख्य योजन दूर हैं मैरे जैन धर्म प्रेमियोंसें यह निवेदन है कि हृदयकों शान्तकर पुनरपि अपना उद्धार कीजियेगा ताके वीर शासनका अनुपम उद्योत हो और आपकी आत्माओंका भी कल्याण हो-किम् विशेषम्.

आपने वादशाहके अत्यन्ताग्रहसें श्री जिनसिंहसूरिकों अपने हाथसें आचार्य पदवी प्रदान की कर्मचन्द्र मन्त्रीने इस वक्त याचकोंकों वहुत सादान दिया आप गुरुदेवने पंच नदीके पाँच पीरोंको तथा मानभद्र, यक्षखञ्ज और क्षेत्रपालादि देवोंको साधन किये.

एक वक्त सलेमपतसाहने किसी एक खास कारणसें यह हुकुम दिया कि मैरे समस्त देशोंमें सर्व दर्शनीयोंकों स्त्रीधारक वना दो उस वक्त वहुतसें यतिवर्य (संयमी मुनिराज) अपने शील रक्षार्थ इधर उधर भागने लगे कइ एक समुद्र पार हो गए कई एक भूमि गृहमें उतर गए इत्यादि नाना प्रकारके संकट सहन कर रहे थे कि इधर परमोपकारी आप पूज्येश्वर सुनते ही इस अहवालके शीघ्र ही आगरेमें पधारे और अनेक चमत्कार दिखलाकर उस अनाचरिणी आज्ञाकों खारिज करवाई और सव ब्रह्मचारी जीवोंकों सुखी किये.

इस प्रकार जैनशासनकी अथाह प्रभावनाकर वीर सं० २१४० वि० सं० १६७० में स्वर्गवास पधारे इनके समयमें वीर सं० २०९१ वि० सं० १६२१ में भाव हर्ष उपाध्यायसें भाव हर्षीय खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह सप्तम गच्छ भेद हुवा ॥ ६१ ॥

तत्पट्टे श्री जिनसिंहसूरि ६२ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि हुवे. आपके वक्तमें वीर सं० २१५६ वि० सं० १६८६ में आचार्य श्री जिनसागरसूरिसें लघु आचर्यीय खरतर शाखा विभिन्न हुई यह अष्टम गच्छ भेद हुवा.

तथैव आपके काल प्राप्तके एक वर्ष बाद यानी वीर सं० २१७० वि० सं० १७०० में पण्डित तरङ्गविचगणीसें रङ्गविजय खरतर शाखा प्रवृत्त हुई. यह नौमा गच्छ भेद हुवा. इसही शाखामेंसें सारोपाध्यायसें श्री सारीय खरतर शाखा भिन्न हुई. यह दशम गच्छ भेद हुवा. प्रथम तो वृहत् खरतर मूल गच्छ और दश शाखाएं एवं सर्व ग्यारह भेद हुवे. ॥ ६३ ॥

तत्पट्टे श्री जिनरत्नसूरि ६४ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ६५ तत्पट्टे श्री जिनसौख्यसूरि ६६ तत्पट्टे श्री जिनभक्तिसूरीश्वर हुवे. आप गुरुवर्य बडेही प्रभावशाली थे अनेक विध जैन शासनका उद्योत किया अखीर वीरात् २२७४ वि० सं० १००५ जेष्ठ शुक्ल ४ कों स्वर्गवास पधारे ॥ ६७ ॥

श्री जिनभक्तिसूरीश्वरके वुद्धि विचक्षण परम वैरागी पटधर शिष्य पूज्यपाद गणिवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहब हुवे इस वृहत्खरतर गच्छमें आपसें परम वैराग्य रङ्गरञ्जित संवेग कल्प वृक्ष पुनरपि अपनी दिव्य कान्ति विस्तृत करता हुवा सकल शुद्धाचाररूपी लतासे विभूषित हुवा जिसका किञ्चित् निबन्ध पाठक प्रेमियोंके अभिमुख करता हूं:—

आप महानुभावके एक लघु गुरु भ्राता श्री लक्ष्मीलाभ थे. आप एक बडे ही सज्जन पुरुष थे आचार्य पदमें आपका नाम श्री जिनलाभसूरि हुवा.

श्री जिनभक्तिसूरीश्वरके काल प्राप्त पश्चात् यति महानुभावोंने यह सोचा कि इस वखत क्रिया वहुत शीथिल हो रही है इसलिये यदि गुरुवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहबकों ततखतनशीन ( पट्ट स्थापन ) करेंगे तो क्रियाका पालन दुष्कर हो जायगा चूंके वे परम वैरागी त्यागी और उत्कृष्ट क्रियाकों पालन करने वाले हैं अतः लघु भ्राता लक्ष्मीलाभजीकों

ही पट्टधर बनाना ठीक है यह सोच आचार्य पदवीके समय असंयम प्रेमी यतियोंने उन बड़भागीको एक कोटड़ीमें बंदकर कुलफ (ताला) लगा दिया और लक्ष्मीलाभजीको गद्दी पर स्थापन कर उनकी आणा (आज्ञा) प्रवृत्त दी. यह विचित्र घटना देख श्रीमानने कोटड़ीमेंसे ही फरमाया कि यदि लक्ष्मीलाभको गद्दीधर बनाया तो कोई हर्ज नहीं वह भी मेरा ही लघु भाई है इत्यादि कहनेसे उन्हे बाहिर निकाले. उनका इस प्रकार तेज प्रताप था कि एक वार समस्तको लज्जा महाराणीके अधीन होना पड़ा अस्तु.

वे पूज्येश्वर तो महान् दयालु थे अखिल संसारका हित करनेमें एक अनूठे कृपावतार थे आपने अपने लघु भ्राता श्री जिनलाभसूरिजीसे सम्मति लेकर अनुमान इसही वीर सम्वत् २२७४ वि० सं० १८०४ में परम पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी पर सर्व त्यागकर पञ्च महाव्रत अवधारण किये और सकल समाज पर अनुपम उपकार किया.

आपने वैरागी, त्यागी परम संवेगीके पहिचानेके लिये व कितनेक अन्य कारणोंसे कथ्थे चूनेमें वस्त्र रङ्गना प्रारंभ किया. पवित्र खरतर गच्छमें आप महानुभावसे कथ्थाई वस्त्र प्रारंभ हुवे.

हमने उपरोक्त विवरण जिस प्रकार परंपरासे सुना है वैसाही उद्धृत किया है. कितनेक लोगोंका यह भी कथन है कि आप परम वैरागी योगीश्वर श्री मानूप्रीतिसागरजी महाराज साहब निष्कारण ही केवल अपनी वैराग्यावस्थामे रमण करनेके हेतु संवेगी श्रमण नामसे विभूषित हुवे तथा कथ्थाई वस्त्र आपके प्रशिष्य श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महाराजसे प्रचलित हुवे हैं. हम नहीं कह सकते कि दोनोमेंसे तथ्य क्या है अतः "तत्वं केवली गम्यम्" इस न्यायका अङ्गीकार करना ही समुचित है.

आप अद्वैत मुनि पुङ्गवजन समाज पर अवर्णनीय उपकारकर वीर सं० २३२१ वि० सं० १८५१ के माघ शुक्ला ८ को स्वर्गवास पधारे. बृहत्खरतर

गछमें पुनरपि परम संगावस्थाको अवधारण करनेवाले आप प्रथम मुनिवर हुवे है तथा पट्ट परंपरानुसार अठ्ठमठवें पट्टधर हुवे ॥ १ ॥-॥ ६८ ॥

तत्पट्टे परं वैरागी वाचनाचार्य श्रीमान् अमृतधर्मजी महाराजसाहव हुवे आप परम आत्मार्थी और भव्यजन प्रतिबोधमें एक अनुठे महात्मा थे ॥१॥ ॥ ६९ ॥ तत्पट्टे अद्वैत विद्वान महा महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महाराजसाहव हुवे उनका यत्किञ्चित्स्वरूप इस प्रकार है:—

आप पूर्वमें जति× थे श्री जिनहर्षसूरिजीके समय अधिक शिथिलाचार देख पर वैरागी संवेगी साधु हुवे आप श्री पैंतालीश आगमोके पूर्ण वेत्ता थे तथा अनेक प्रकरणादिके सुविज्ञ थे तथैव संस्कृतके एक प्रखर विद्वान थे. आप महानुभाव श्री जिनहर्षसूरिजीके पाठक (विद्यागुरु) थे अतः आप महा महोपाध्यायकी पदवीसे विभूषित थे

बहुतसे श्रावक श्राविका शिथिलाचारियोके अनुरागी हो रहे थे उन्हें जैन तत्वज्ञान बताकर शुद्ध धर्ममें संलग्न किये पूज्यपाद प्रीतिसागरजी मा. सा. के बोये हुवे बीजको इस कदर सीचन किया कि जो हमारी लेखनीसे बाहिर है आपका अवर्णीय उपगार जैन समाजको सदैव स्मरणीय है

आपमें सर्वसे विशिष्ट गुण यह ऋजकता था कि गुण ग्राहियोंको छोड़कर सकल जैन समाज आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन करता था इतनाही नही किन्तु उनके परमार्थी मधुर वचनोंको शिरोधार्यकर—अपनी आत्माका कल्याण करता था

आपने अनेक संस्कृत व भाषाके ग्रन्थ बनाकर जन समाज पर अ-

× वर्तमान कालमें क्रियासे विहीन होकर केवल वेशको धारण करनेवालेको "जति" कहते है

वर्णीय उपकार किया. आपश्रीके बनाये हुवे जितने ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुवे हैं उनके नाम इस स्थल पर उध्धृतकर गुणानुरागियोंको आपके महत्त्वका परिचय दिलाते हैं:—

१ बारह पर्व संस्कृत २ आत्म प्रबोध संस्कृत ३ गुर्वावली संस्कृत ४ साधु समाचारी भाषा ५ अनेक शास्त्रोंसें उध्धृतकर महदुपयोगी फूंसो बोल भाषा ६ वैराग्य व तत्वगर्भित अनेक स्तवन सज्झायादि भाषा ७ चतुर्विंशति तीर्थंकरोंके चैत्यवंदन संस्कृत ८ गुरु महाराजोंके अष्टक संस्कृत ९ विधि विधान चर्चा भाषा १० श्री पार्श्वनाथ स्तुति संस्कृत ११ श्री जिन चतुर्विंशति स्तुति संस्कृत १२ प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक संस्कृत. इस प्रकार अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर अपनी अकथनीय उपकार बुध्धिका विशाल प्रभाव प्रदर्शित किया. धन्यहै! **गुरुदयाल आपके अपूर्व ज्ञानकों पुनः २ धन्य है.**

आप मात्र विद्या प्रेमीही नहीं थे किन्तु एक प्रबल प्रत्यक्ष चमत्कारीभी महात्मा थे—मेरे प्यारे पाठकों देखियें आप पूज्यका चमत्कारीय अलौकिक दृश्यः—

( १ ) एक वख्तका जिक्र है ( जब कि आप जेशलमेरमें विराजमान थे ) कि योधपुर महाराजा अपनी चतुरङ्गी सेना सजकर जेसलमेरको आन घेरा नगराधीश ( जेसलमेरपति ) रावलजी क्रोधित होकर रणभूमि पर जा चढ़े— परस्पर घोर युद्ध हुवा—हाथियोंने बिलन्द चीत्कारी शब्दोंसें युध्ध क्षेत्र गुञ्जा दिया घोड़े हिन हिनाने लगे रथोंका झंकारा व झरनाट करने लगा योध्धा लोग भूजाबलसे एक दूसरे पर टूट पड़े. तलवार, भाले और बरछियोंकी धना धनी चलने लगी बन्दूककी गोलियें धड़ाधड़ छूटने लगी तोपोंकें गोलोंकी अविरल वरसा होने लगी सेंकड़ों योध्धा पृथ्वीतल पर लोटपोट हो गये अर्थात् सर्व भक्षीके मुखमें प्रवेश हो गए.

इस वस्थाकों जान महारावलजीकों बढा भारी पशोपेश हुवा. शीघ्र ही **पूज्यपाद गुरुवर्यके** चरणोमें सादर वंदना नमस्कार कर सनम्र अपनी आफ-

तका किस्सा प्रार्थना रुपमें निर्मित किया और यह विनय करने लगे कि स्वामिन्! इस समय लज्जा रखना आपके आधीन है यह सुन दयासागर श्रीमान्ने शीघ्रही एक नकारा मङ्गवानेकी सूचना की राजाने तुरन्त ही हाजिर किया मन्त्र, तन्त्र, जन्त्रादि वेत्ता महानुभावने तत्कालही उस नकारे पर सर्वतो भद्र यन्त्र लिख दिया—गुरुमहाराजका पूर्ण विश्वासी राजा तत्कालही सेना सजकर अपने गनीमों पर टूट पड़ा नकारे पर धनाधन डंके पड़ने लगे युद्ध क्षेत्र गुंजारवमें गूञ्ज उठा—शत्रुओंकी सकल सेना भाग गई गुरुमहाराजके प्रभाविक यन्त्रसें रावलजीकी विजय हुई—इससें जिन शासनकी महती प्रभावना हुई और जेशलमेरका राजा दृढ जैन धर्मी बन गया.

( ९ ) एक दिन सभाके मध्यमें रावलजीने ज्योतिषीकों अपनी उमरका निर्णय करनेको कहा—उसने उत्तरमें यह निवेदन किया कि आपकी, केवल सातही वर्ष शेष आयुष्य है राजाने सविनय गुरुमहाराजसें निर्णय करनेके वास्ते विनती की—पूज्यपादने कृपा पूर्वक ज्योतिष सहायद्वारा व देवके साहयसें रावलजीकी सत्तरह वर्षकी उमर बताई सज्जनो! महा पुरुषोंके वचन कभी खाली जाते है क्या? ठीक सत्तरह वर्षमें राजा परलोकमें कूच कर गए इससें यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आप ज्योतिष ज्ञानके भी एक पूर्ण वेत्ता थे

आपके स्वर्गवास पधारनेके पश्चात् भी आपने एक आश्चर्यजनक चमत्कार दिखलायाः—

जब आप बीकानेरमें अपनी आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पधारे उसही दिन आपके एक परम भक्त साम्मतिराम व्यासकों जेसलमेर और लौद्रवपुर पट्टन महा तीर्थराज ( लौद्रवपुर जेशलमेरसें दश माइल है ) बीचमें दर्शन दिये उनके आपुसमें कुछ वार्त्तालाप हुवा तदनन्तर यह व्यास एक दो दिन बाद जेशलमेरमें आया तो आपके स्वर्गवासकी खबर सुनी उसने अपने दर्शनके हाल श्री संघके सामने जाहिर किये इस आश्चर्यभूत अहेवालकों सुन सकल संघकों विवश होकर बलात् आनंदसागरमे निमग्न होना पड़ा

महानुभावों! कहां तक निवेदन करूं मेरी यह सामर्थ्य नहीं कि आपके सर्व चमत्कारोंका उल्लेख कर सकुं आप पूज्यने अपने अनेक विशाल प्रभावशाली कार्य कियेहै धन्य हो गुरुदयाल! आपका अनुठा जीवन प्रशंसनीय है—

आप कृपावतार श्री संघपर अविस्मरणीय उपकारकर वीर सं. १३४१ वि. सं. १८७१ के पौष कृ० १४ के शुभ दिवसकों इस भवसें प्रस्थानकर उच्च गतिकों पधार गये. ॥ ३ ॥ ७० ॥

तत्पट्टे श्रीमान् धर्मानंदजी महाराज हुवे. आप एक पूर्ण विद्वान् थे. आपने आत्म भावनके साथही साथ श्री संघपर अनहद उपकार किया॥४॥७१॥

तत्पट्टे **श्रीमान् राजसागरजी महाराज** हुवे. आप एक प्रचण्ड विद्वान थे. आपने अपने ज्ञान बलद्वारा **मिथ्यात्व रङ्गरङ्गित भोपम पन्थकों** त्याग कराकर सेंकडो लोगोंको शुद्ध जैन धर्म अवधारण करवाया तथा अनेक मांस मदिरादिमें आसक्त हुवे प्राणियोंकों दुर्व्यसनोसें मुक्त कराकर अपने निर्मल चरणकमलोंका शरण दिया. आदि अनेक विध उपकारकर अपनी आत्माका कल्याण किया. ॥ ५ ॥–॥ ७२ ॥

तत्पट्टे असाधारण विद्वान् **श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराजसाहब** हुवे. पाठकवरों! ये वेही पूज्य हैं कि जिन्होने पवित्र तीर्थराज **श्री आबूकी रक्षा की है** अर्थात् वहांकी अनेक आशातनाओंकों दूर करवाई है आपने दुर्वार उपसर्गोके प्रबल आक्रमण होने पर भी अपने तीव्र मन्त्र ज्ञान द्वारा विजयकर **गवर्मेन्टसें ग्यारह नियम** ( Rules ) प्रवृत कराए हैं. यह जैन समाजसें छिपा नहीं है अर्थात् पबलिकमें रोशन है. आपने इन नियमोंकों विनयवश होकर अपने वृद्धगुरुभाई प्रीतिसागरजी मा. के नामसें जारी करवाएहैं.

यह तो निसंदेह है कि **कृतघ्नोंके सिवाय समस्त जैन समाज**

इस अवर्णीय उपकारको हरगीज नहीं भूल सकता, इतनाही नहीं, किन्तु गुणानुरागी लोग अब तक भी आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन कर अपने मुक्त कण्ठसें प्रशंसा करते है।

आप संस्कृतके पूर्ण विद्वान् थे मन्त्र जन्त्र और यन्त्रादिमें तो एक अद्वितीय ही अनुभवि महात्मा थे आपने बहुतसें जिन भुवनोंकी ऐसे२ उत्तम मुहूर्तोमें प्रतिष्ठा करवाई है कि जिनकी दिनवदिन तरक्की होती हुई दृष्टिगोचर हो रही है

आप श्री संघ पर अनुपम उपकारकर वीरात् २४२२ वि० सं १९५२ में देवलोक पधार गये ॥ ६ ॥-॥ ७२ ॥*

तत्पट्टे श्री खरतरगच्छ गगनमार्तण्ड विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर श्री मज्जैनाचार्य अविरल स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजसाहब हुवे, आप पैतालीस आगमोंके पूर्ण वेत्ता थे तथैव अनेकानेक प्रकरणोंके सुविज्ञ थे

---

* कई एक सभ्य पुरुष गभीर आशयसे पृथक् होकर अवश्य इस प्रश्नमें जिज्ञासु होंगे कि ग्रन्थ कर्त्ता एक स्थान पर तो श्रीमान् राजसागरजी ऋद्धिसागरजी मा कों "कर्मवश शिथिल होना पड़ा" ऐसा लिखता है और इस स्थल पर बड़ीही पूज्य दृष्टिसें पेश आता है यह विपवाद स्वीकृत श्रेणीमें क्योंकर शुमार किया जायगा

महानुभावों! उत्तरमें इतनाही निवेदन है कि मैं इन दो पूज्योंको सदैव पूज्य दृष्टिसे ही अवलोकन करता हूँ मैंने "कर्म व शिथिल होना पड़ा इत्यादि" केवल इस ही आशयको प्रकट करनेके हेतु लिखा है कि पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी मा सा कों पृथक् क्योंकर होना पड़ा तथा आपके नामसें सिंघाड़ा क्योंकर प्रसिद्ध हुवा—मात्र तीर्थगमनादिके कारण यदि कियामें यत्किंचित् तटस्थ होना भी पड़ा हो तदपि अनुचित श्रेणीमें अवश्य ही विमुक्त हैं पाठक प्रेमियोंको यदि इतने पर भी सन्तोष न होगा तो द्वितीयावृत्तिमें परिवर्त्तन करनेमें प्रयत्नशील होनेका विचार रक्खूगा.

आपके निज शासनमें ५ मुनिवर्य तथा १४ साध्वियाँजी हुई.

आपके समुदायमें आज दिन पर्यन्त सर्व ३२ मुनिराज हुवे जिस्मेंसें १६ मुनिवर्य काल प्राप्त हुवे. ३ वेष छोड़कर चल्ल गये वा यति हो गये १३ इस वख्त मौजुद हैं. कौन २ महानुभाव किस२ के सुशिष्य हैं यह वंश वृक्षसें जानना चाहिये. तदपि विशेष खुलासा इस स्थल पर उध्धृत कर यन्त्र रूपेण पाठक प्रेमियोंके अभिमुख करता हूँ:— **देखो मुनि समुदाय यन्त्र.**

तथैव आजतक आपके संघाड़ेमे १७६ साध्वियोंजी हुई. जिस्मेंसें ३१ काल्ल प्राप्त हुई १४५ इस वख्त मौजुद हैं. कौन २ किस २ की शिष्याएं हैं वगैरा विवर्ण अन्यत्र स्थानसें जानना.

आप वीरात् २३९२ वि. सं. १९२२ सें ४२ तक अर्थात् २० वर्ष अटल धर्म राज्य कर माघ कृष्ण ४ वीर सं. २४१२ वि. सं. १९४२ शनिश्चर वार व मुजिव ताराख २३ जान्यूआरी सन् १८८६ के प्रातःकालमें **परभव पधार गये.** धन्य हो ! मुनि पुङ्गव आप कृत पुण्य हो ! ! आपका **पवित्र नाम चिरकाल जयवन्ता वर्त्तो.** ॥ ३ ॥–॥ ३४ ॥

तत्पट्टे विद्वद्वर्यगणनायक **श्रीमान् भगवान्सागरजी महाराज साहब** हुवे–आप योधपुर राज्यान्तरगतरोहिणा ग्रामके उत्तम *जाट जसाजीके सुपुत्र थे. आप भगवान्दासके नामसे शोभित थे.

आप श्री वीरात् २३९५ वि. सं. १९२५ में योधपुर राज्यान्तर गत फलवर्ध्धिकामें पधारे इस अवसरमें **पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी म. सा. के प्रभावशाली सदुपदेशसें** वैराग्य रङ्गरङ्गित होकर इसही सम्वत्में दीक्षा अङ्गीकार की. आप श्री पूज्यपाद **चरित्र नायकके**

---

* ये वेही उत्तम जाट हैं कि जो मांस मदिरादिसें सदैव तटस्थ रहते हैं एवं जिनके हाथका ओसवाल कच्चा भोजन खाते हैं.

प्रथम शिष्य हुवे नाम भगवान्सागरजी रक्खा गया. आप शास्त्रोंके बड़े ही सुविज्ञ थे—तथा परोपकारमें परिपूर्ण प्रयत्नशील थे

आप वीरात् २४१२ वि स १९४२ मे गणनायक पदवीसें सुशोभित हुवें आपके शासनमें ७ मुनिराज तथा ४१ साध्वियोंजी हुई आपने अपने शासनमें समुदायका प्रशंसनीय निर्वाह किया आप १४ वर्ष ४ माह १० दिन अटल धर्म राज्य कर वीर सं २४२७ वि. सं १९५७ के जेष्ट कृष्ण १४ कों परलोक पधार गये. ॥ ८ ॥–॥ ७५ ॥

इसके पश्चमें गणनायक रूप महा तपस्वी श्रीमान् छगनसागरजी महाराजसाहब हुवे

आप-श्रीमान् मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर योधपुर राज्यान्तर गत फलोदीमें, ओश वंश सुशोभित गोलेछा ( राठोड़ ) गौत्रमें श्रेष्टीवर्य सागरमलजीके कुलमे, चंदनबाई की रत्न कुक्षीनें वीरात् २३६६ वि सं १८९६ में समुत्पन्न हुवे आप गृहस्थाश्रममें छोगमलजीके नामसें सुशोभित थे आपकी शादी अखेचन्दजी जावककी सुपुत्री चुन्नीबाईके साथ हुई थी आपके तीन पुत्र तथा एक पुत्री समाप्त हुई

आपने स्वयं वैराग्यवश होकर तथा रत्नमुनिजी आदि मुनिवरोंके व्याख्यानादिसें एवं श्रीमति पुण्यश्रीजीके श्लाघनीय प्रयत्नसें वैशाख शु १० गुरुवार वीर सं २४१७ वि सं १९४२ में श्रीमान् भगवान्सागरजी मा सा. के हस्तकमलसें फलोदी नगरमें दोनो दम्पतिने दीक्षा अङ्गीकारकर अपने मानवजन्मोंकों कृतार्थ किये आपकों पूज्य स्थान सागरजी मा सा के सु-शिष्य बनाये नाम छगनसागरजी रक्खा गया आपकी वृह दीक्षा लोहावट ग्राममें इसही सम्वतके जेष्ट शु ८ कों हुई

श्रीमान् भगवानान्सागरजी मा. सा के काल मास पश्चात् समस्त समुदा

यने तथा आगेवान गृहस्थोंने मिलकर **समुदायका निर्वाह** आप महानुभावकों समर्पण किया. आप श्रीने वीर सं. २४३७ वि. सं. १९६७ जे. शु. १४ सें समुदायका निर्वाह करना प्रारंभ किया.

आपने इस पवित्र समुदायमें सर्वसें अधिकांश **संस्कृतका विशिष्ट प्रचार किया.** तथा शास्त्र पठन पाठनादि अनेक सुकार्योंमें हौसियार किये यह आपका अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है.

आप **पैंतालीश आगमों**के पूर्ण वेत्ता थे तथा आगमोंके मथन करनेमें एक अतुठे ही प्रयत्नशील पुरुष थे आपकी **तपस्या** पर इस कदर प्रबल इच्छाथी कि जो हमारी लेखनीसें बाहिर है तदपि यत्किञ्चित् उल्लेख करते हैं.

वीर सं. २४१२ वि. सं. १९४२ में अर्थात् प्रथम चातुर्मासके प्रारंभमें ही योधपुर राज्यान्तरगत नागोर नगरमें ५ उपवास किये इसका पारणा करके साथही साथ १९ उपवास किये. तथा कार्तिकमें मासक्षमण कर अपने कर्मोंकी निर्जराकी—तथैव आपने अपने जीवनमें कइ एक मासक्षमण, पक्षक्षमण, अठाईयें, पॉच, चार और तेले किये. और उपवास तो वेशुमार किये होंगे.

आपने वीर सं. २४१३ वि० सं० १९४३ में पवित्र तीर्थेश्वर **श्री सिद्धाचलजी**की यात्रा कर अपने मानवभवकों कृतार्थ किया.

आपका प्रथम चातुर्मास अर्थात् वीर सं. २४१२ वि० सं० १९४२ का नागोर हुवा. ४३ का शिरोही ४४ का बीकानेर ४५ फलोदी ४६ का बीकानेर ४७ का पाली ४८ का नागोर ४९ का लोहावट ५० का फलोदी ५१ का लोहावट ५२–५३ का फलोदी ५४ का लोहावट ५५ फलोदी ५६ का लोहावट ५७ सें ६५ तक फलोदी* ६६ का अन्तिम चातुर्मास लोहावट हुवा.

आपके निश्राईमें मुनिराज तथा ६८ साध्वियोंजी दीक्षित हुई आपने समु-

* वृद्धावस्थाके हेतु तथा शारीरिक व्यथाके कारण एकदम इतने चातुर्मास एक स्थान पर हुवे है.

र्यको प्रशसनीय निर्वाह किया तथा अनेक भव्यात्माओं पर अनुपम उपकार किया

आप ९ वर्ष २ माह ७ दिन धर्म राज्य कर जगत्प्रशंसनीय ५२ उपवासोंका संथारा अवधारण कर लोहावट नगरमें द्वितीय श्रावण शुक्ल ६ वीर सं २४२६ वि० स० १९६६ में स्वर्गवास पधारे

आपने ५२ उपवासोंमेंसें ४० तो तिविहार किये शेष १२ चौविहार किये हैं चालीस उपवासों तक सेंकडो लोगोंकी सभामें सिंहनाद रूप धर्म देशना दी उस वख्तका महोत्सव दृश्य एक दर्शनीय ही था, गुरुदयाल! आप हमेंशां जयवन्ता वर्त्तो.

श्रीमान् भगवान्सागरजी मा. सा. के विद्यमान पट्टधर विख्याते स्मरणीय शान्त मूर्ति पूज्यपाद गणाधिपति गुरुवर्य श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब अपना अटल धर्म, राज्य कर रहे हैं

आप श्रीमान् जेसलमेर राज्यान्तरगत गिरासर ग्राममें वृहद् औसवंश पारख गौत्र ( राठोड़ ) विभूषित जीतमलजीके कुलमें कुशला देवाके रत्न कूक्षिसें शुभ मिती श्रावण शुक्ला १४ वीर सं २३९८ वि० स० १९१० में अवतरित हुवे आपका नाम चुन्नीलालजी था.

आपके गृहस्थाश्रमकी सहोदर वृद्धभगिनी पन्नीबाई ( पुण्यश्रीजी ) के सुदृढ़ प्रयत्नसें आबाल ब्रह्मचारी महत्पदसें विभूषित होते हुवे, परम वैराग्य रङ्गरङ्गित होकर गुजरात देशान्तर गत पाटणमें वीर स० २४१२ वि० सं० १९५२ प्रथम जेष्ट शु० ७ को भवोध्धारक निर्मल चारित्र अवधारण कर, अपने मानवभवको कृतार्थ किया. आप श्रीमान् गणनायक श्री भगवान्सागरजी मा. सा. के सुशिष्य हुवे नाम त्रैलोक्यसागरजी

रख्खा गया. आपकी **वृहद्दीक्षा** माघ शु. १३ वीरात् २४२५ वि०सं० १९५५ में **फलोदी** नगरमें हुई.

**श्रीमान् छगनसागरजी मा. सा.** ने अपने काल प्राप्त समय पूज्य पाद गुरुवर्यको द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ वीर सं. २४३६ वि. सं. १९६६ को **समुदायका स्वामी पद** प्रदान किया अर्थात् इस शुभ दिनसें आप **श्रीमान् गणाधिपतिके सुपदसें विभूषित हुवे** उसही दिनसें आपने अपना **धर्म साम्राज्य** करना प्रारम्भ किया.

आपके शान्त **साम्राज्य** में, सभाका खुलना, संघका निकलना, नवीन पुरातन ग्रन्थोंका प्रकाशित होना इत्यादि अनेक कार्य प्रचलित हुवे जिनका संक्षिप्त विवरण इस स्थल पर उल्लेख कर पाठक प्रेमियोंके अभिमुख करता हूँ:—

जैन समाजमें एक अग्रेसरी श्रेष्ठीवर्य रायबहादुर केसरीसिंहजी बापना (पंवार) के अत्यन्ताग्रहसें वीर सं. २४३७ वि. सं. १९६९ में आपने पाँच मुनि रत्नों सहित कोटा नगरमे चातुर्मास कर जैन शासनका अनुपम उद्योत किया आपकी पवित्र सेवामें पुण्यश्रीजी आदि १६ साध्वियांजीने भी चातुर्मास किया था. इसही चातुर्मासमें अपने शिष्य समुदायके प्रौढ प्रयत्नसें **"श्री ज्ञानसुधारस धर्म सभा"** खोली गई जिसके ज़रिये समुदायकी बहुतसी त्रुटियें दूर कर उत्तम आचारोंका आन्दोलन किया अब तक भी ये परोपकारिणी सभा बहुत कुछ काम कर रही है. आशा है की गुरुदेवकी कृपासे भविष्यकालमें **इस सभामें कइ एक अनुपम गुणोंकी संप्राप्ति होगी.**

वीर सं. २४३९ वि० सं० १९६९ वैशाख कृष्णमें आपके व आपकी शिष्य शिष्याओंके सदुपदेशसें सुप्रसिद्ध मालव देशमें **पक्षाशली तीर्थरा-**

ज़की जियारत ( यात्रा ) करनेके लिये दग, गङ्गधार और सीतामहूके तीन संघ निकलवाए गए-तथैव आपके सदुपदेश द्वारा विमलश्रीजीके शुभयत्नसें वीर सं० २४४० वि० स० १९७० में तीर्थराज श्री जेशलमेरका संघ निकलवाया गया

इसके अतिरिक्त चतुर्विध संघके साथ बडेही समारोहमें अनेक यात्राएं की यथाः—मालव देशमे सेमलिया, विवडोद, करोंदी वगेरा कोटाके समीप दादावाड़ी मरु स्थलमें, पालीके पास नाकोडी-खीचन ये सर्व यात्राए आपके साथ हुई आपके आज्ञानुयाई हर्षानंदसागरादिके वीर स २४४० वि० स० १९७० के चातुर्मासमें बीकानेरके समीप नालदादाजी, नौनासर, शिववाडी, उदासर, गङ्गासर वगेराकी यात्रा बडेही धूमधामसें हुई अखीर सुजानगढ़की प्रतिष्ठा व नवमी जैन श्वेताम्बर कॉनफरन्समें शरीक हुवे पश्चात् फलोदी पार्श्वनाथकी यात्रा की तथैव क्षेमानंदसागरादिके वीर स० २४४३ वि० सं० १९७२ के चातुर्मासमें जयपुरके समीप साँगानेर, आमेर और स्टेशन पर मन्दिरकी यात्रा की महोत्सवके साथ सानन्द समाप्त हुवा कहाँ तक लिखा जाय यात्राओंका फलाफल ठाठपाट व धूम धाम अपार है.

आपके शासनमें अब तक इतने ग्रन्थ प्रकाशित हुवे व हो रहे हैं:—

॥ नवीन ग्रन्थ ॥

| नंबर. | नाम ग्रन्थोंके. | रचयिता. | प्रति. |
|---|---|---|---|
| १ | सप्त व्यसन निषेध प्रथमा वृत्ति | वीर पुत्र आनंदसागर. | १००० |
| २ | मोह जीत चरित्र संस्कृत. | मुनिराज श्री क्षेमसागरजी. | ५०० |
| ३ | *सप्त व्यसन निषेध द्वितीयावृत्ति. | वीर पुत्र आनंदसागर. | १५०० |
| ४ | गुण स्थान दर्पण. | श्रावकवर्य शेरसिंहजी जैन. | १००० |
| ५ | *सप्त व्यसन निषेध तृतीयावृत्ति. | वीर पुत्र आनंदसागर. | १००० |
| ६ | सुख चरित्र. | वीर पुत्र आनंदसागर. | १००० |

॥ प्राचीन ग्रन्थ ॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | बारह पर्व संस्कृत. | महामहोपाध्याय-श्री क्षमाकल्याणजी मा.सा | १००० |
| २ | जयति हुअण स्तोत्र त्रिपाठ. | नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्री अभयदेवसूरीश्वरादि. | १००० |
| ३ | जिन स्तोत्र भाण्डागार प्राकृत-संस्कृत. | अनेकाचार्य. | १००० |

* सप्त व्यसन निषेधकी तीनो आवृत्तियोंको पृथक् २ नम्बरसें विभूषित की इसका यह प्रयोजन है कि एकसें दूसरीमें इसही प्रकार तीसरीमें व्यसनोंको विस्तृत रूपेण प्रदर्शित किये हैं इत्यादि.

इसके सिवाय "कर्म विचार" नामक ग्रन्थ जो कि, क्षेमानंदसागरने भगवति सूत्रमेंसे उद्धृत किया है उसकी पाचसो कॉपी तथैव पञ्च प्रतिक्रमण सूत्रकी एक हजार और देवशीराई प्रतिक्रमण सूत्रकी दो हजार कॉपीये छप रही है ये शीघ्रही प्रकाशित होने वाली है

जुमला नव हजार ग्रन्थ तो प्रकाशित हो चुके हैं तथा साढेतीन हजार छपनेवाले हैं एवं सर्व ग्रन्थ साडेबार हजार आपके पवित्र शासनमें आजतक प्रकट हुवे ये सकल ग्रन्थ वगैर न्योछावलही भेट दिये गये व दिये जाते हैं व दिये जायेंगे यह आपकी उदार वृत्तिका एक विशाल परिचय है

आप बहुतमें सूत्रोंके तथा अनेक प्रकरणादिके सुवेत्ता है आपको शास्त्रोंकी सेकडों बातें कण्ठस्थ स्मरण है आप पठन पठनादिके पूर्ण प्रेमी है या यों कहियेगा कि आप एक अद्वितीय रसिक है

आपके शासनमें साधु साध्वी बडेही आनदसे निवास करते हैं और शान्तता पूर्वक संयम पालन करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण कर रहे तथा भव्यात्माओंका अनुपम उपकार करते हुवे उन्हें कृतकृत्य कर रहे है आप श्रीमान्का हमारे समुदायके सकल कृतज्ञ महानुभाव सतशः धन्यवाद देते हुवे अपने देवगुरुसे अहर्निश यह प्रार्थना करते है कि सुशिक्षारूपी अमीरसका पान करानेवाले एसे शान्तमूर्त्ति पूज्यपाद गुरुवर्य विद्यमान भवमें हमारे पर अटल शासन वर्त्ताते रहो इतनाही नहीं किन्तु भवोभवमें हमारे शरणभूत होवो सच है ? अद्वैत सुखदाताकी सबही वॉछा करते हैं

आप महोदयका वीर स० २४२२ वि० स० १९५२ अर्थात् प्रथम चातुर्मास व द्वितीय चातुर्मास फलोदीमें हुवा ५४ का लोहावट ५५ का फलोदी ५६ लोहावट ५७ में लेकर ६२ तक फलोदी विराजे* ६४ का योधपुर ६६

* आपका इतने वर्ष एक स्थान पर विराजनेका कारण यह था कि आपके पूज्यपाद गुरुवर्य तथा महा तपस्वी श्रीमान् छगनसागरजी मा सा की वृद्धावस्था थी तथा आप भी शरीरमें कुछ लाचार थे

का नागोर ६६ का लोहावट ६७ का फलोदी और ६८ का मालवदेश रत्नपुरी ( रतलाम ) में हुवा.

आप श्रीने परमदयाला कर इसही सम्वत्के वैशाख शुक्ला ११ बुधवार वीरात् २४३७ विक्रम सं. १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दीक्षा तथा आषाढ शु० २ बुधवार तारीख २८ जून सन् १९११ को वृहद्दीक्षा देकर मुझ अधमको अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन किया अर्थात् इस शुभ दिवसको **भवोद्धारक दीक्षा** प्रदान की हे नाथ ! आपका यह अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है. निरन्तर आपही कृपालुका शरण हो. यही हार्दिक वॉछा है—६९ का कोटा ७०-७१ फलोदी ७२ का चातुर्मास पाली हुवा.

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संवत् १९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद महा तपस्वी श्री छगनसागरजी म० सा० के चरण संस्थापन करवाए.

इसही वख्त आपने श्री छगनसागर जैन पाठशाला खुलवानेका अनुपम उपदेश किया—फल वर्द्धिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आप वापिस लोहावट पधारे उस समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाया. आप पूज्य गुरुवर्य्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है.

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर **विक्रमपुर ( विकानेर )** में हुवा.

आप यशोदयके पवित्र शासनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ साध्वियोंजी सुदीक्षित हुई.

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपका धर्म साम्राज्य चिरकाल अटल प्रवर्त्तता रहो हे स्वामिन् ! आपका पवित्र नाम सदैव जयवन्ता वर्त्तो ॥ ९ ॥ ७६ ॥

पाठकवरों ! अब मैं आपके पवित्र शासनमें रहे हुवे कतिपय अग्रेसरी मुनिराजों व साध्वियोंजीका परिचय दिलाता हूं.

**श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा क्षेमसागरजी महाराज एक अग्रेसरी मुनिराज है.**

आप हर दो मुनिराज प्राकृत, संस्कृत, देवनागरी और गुजराती वगेरा भाषाओं ( Languages ) सें परिचित है अर्थात् कितनेक सूत्र आपके अवलोकन किये हुवे है तथैव व्याकरण, काव्य, कोष वगेराके वेत्ता है आपमें लेख लिखनेकी वा ग्रन्थ रचनेकी भी सामर्थ्य है. यद्यपि आप विद्यार्थी-जीवन ( student life ) मे निवास कर रहे हैं तदपि यथा समय शासनकी भी सेवा बजाते रहते है आप श्रीमानोका मुझपर बड़ाही धर्म प्रेम है यहाँ तक कि मै आपसें दीक्षा पर्यायमें लघु भी हूं तदपि आप मुझे हमझोलीका ही समझ उत्तम व्यवहार रखते हैं यह आपके बड़प्पनका एक विशाल परिचय है. मै यही इच्छता हूं की आप लोग हमेशां मुझ पर महरबान रहै

वर्त्तमानमें सबसें बडी साध्वीजी लक्ष्मीश्रीजी है यह महानुभावा बड़ी ही शान्तमूर्ति है तथा पठन पाठनादि विषयोंमे पूर्ण निपुण है एवं अपनी आर्या वर्गकों हृदयसें लगाकर बडे ही प्रेम पूर्वक पालन करती है इनकी प्रशिष्या-पुण्यश्रीजी एक विशाल पुण्यात्मा है तथा शिष्या सिंहश्रीजी एक प्रबल धर्मात्मा हुई है.*

---

*. सिंहश्रीजी यद्यपि इस वख्त विद्यमान नहीं है तदपि पुण्यश्रीजी व इनका युगल सम्बन्ध होनेसें इनका भी उल्लेख कर दिया गया है—

प्रशिष्याका नाम प्रथम लिखकर पश्चात् शिष्याका लिखा गया इसमे हमारे कतिपय पाठकवरोंको अवश्य यह प्रश्नमय उमङ्ग लहरे उठेगी कि ग्रन्थकर्त्ताने किसआश

पुण्यश्रीजी अनेक सूत्र सिध्धान्तोंको अवलोकन की हुई हैं सेंकड़ों बोल चाल कण्ठस्थ हैं पठन पाठनमें इनकी पूर्ण दिलचस्पी है. **तपस्याकी एक अद्वैत प्रेमणी है** आप महानुभावाने अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे अन्य जनो पर अनुपम उपकार किया. यहांतक कि जनसमुदाय अपने मुक्त कण्ठसे इन श्रीकी प्रशंसा करता है.

सिहश्रीजी कइएक सूत्र सिध्धान्तोंकी वेत्ता थीं वहुतसें बोलाचाल छिन्न यादादास्त थे पठन पाठनकी दिली प्रेमणी थी अपनी गुरुवर्याकी सेवामें **अनुपम दिलचस्पीको** अवधारण करनेवाली थीं आप महानुभावाने प्रशंसनीय उपकारके साथही साथ अपनी आत्माका कल्याण किया.

पाठकवरों ! आप हर दो साध्वियोंजी पर **पूज्यपाद चरित्र नायका असीम उपकार है** इसही लिये ये ये दोनो सुयोग्यताकों संप्राप्त हुई हैं.

इन हर दो साध्वियोंजीके निश्राईमें रही हुई आगेवान् साध्वियोंजी चारों ओर जैन शासनका उद्योत करती हुई अपने परमोपकारी गुरु महाराजका पवित्र नाम दें दिव्य कर रही हैं. इनमें कइएक सूत्र सिध्धान्त, प्रकरणादि व्याकरण, काव्य, कोष न्यायादि व अनेक बोलचालोंकी वेत्ताएं हैं. कइएक बाल शिष्याएं पृथक् २ विषयोंका अभ्यास कर रही है आशा है कि वे शीघ्र ही उच्च स्थितिकों पहूँचेंगी.

**वाचक वृन्दों ! जिस क़दर मुझसें बना सका परमोपकारी गुरुमहाराजकी पवित्र सेवा बजाकर अपने मानवभवकों सफल किया.** आप पाठक प्रेमियोंकों यह भली व प्रकार सुविज्ञात होगा कि गुरु महाराजकी सेवा एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिससे ज्ञान, ध्यान, तप,

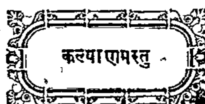
---

यसे लिख्वा है प्यारे मुमुक्षुओं ! इसमें इतनी ही समाधानी संतोषप्रद होगी कि श्रमण मार्गमें चारित्र पर्यायसे वड़ा छोटा समझा जाता है नतु सन्तान परंपरासे अतः प्रशिष्याका नाम प्रथम उल्लेख किया है चूंके वे दीक्षा पर्यायमें बड़ी है.—

जप यांगादि सकल सिद्धियें समाप्त होती है इतनाही नहीं किन्तु पूज्यपाद गुरुवर्यके गुण गानेसें अनादिसें जखड़े हुवे पापकर्म तत्काल विध्वंस हो जाते हैं जिससें दिव्य शास्वत सुखमें रमण करते है अर्थात् अनत सुखोंमें झिलानेवाले मोक्षपदकों संप्राप्त करते है-देखिये किसी अनुभवि महात्माका कथन हैः—

## ( सवैया )

ज्ञान घटे जड़-मूरकि सङ्गत
  ध्यान घटे विन धीरज आए।
मान घटे जबही कछु माङ्ग हूं
  चाह घटे नितके घर जाए॥
प्रीति घटे जुं कठोर वे बोल हूं
  रीति घटे मुंह नीच लगाए।
उद्यमसें दारिद्र घटे सब
  पाप कटे गुरुके गुण गाए॥१॥



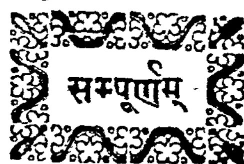

प्यारे पाठकवरों! अब मै ग्रन्थकी पूर्णाहुतीमें कतिपय दोहरोंकी रचना कर ग्रन्थकों सम्पूर्ण करता हूँ

## ( दोहरे )

घट घट अन्तरमें वशे । सुखसागर गुरुराय ॥
चरणकमल प्रतिदिन नमु । झुक झुक शीश नमाय॥ १ ॥
तस्य शिष्य गुण शोभता । भगवान् गुरु सुखकार ॥
तस पटधर जग दीपता । त्रैलोक्य गुरु आधार ॥ २ ॥
इनके अतुल पसायसें । ग्रन्थ रचा सुविचार ॥
सुख चरित्र सुख देत है । मोक्ष मार्ग दातार ॥ ३ ॥
गुरु सेवामे लीन हो । जो कुछ किया विचार ॥
सफल हुई मन कामना । जगमें जयजयकार ॥ ४ ॥
चौवीस्से बाया लिशे । चैत्र पूर्णिमा सार ॥
पूर्ण किया ये ग्रन्थ हम । बीकानेर मझार ॥ ५ ॥
सद्गुरु गुण गाया हमें । सकल जीव हितकार ॥
दासानंद इम वीनवे । कृपा करी मुझ तार ॥ ६ ॥
भूल चूक यदि होय तो । शुध कर लीजो दक्ष ॥
हांस न करजो चतुर जन स्वल्प बुद्धि हम लक्ष॥७॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं । सर्व कल्याण कारणम् ॥
प्रधानं सर्व धर्माणां । जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥




ANANDSAGAR.
Bikaner—(Rajputana.)

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

( मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत )

## ॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवदन कान्तारतौनोरतो
पुण्यौघः पितरंवरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥
य. श्राद्धेश्य विभूषण. शुभमतिर्गोत्रं वरंदूगरं
संप्राप्तः सुखनागर. सुजननी जेतीमनोज्ञोष्टवः ॥१॥

लब्ध्वान्यायधनं पुराजयपुरे संतोषवृत्तिंधृतो
बुध्वावैवरराजसागरमुनेर्बोधात् तदा दीक्षित. ॥
पूज्योयस्य वरर्द्धिसागर गुरुः संसारपङ्कोद्धृतो
धन्यास्ते गुरवः सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोच्छेदकाः ॥२॥

प्राप्येत्पुण्यनिदान सुबोधनिलयंतीर्थेश वाक्यामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसार दुःखौघहृद् ।
वैराग्यंनिजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्नकिंयः कृतिः
भ्रांत्वाऽनन्यविसार दुःखनिकरं संसारचक्रजनः॥३॥

किंश्रेयन्नविनां सदैवहितदं बुध्याजनो मृश्यति
सम्यक्त्वं सुगतिमदं कथन्नवृणुतेज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

येनात्रैव हितादितं शुचिमतिर्विज्ञायहेयाश्रवम्
त्यक्त्वासंवरशुद्ध रूपममलं वुद्धोऽश्रयत्तत्गुरुः ॥ ४ ॥

साधुश्रेष्ठ गुणौघधारक मुनिर्मोक्षार्थ दीक्षारतो
भव्यानांहितचिन्तकः शिवरुचिर्हष्टयाच पीयूषदः ॥
जित्वाकर्म समूहमूलजनकं कामंनृणांभ्रान्तिदम्
लोनोवीरविभौ गुरौचशमदेध्येयोनकिंप्राणिभिः ॥५॥

तीर्थोद्योतकरो गुणाधिनिलयो शुद्धात्मरूपंश्रितः
पंचाचारतः सदैवविरतो चित्तंचचक्रे स्थिरम् ॥
प्रश्चात्कर्मविनाशकं शुचितपस्तत्त्वाऽभवन्निर्मलः
स्मर्तव्यः श्रमणैःसुखाभिरुचिभिः श्राद्धैस्तथाकिन्नसः॥६॥

धृत्वायत्सुगुरो सुपादममलं दुःखार्णवेतारकम् ।
सौख्यार्त्थं लभतेस्मयत्सशमदः पूज्योभवत्सर्वदा ॥
पश्चाद्वै विनयीतथैव शिवदंसाधुं निरीहंश्रितः
यस्मात्शान्त सुदान्तशान्तिजनकः साधुजनैःसंस्तुतः ॥७॥

जंतूनांहितकारणान्मुनिगुणान् श्रुत्वामयाग्रथिता
भव्याना प्रमुदेजनाः कथयतस्युः किंनतेशान्तिदाः ॥
यद्वायेसुखसागरान् मुनिवरान् मुक्त्यर्थलाभाश्रितः
स्तेषांवैखलुमोदकं सुरचितं साधूष्टकं सौख्यदम् ॥८॥

मोक्षायमान्योभविभिर्गुरुर्वै । हत्वाचकर्मारिच मूंचनूनम् ॥
नत्वाजिनेशं सुगुरुंचहर्षं । शैवायमाणिक्य मुनिर्वभाषे ॥ ९ ॥

॥ शुभम् ॥

॥ ॐ ॥

( श्रीमान् क्षेमसागरजी महाराज कृत. )

## ॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

भजामिपूज्यंश्च नमामि नित्यम्
वक्ष्यामि भक्त्याप्रणतान्तरात्मा ॥
यथाभिधान किलसद्गुणोयं
तस्यस्वरूपं शुभभावभाव्यम् ॥१॥

पिताकुलीनश्च मनः सुखाख्यः
सुशीलधर्त्री जननीहिजेती ॥
श्रावोशयवंशयः सुखलाल संज्ञः
ग्रामः प्रसिद्धः सरसेतिनाम्ना ॥२॥

आ ब्रह्मचारी जिन धर्मरागी
सम्यक्त्व धारी विरति प्रभावी ॥
संत्यज्य संसार–मसार–मृद्धि–
रत्नाकराख्यस्य गुरोश्च पार्श्वात्॥३॥

चारित्र–मादायसदा विहारी
विनातिचारं यति धर्मधारी
श्रीमाञ्जिताख्यो गुणभूतपोतम्
संसारपाराय परंदधार ॥ ४ ॥

सुबुद्धि सङ्गी कुमति प्रणाशी
खलप्रबोधी शुभ्र मार्गदर्शी
सार्थानि सूत्राणि पपाठ धीरः
गजेन्द्र तुल्यो वचनेषु वीरः ॥ ५ ॥

रराज नित्यं करुणैक पात्रम्
जीवोपकारी सुखसागराख्यः
सत्यार्थवक्त्या सुजनाभिनन्धः
साधुप्रभावोज्झितमोहमायः ॥ ६ ॥

अन्तारिपून्बाह्य परिग्रहारी-
न्त्यागी निरागी भविशर्मकारी
जगत्प्रसिद्धो बहु मान धाम
एभिर्गुणैः सत्पथमाजगाम ॥ ७ ॥

त्रैलोक्यसिन्धो ! हरित्तामुपेत !
आनन्दकारीं शुभभावभक्तिम्
कुर्वन्तिलोका नवतत्त्वसिद्धिम्
तेवल्लभावैद्रुत-माप्नुवन्ति ॥ ८ ।

बुरुन्तीं वीक्ष्यामू-मतिशुभ्र गुणाचार तरणीम् ॥
गणाधीश स्वामिन् ! युगपदवदभ्रे भवजले ॥
कथन्नोपास्यामेतव शुभ्रगुणाः मङ्गलकराः
गुरोः पूर्णाब्धेर्वैचरण युगले क्षेमनमनम् ॥ ९ ॥

मुनि क्षेमसागर.

मु. बीकानेर.

॥ ॐ ॥

( वीर पुत्र श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज कृत. )

## ॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

( अनुष्टुप छन्दः )

यथाप्राणानराधारा–स्तथैव सुखसागरः ॥
नित्यंनमामि नाथत्वां । त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥

चखान दुष्ट कर्माणि । दिव्यज्ञान दिवाकर ॥
चारित्र रत्नभण्डार । दर्शनं विमलं कृतम् ॥ २ ॥

दानशील तपोभाव । अष्टमातृ परायणः ॥
आ बाल ब्रह्मचारी च । भाविता भावना सदा ॥३॥

कषायमद निद्रादि । पञ्चेन्द्रियाणि शेषतः ॥
जितानि हास्यजिन्नूनं । वैरिणी विकथा जिता ॥४॥

निर्जितौ काममोहौच । रागद्वेष विवर्जित ॥
धौतं सकल मिथ्यात्वं । सम्यक्त्व रागरञ्जित ॥ ५ ॥

नयनिक्षेप संवेत्ता । गुणस्थानं विशेषतः ॥
विजानाति गुणग्राहिन् । स्याद्वादश्च महारसम् ॥ ६ ॥

त्वमेव प्राणकाधारः । त्वमेव हितकारकः ॥
त्वमेव सुखसौन्दर्यः । त्वमेव भवतारकः ॥ ७ ॥

पवित्रनाम जापेन । ज्ञानादि सकलं फलं ॥
लभन्ते सर्व धीमन्तः । नैवात्रकोपि संशयः ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यसिन्धोर्भवतापहर्तु-
गुरोः प्रसाद प्रभुताङ्कितान्तः ॥
तस्यैवसानन्द सुखाम्बुराशेः ।
पादौ सदानन्दरसेन नौमि ॥ ९ ॥

॥ शुभम् ॥

ANANDSAGAR.

॥ ॐ ॥

( श्रीमान् हरिसागरजी महाराज कृत )

## ॥ गुरुवर्य्य प्रशंसा ॥

॥ शिखरणी छंद ॥

सुः- सुधारसको पीते शुद्ध भाव हृदय धरके
खः- खयोपशम श्रेणी ध्यान धरते सुखद होके
साः- सामर्थ्य रखते थे कर्म अरिको नष्ट करके
गः- गम्यागम्य वस्तु मनन करते हर्ष धरके ॥१॥
रः- रटन करते थे मुक्तिपुरीका अहर्निश ही
जीः- जीवोंको बचाते थे अभय देके आप खुद ही
महाः- महा क्रोधादि रागद्वेषको दूर करते
राजः- राज पुंजधारी चरण आके नमन करते ॥२॥

॥ ॐ ॥

## ॥ दोहरा ॥

सुखसागर मुनिराजके चरण करूं प्रणाम ॥
गुण गावुं तिनके सदा अक्षर २ नाम ॥ १ ॥

सुः— सुगुरु गुण है अति सदा । सुखसंपति दातार ॥
सुन्न मारगकों धारते । सुमती यश न्नंडार ॥ २ ॥

खः— खरतर गछकों धारते । खसम अती विस्तार ॥
खप करते थे मोक्षकी । खणते कर्म विकार ॥३॥

साः—साधु धर्मकों पालते । साधे तप विधि वार ॥
सावधान मनकों करि । सागर तरे संसार ॥४॥

गः— गहिरे सकल समुड्से । गमन करे न्नव पार ॥
गमनागमन निवारके । गहे मुक्ति दरवार ॥ ५ ॥

रः— रमण करे निज न्नावमे । रहे सदा एकांत ॥
रम्य वस्तु विचारते । रत्नत्रयी सुख शांत ॥६॥

जीः- जीते मन वच कायकों । जीव दया धरनार ॥
जीव तत्वको धारते । जीवन प्राणाधार ॥७॥

मः— ममताकों मारे गुरु । मनकों वश करनार ॥
मगन न्नये शुन्न ध्यानमें । मन वांछित देनार ॥८॥

हा:—हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सवी दुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जोड़ धर मिष्ट ॥९॥

रा:— राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नहीं मोह राजसें । राख सदा मुज़ सूर ॥१०॥

ज:— जन्म मरणको मेटते । जराकों दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥११॥

उन्नीसे सीतरमें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धि नगर मझार ॥१२॥

यह गुण गाया है सही तुछ मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिशण सार ॥१३॥

मुनि हरिसागर.
मु. वीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

( मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत. )

## ॥ सद्गुरु गहूँली संग्रह ॥

क्षमा कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥
वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ टेक० ॥

भव्य जीव उपकारके हेतु । दिव्य चारित्र तुमारो ॥
निर्मल कीनो दर्शन तुम गुरु । ज्ञान तणो भंडारो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ १ ॥

बाल ब्रह्मचारी गुरु शोभे । महिमा अपरंपारो ॥
यति धर्म करी दीपता गुरुवर । देशना अमृत धारो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ २ ॥

सायर सम गंभीर गुरुवर । रवि सम तेज प्रतापो ॥
शशि समान है शौम्यता गुरुकी मणि सम तुम गुरु दीपो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ३ ॥

अष्टापद सम सूरवीर गुरु । दुर्धर कर्म हटावो ॥
आतम ध्यानमें मग्न होयके । मोक्ष नगरकों पावो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ४ ॥

बीकानेरमें आप विराजो । दर्शन कर हुलसायो ॥
दिलमा, हर्ष न मावे गुरुवर । आनंद संघमा छायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ५ ॥

वीर चौवीस्से बायालिस माही । श्रावण मास सुहायो ॥
कृष्ण बीज गुरुवार सुहावे । हरष २ गुण गायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥ ६ ॥

गुरु सम अवर न दूजो जगमें । चरणोंमे शीस नमायो ॥
दास आनंद आनंदमें झीले ॥ मन वाछित फल पायो ॥ मोरे० ॥ कृमा० ॥७॥

॥ ७ ॥

सुखसागर गुरु वंदीये । शुभ भाव धरीने ॥ हांहारे शुभ भाव धरीने ॥
सुमती गुप्तीकों पालते । बहु हर्ष धरीने ॥ हाहारे बहु हर्ष धरीने ॥ १ ॥

पच महाव्रत धारिया । पाले षट् काया ॥ हाहारे पाले षट् काया ॥
भीक्षा दोष निवारता । सहुको मन भाया ॥ हाहारे सहुको मन भाया ॥२॥

भव्य जीव उपदेश दे । शुभ पंथ बताया ॥ हांहारे शुभ पंथ बताया ॥
तारे कोई नरनारको । ज्ञानी गुरुराया ॥ हाहारे ज्ञानी गुरुराया ॥ ३ ॥

खरतर गछमें दीपता । गुरु गुणका दरिया ॥ हाहारे गुरु गुणका दरिया ॥
संयम सतर प्रकारसें । शुभ संपदा वरिया ॥ हाहारे शुभ संपदा वरिया ॥४॥

सतावीश गुणे करी । सोहे महाराया ॥ हांहांरे सोहे महाराया ॥
तिणके चरण सरोजमें । नमतां सुख पाया ॥ हांहांरे नमतां सुख पाया ॥५॥

वीर जिनंदके पाटमे । सुविहित पक्ष धरिया ॥ हांहांरे सुविहित पक्ष धरिया॥
श्रद्धा सूत्र सिद्धांतपे । करते हित करिया ॥ हांहांरे करते हित करिया॥६॥

ऐसे गुरुको वंदना । करिये भवि प्राणी ॥ हांहांरे करिये भवि प्राणी ॥
रिद्धि समृद्धि सुख संपदा । वरिये चित आणी ॥ हांहारे वरिये चित० ॥७॥

संवत् उन्नीसे इकोतरे । वदि माघ सवाया ॥ हांहांरे वदि माघ सवाया ॥
चौथ दिवस मनोहरू । मंगल वरदाया ॥ हांहांरे मंगल वरदाया ॥ ८ ॥

गाय हरि भक्ति भरी । गुरु गुण मणि माला ॥ हांहांरे गुरु गुण मणि० ॥
वंछित फलको दीजिये । मांगु सुविशाला ॥ हांहांरे मागुं सुविशाला ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥

आ बे लाल—यह देशी ॥

सद्गुरु वंदु पाय । आनंद अङ्ग न माय ॥
गुरुराज सुखसागर । गुरु वंदियेजी ॥ १ ॥

दिव्य ज्ञान भंडार । दर्शन निर्मल धार ॥
गुरुराज । चारित्र महिमा अति घणाजी ॥ २ ॥

मनमोहन दीदार । देशना अमृत धार ॥
गुरुराज । भव्य जीव प्रति बोधियाजी ॥ ३ ॥

नय निक्षेप श्रीकार । गुण स्थान सुविचार ॥
गुरुराज । स्याद्वाद रस झीलताजी ॥ ४ ॥

धर्म धुरंधर नाथ । सुमति सखीके साथ ॥
गुरुराज । कर्म रिपुको जीतियाजी ॥ ५ ॥

एक सुनो अरदास । मैं हूं तुमारो दास ॥
गुरुराज । मन वांछित पूरो सदाजी ॥ ६ ॥

कृपा करी मोय तार । जीवन प्राण आधार ॥
गुरुराज । तुम सम शरण अवर नहीजी ॥ ७ ॥

बीकानेर मझार ॥ घर २ मङ्गलचार ॥
गुरुराज । जय २ वरत्या चहुँ दिशीजी ॥ ८ ॥

वीर चौवीस्सें सार । इकतालीश गुणधार ॥
गुरुराज । जयवंता वर्तो सदाजी ॥ ९ ॥

माघ कृष्ण सोमवार । चौथ दिवश जयकार ॥
गुरुराज । आनद हर्ष वधामणाजी ॥ १० ॥

दिव्य भक्ति चित लाय । चरणों में शीस नमाय ॥
गुरुराज । दास आनंद गुण गावियाजी ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥

## ( गुरु गुण गहूँली )

जगतमें गुरुपद सुखकारी गुरु भगवान है उपकारी—टेक०

सुखसागर गणनाथ थे । ताके पटधर खास ॥
गणनायक गुरुराय थे । भक्त जनोंमें वास—जगत० ॥ १ ॥

मद पाँचोकों दूर हटाया । सप्तम गुणके धार ।
भव्य जनोंकों मार्ग दिखाया । जगजीवन आधार—जगत० ॥२॥

सकल कर्ममें मोह कराला । अद्भुत गति है भारी ॥
याको मंद किया सुविशाला । जगमें जयजयकारी—जगत० ॥३॥

तीन रत्नकों निर्मल करके । पाया अनुभव सार ॥
वीतरागमें ध्यान लगाके । करलियो भव निस्तार—जगत० ॥४॥

कर्म रिपुने धूम मचाया । है ये भयङ्कर भारी ॥
रूप देखकर थरहर कांपा । कहेता न आवे पारी—जगत० ॥५॥

मैं अज्ञानी अधम अपावन । कैसे होउं भवपारी ॥
दूर करो गुरुदेव ये दुर्मन । शरण ग्रही हितकारी—जगत० ॥६॥

सुखकारी आनन्द दिवाकर । तीन लोक सुखकारी ॥
आनंदकी वरषा जगसुखकर । आनंद आनंदधारी—जगत०॥७॥

॥ ॐ ॥

छगन गुरु सुन्दर दरश दिखाया ।
गुरु उग्र तपस्वी कहाया–छगन० ॥ टेक० ॥

नगर लोहावट दर्शन पाया ।
चरण कमल सुख दाया ॥
आनन्द छाया हर्ष न माया ।
बाल हृदय हुलसाया–छगन० ॥ १ ॥

दानशील शुभ भाव ना भाया ।
बावन व्रत्त सुहाया ॥
दिव्य तपस्या अङ्ग भराया ।
जगमें जय वरताया–छगन० ॥ २ ॥

आगम अनुपम धर्म दिपाया ।
तत्वज्ञानसें रङ्गाया ॥
अति उत्कट संयम आचरिया ।
निर्मल दरशन धरिया–छगन० ॥ ३ ॥

अष्ट पञ्च षट् सप्त हटाया ।
दश गुण अङ्ग रमाया ॥
तीन तत्वसे प्रेम लगाया ।
जगमें धर्म दिपाया–छगन० ॥ ४ ॥

काम मोहको मार भगाया।
परमारथ पद ध्याया ॥
शुद्ध स्वरूप रमणता रमिया।
आतम अनुभव वरिया—ठगन० ॥ ५ ॥

अष्टमी शुक्ला चैत्र बधाया।
शुक्रवारको आया ॥
दंभगति सम्वत् जिनराया।
परमानन्द वरपाया—ठगन० ॥ ६ ॥

सुख दाता भगवान आदरिया।
तीन लोक गुण दरिया ॥
आनन्दकारी आनन्द गाया।
आनन्द आनन्द पाया—ठगन० ॥ ७ ॥

॥ आनन्दं परमं-सुखम् ॥

॥ ॐ ॥

## ( पूज्य गुण गहूँली )

त्रैलोक्य गुरु—विरह सह्यो नहीं जाय कृपा कर तारीये ॥
दुर्लभ दर्शन—हम दुःखिये निराधारको जल्दी दीजिये-टेक

गुरु आप बडे उपकारी थे।। अद्वैत ज्ञान गुण धारी थे।
सयम दर्शन सुखकारी थे—त्रैलोक्य० ॥ १ ॥

गुरु करुणारसके सागर थे। मुनि गुण रत्नोंके आगर थे॥
गुरु सम दम सुख भंडार थे—त्रैलोक्य० ॥ २ ॥

गुरु चमत्कार एक भारी था। दर्शन कर्त्ता दुःखहारी था॥
जाका रोम २ हुलसारी था—त्रैलोक्य० ॥ ३ ॥

गुरु ज्ञान विना कैसे जीवें। यह आप विना कैसे पावें ॥
यह दुःख अनन्त कैसे सेवें—त्रैलोक्य० ॥ ४ ॥

गुरु शरण समो नहीं कोई है। जिनको आभाव जो होईहै ॥
वह जीवित मृतक समो ही है—त्रैलोक्य० । ५ ॥

मैं शुध उपयोगसें भूला हूँ। गुरु क्षमा करो मैं चूका हूँ ॥
मैं अशरण भावना भूला हूँ—त्रैलोक्य० ॥ ६ ॥

मैं अरजी आन गुजारी है। आनंदको आनन्दकारी है ॥
आनन्द परमानन्द धारी है—त्रैलोक्य० ॥ ७ ॥

॥ शुभम् भुयात् ॥

॥ ॐ ॥

वंदो २ रे भविक गुरुरायकोंजी।
वंदो त्रैलोक्यसिंधु आधार—गणपतिरायकोंजी ॥टेक०॥

सुन्दर दरशन कर दीदार ॥
दिलमें आनन्द हर्ष अपार ॥
प्रणमुं चरण शरण सुखकार—वंदो० ॥ १ ॥

ज्ञानी जैन समयके जान ॥
तैसे पर दरशन विज्ञान ॥
तात्विक गुण रत्नो की खान—वंदो० ॥ २ ॥

गुरु सम दम रस गुण धार ॥
ये है सकल धर्मका सार ॥
याते तुम जगके आधार—वंदो० ॥ ३ ॥

अनुभव आतम गुण हितकार ॥
उसमें रमते वारंवार ॥
जगमें वरते जय २ कार—वंदो० ॥ ४ ॥

गुरु एक अतिशय भारी ।
जगमें तुमरी है बलिहारी ॥
गुरु शान्त मुद्रा प्यारी–वंदो० ॥ ५ ॥

जो करजोड़ी गुणको गावे ।
ताके पाप सकल मिट जावे ॥
निर्मल भावना दिलमें भावे–वंदो० ॥ ६ ॥

आनंद सदानंदका गावे ।
आनद श सब जग ध्यावे ॥
आनद परमानंदको पावे–वंदो० ॥ ७ ॥

॥ आनन्दः परमं सुखम् ॥

॥ ४ ॥

दिलभर दर्शन दो हो स्वामी ॥ तुम हो दीनदयाल हो स्वामी ॥ टेक० ॥

खरतर गच्छमा दीपतः स्वामी । सुखसागर मुनिराया हो स्वामी ॥
भूवनि जहाजको तारी हो स्वामी । मोक्ष मारग बताया हो स्वामी–दिल०॥१॥

तसपटधर भगवान् गुरुके । त्रैलोक्य सागर गुरुराय हो स्वामी ॥
पर उपकारमा मग्न होयके । करते आतम ध्यान हो स्वामी–दिल० ॥ २ ॥

हरिसागर हरि तुल्य हो स्वामी । भव्य जीव प्रतिबोध हो स्वामी ॥
दर्शन पदको धारत स्वामी । करत निज उपकार हो स्वामी–दिल० ॥ ३ ॥

नवनिधिसागर मुनिवर स्वामी । ज्ञान निधिको चवे हो स्वामी ॥
जैन बालक अब बोधता स्वामी । मोक्ष मारगको ध्यावे हो स्वामी–दिल० ॥४॥

क्षेमसागर मुनिराय कहावे । चारित्र रत्न सुहाय हो स्वामी ॥
सदचारी बधु सुख पावे । आनद अङ्ग न माय हो स्वामी–दिल० ॥ ५ ॥

आनंद सिन्धु आनंद पावे ॥ ज्ञान वैराग्य अपार हो स्वामी ॥
सिंह परे गुरु धर्म दिपावे । देशना अमृतधार हो स्वामी–दिल० ॥ ६ ॥

वल्लभसागर मुनि पद सुखकारी । गुरु भक्तिमें भारी हो स्वामी ॥
भक्तिसागर मुनि भक्तिमें शोहे । विनयवन्त गुण मोहे हो स्वामी–दिल० ॥७॥

वीर चौवीस्से उनचालीस स्वामी । पर्व पर्यूषणकी बलिहारी ॥
भाद्रव कृष्ण एकादशी स्वामी । नगर फलोदीमें जय २ कारी–दिल० ॥ ८ ॥

चरण कमलमें वंदना स्वामी । विनय करी करें जोरू हो स्वामी ॥
बाल शिष्य इम विनवे स्वामी । हममनशागुरुपुरोहो स्वामी ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

सुनोरे भाई आज आनंद घरी ॥ टेक० ॥

मुनि दर्शनके लाभ लिये हम
दुःख जावे विखरी ॥ सु० ॥ १ ॥

सोना केरो सूरज उगियो ।
आज विकाणे खरी ॥ सु० ॥ २ ॥

आज हमारे सुरतरु फलियो ।
भावे करम जरी ॥ सु० ॥ ३ ॥

खरतर गच्छमें दीपे महा मुनि ।
सुख सूरि पट धरी ॥ सु० ॥ ४ ॥

गुरु भगवानके पटधर सोहें ॥
मुद्रा शान्त धरी ॥ सु० ॥ ५ ॥

त्रैलोक्य सिंधु नाम धरावे ।
हरिनिधि साथे वरी ॥ सु० ॥ ६ ॥

क्षेम गुणे करी शोभे महा मुनि ।
आनंद अंग भरी ॥ मु० ॥ ७ ॥

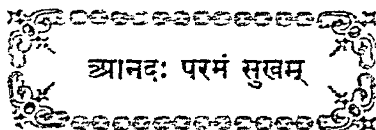
वल्लभ भक्ती है महु सबका ॥
धन धन आज घरी ॥ मु० ॥ ८ ॥

तप जप नदियां आज बही है ।
इच्छा फली सबरी ॥ मु० ॥ ९ ॥

पूरव पुण्य उदय हुवो हमारो ।
पाया दरश फरी ॥ मु० ॥ १० ॥

श्री संघ चाहे मन वच तनसें ।
गुरुकी जय जनगी ॥ मु० ॥ ११ ॥

शेरसिंह चरणोंका चाकर ।
कहे गुरु पाय परी ॥ मु० ॥ १२ ॥



## ॥ श्री सुखसागरजी मुनि समुदाय यन्त्र ॥ *

| नंबर. | नाम मुनिराजोंके. | गुरुवर्यके नाम | विद्यमान या काल प्राप्त. | कौन पूज्यके शासनमें हुवे. |
|---|---|---|---|---|
| १ | गुणवन्तसागरजी महाराज. | राजसागरजी महाराज. | काल प्राप्त. | राजसागरजी महाराज. |
| २ | पद्मसागरजी महाराज. | " | " | " |
| ३ | स्थानसागरजी महाराज. | " | " | " |
| ४ | भगवानसागरजी महाराज. | सुखसागरजी महाराज. | " | सुखसागरजी महाराज |
| ५ | चिदानन्दजी महाराज. | " | " | " |
| ६ | रामसागरजी महाराज. | " | " | " |
| ७ | कल्याणसागरजी महाराज. | " | " | " |
| ८ | रत्नसागरजी महाराज. | " | " | " |
| ९ | छगनसागरजी महाराज. | स्थानसागरजी महाराज. | " | भगवानसागरजी महाराज |
| १० | चैतन्यसागरजी महाराज. | भगवानसागरजी महाराज. | " | " |
| ११ | सुमतिसागरजी महाराज. | " | विद्यमान | " |
| १२ | गुमानसागरजी महाराज. | " | कालप्राप्त. | " |
| १३ | धनसागरजी महाराज. | " | " | " |

* श्री सुखसागर मुनि समुदाय यन्त्र होते हुवे भी श्रीमान् राजसागरजी महाराजके भी कतिपय शिष्य इसमें सम्मिलित किये गये हैं उसका यही कारण है कि वे मुनिराज आपके शासनमें थे.

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १४ | तेजसागरजी महाराज | ” | ” | ” |
| १५ | कीर्तिसागरजी महाराज | सुमतिसागरजी महाराज | ” | स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी म०के पास |
| १६ | त्रैलोक्यसागरजी महाराज | भगवान्‌सागरजी महाराज | विद्यमान | भगवान्‌सागरजी महाराज |
| १७ | रत्नसागरजी महाराज | त्रैलोक्यसागरजी महाराज | ” | छगनसागरजी महाराज |
| १८ | हरिसागरजी महाराज | भगवान्‌सागरजी महाराज | ” | ” |
| १९ | कल्याणसागरजी | हरिसागरजी महाराज | ” | ” |
| २० | कृपासागरजी महाराज | सुखसागरजी महाराज | कालप्राप्त | ” |
| २१ | लब्धिसागरजी महाराज | कीर्तिसागरजी महाराज | विद्यमान | स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी महाराजके पास |
| २२ | भावसागरजी महाराज | ” | ” | ” |
| २३ | मणिसागरजी महाराज | सुमतिसागरजी महाराज | ” | ” |
| २४ | पूर्णसागरजी महाराज | छगनसागरजी महाराज | कालप्राप्त | छगनसागरजी महाराज |
| २५ | नवनिधिसागरजी महाराज | पूर्णसागरजी महाराज | विद्यमान | ” |
| २६ | क्षेमसागरजी महाराज | ” | ” | ” |
| २७ | रूपसागरजी महाराज. | त्रैलोक्यसागरजी महाराज | ” | ” |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २८ | मणिसागरजी महाराज. | रूपसागरजी महाराज. | ,, | लपता |
| २९ | आनंदसागर. | त्रैलोक्यसागरजी महाराज. | ,, | त्रैलोक्यसागरजी महाराज |
| ३० | कल्याणसागरजी. | ,, | ,, | ,, |
| ३१ | वख्तसागरजी. | रूपसागरजी महाराज. | ,, | ,, |
| ३२ | भक्तिसागरजी. | त्रैलोक्यसागरजी महाराज. | ,, | ,, |